विश्व हिंदी साहित्य
2021

विश्व हिंदी सचिवालय, मॉरीशस
की साहित्यिक पत्रिका

विश्व हिंदी साहित्य 2021

संपादक
डॉ. माधुरी रामधारी

विश्व हिंदी सचिवालय
इंडिपेंडेंस स्ट्रीट, फ़ेनिक्स 73423,
मॉरीशस

World Hindi Secretariat
Independence Street, Phoenix 73423,
Mauritius

info@vishwahindi.com
वेबसाइड / Website : www.vishwahindi.com
फ़ोन / Phone : +230-6600800

ISSN - 1694-3465

सहायक संपादक
श्रीमती श्रध्दांजलि हजगैबी-बिहारी

संपादन सहयोग
डॉ. सोमदत्त काशीनाथ, उपमुख्य-अध्यापक (हिंदी), मॉरीशस

टंकण टीम
श्रीमती विजया सरजु, श्रीमती त्रिशिला आपेगाडु,
श्रीमती जयश्री सिबालक-रामसर्न

निवेदन

विश्व हिंदी साहित्य में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त मत रचनाकारों के हैं।
विश्व हिंदी सचिवालय और संपादक मंडल का
उनके विचारों से सहमत होना आवश्यक नहीं है।

पृष्ठ सज्जा
आर. एस. प्रिंट्स

कवर डिज़ाइन
काटे प्रिंटिंग लिमिटेड, मॉरीशस

स्टार पब्लिकेशंस प्रा. लि. 4/5 बी, आसफ अली रोड,
नई दिल्ली-110002 (भारत) द्वारा प्रकाशित

संपादकीय

साहित्य में हिंदी का सुन्दर प्रयोग

मनुष्य ने अपने विचारों की अभिव्यक्ति करने के उद्देश्य से ध्वनियों द्वारा शब्दों का निर्माण किया। शब्दों के साथ अर्थ जोड़कर, जब वह उनका प्रयोग करने लगा, तब भाषा अस्तित्व में आया। भाषा का जन्म होने के उपरांत मनुष्य ने लेखन की कला सीखी। लेखन-कार्य के साथ शब्दों के अर्थ सुरक्षित रहने लगे और साहित्य का जन्म हुआ। हिंदी भाषा का उद्भव बहुभाषी देश भारत में ग्यारहवीं शताब्दी में अपभ्रंश से हुआ। हिंदी की जड़ें प्राचीन भाषा संस्कृत में हैं। जिस प्रकार सागर अनेक नदियों को अपने में समाहित करता है, उसी प्रकार हिंदी नीर की तरह बहती हुई, अवधी, ब्रज, बुन्देलखंडी, राजस्थानी, मैथिली, मालवी, भोजपुरी, अरबी, फ़ारसी, तुर्की, उर्दू, अंग्रेज़ी आदि अनेक देशी और विदेशी भाषाओं के शब्दों को अपने में समाविष्ट करके समृद्ध और गुण संपन्न होती गई। अंततः वह साहित्य के लिए उपयुक्त भाषा बनी और हिंदी की ध्वनियों, शब्दों, वाक्यों, मुहावरों आदि का साहित्य में सुंदर प्रयोग दृष्टिगोचर होता है।

सामान्य व्यवहार के अतिरिक्त, हिंदी भाषा का प्रयोग प्रशासन, धर्म, विज्ञान, जन-संचार, साहित्य, व्यापार, प्रौद्योगिकी आदि अनेक क्षेत्रों में विविध प्रकार से होता रहता है। साधारण जनता के दैनिक जीवन में उपयोग होने वाली सामान्य बोलचाल में हिंदी के निश्चित और रूढ़ अर्थ वाले शब्द प्रयुक्त होते हैं। विज्ञान, राजनीति, कानून, भूगोल, अर्थशास्त्र, प्रौद्योगिकी, समाजशास्त्र आदि में प्रयोजन के आधार पर हिंदी की निश्चित पारिभाषिक शब्दावली का उपयोग होता है। मौखिक हिंदी हो या कार्यालयी हिंदी, शास्त्रीय हिंदी हो या वैज्ञानिक हिंदी, हर रूप में इसका सार्थक प्रयोग देखा जाता है। लेकिन साहित्य में हिंदी के प्रयोग की जो विशेष विधि है, उससे भाषा का सुंदरतम रूप प्रकट होता है।

आदिकाल से रीतिकाल तक हिंदी में मुख्यत: पद्य की रचना हुई। साहित्यकारों ने रस, छंद, अलंकार, प्रतीक, बिंब आदि के माध्यम से अपने प्रतिपाद्य की पुष्टि की और पाठकों से तादात्म्य स्थापित किया। सुन्दर शब्दों को चुनकर या शब्दों को जोड़-तोड़कर कलात्मक उपकरणों की सहायता से प्रबुद्ध रचनाकारों ने साहित्य-सृजन की अनुपम विधि अपनाई। पूर्व में, साहित्य में भाषा के सुन्दर प्रयोग को 'लालित्य' नाम दिया गया। भाषा में लालित्य का अभाव होने पर कविता निम्न श्रेणी की रचना मानी जाती थी। हिंदी की ध्वनियों, शब्दों, वाक्यों, भावों आदि के सुन्दर समन्वय से भाषा में लालित्य उत्पन्न करने की परम्परा चल पड़ी। हिंदी साहित्य में छंद और अलंकार की योजना वीरगाथाकाल से ही आरम्भ हुई। 'पृथ्वीराज रासो' में पद्मिनी के नख-शिख वर्णन में छंद और उपमान विधान दर्शनीय है -

"मनहूँ कला ससभान, कला सोलह सो बन्निय।
बाल वैस ससि ता अम्रित रस पिन्नीय।।"

भक्तिकाल के सर्वोत्कृष्ट कवि गोस्वामी तुलसीदास ने अपनी रचनाओं में सौंदर्यवादी रूप से भी अधिक सुन्दर और शैलीबद्ध भाषा का प्रयोग किया है। भावों का उत्कर्ष दिखाने या वस्तु के रूप, गुण, क्रिया आदि की तीव्र अनुभूति कराने के लक्ष्य से तुलसीदास ने सावधानी से चयनित शब्दों को सुरुचिपूर्ण क्रम और आलंकारिक रूप प्रदान करते हुए अपने काव्य को निखारा है। उनकी सधी हुई भाषा और शब्द-विन्यास का चमत्कार द्रष्टव्य है -

"हे खग मृग, हे मधुकर श्रेनी।
तुम्ह देखी सीता मृगनैनी।।"

तुलसी संस्कृत में निष्णात थे और लोकभाषा पर भी उनका उतना ही अधिकार था, जितना कि मिट्टी पर कुम्भकार का होता है। भक्तिकाल में - "मसि, कागद छुओ नाहीं, कलम गहि नहीं हाथ", अर्थात् कलम भी न पकड़ने वाले संत कबीरदास ने 'ढाई अक्षर प्रेम का' पढ़कर काव्य-सृजन आरम्भ किया। पंचमेल खिचड़ी अथवा सधूक्कड़ी भाषा में झीनी-झीनी चादर बुनने वाले कबीर ने जो दोहे कहे, वे आज दुनिया के कोने-कोने में गाए जाते हैं। उनकी भाषा में व्यंग्यार्थ और लक्ष्यार्थ का मौलिक सौन्दर्य प्रभावशाली है -

"बड़ा हुआ तो क्या हुआ जैसे पेड़ खजूर।
पंथी को छाया नहीं, फल लागे अति दूर।।"

आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी कबीरदास के भाषा-प्रयोग के सम्बन्ध में लिखते हैं -

"भाषा पर कबीर का ज़बरदस्त अधिकार था। वे वाणी के डिक्टेटर थे। जिस बात को उन्होंने जिस रूप में प्रकट करना चाहा, उसे उसी रूप में कहलवा दिया, बन गया तो सीधे-सीधे, नहीं तो दरेरा देकर। भाषा कुछ लाचार-सी कबीर के सामने नज़र आती है।"

हिंदी के दिग्गज साहित्यकार हर युग में अपनी आलंकारिक, चित्रमयी तथा संगीतात्मक भाषा-शैली से पाठकों की भाषिक संवेदना को धार प्रदान करते रहे हैं। सूरदास के पद *"मैया मोहि मैं नहिं माखन खायो, भोर भयो गैयन के पाछे, मधुबन मोहि पठायो"*, मीराबाई की पंक्ति *"हे री मैं तो प्रेम दीवानी, मेरो दरद न जाणै कोय"*, बिहारी का वाक्य *"नहिं पराग, नहीं मधुर मधु, नहिं विकास यहि काल, अली कली में ही बंध्यो, आगे कौन हवाल"*, प्रसाद का गीत *"बीती विभावरी जाग री, अम्बर पनघट में डुबो रही, तारा घट उषा नागरी"*, महादेवी वर्मा का वेदनापूर्ण स्वर *"मैं नीर भरी दुख की बदली, स्पंदन में चिर निस्पंद बसा, क्रंदन में आहत विश्व हँसा"*, सुभद्रा कुमारी चौहान का गान *"बुंदेले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी, खूब लड़ी मर्दानी वह तो झांसी वाली रानी थी"*, मैथिलिशरण गुप्त के प्रेरक शब्द *"नर हो न निराश करो मन को, कुछ काम करो, कुछ काम करो, जग में रहकर कुछ नाम करो"*, दिनकर की ओजस्वी वाणी *"याचना नहीं, अब रण होगा, जीवन जय या कि मरण होगा"*, बच्चन का आह्वान *"तू न थकेगा कभी, तू न रुकेगा कभी, तू न मुड़ेगा कभी, कर शपथ, कर शपथ, कर शपथ, अग्निपथ, अग्निपथ, अग्निपथ"* आदि कलात्मकता और रमणीयता से ओतप्रोत हिंदी के आकर्षक और मोहक रूप के ज्वलंत उदाहरण हैं।

साहित्य में हिंदी भाषा के सौन्दर्य के मानक परिवर्तित होते रहे हैं। रीतिकाल के अंतिम चरण में कठिन

शब्दों और अलंकार के मनमाने प्रयोग से हिंदी भाषा में लालित्य तत्त्व मिटता हुआ नज़र आया, तो सरल भाषा में सृजन करने का महत्त्व समझ में आया। इसके बाद कविता को छंद के बंधन से भी मुक्त किया गया, जिसपर निराला ने लिखा -

"नुपुर के सुर मंद रहें
चरण जब स्वच्छंद रहें।"

छंद से मुक्ति पाने के बावजूद भी हिंदी कविता में लयात्मकता व संगीतात्मकता बनी रही, यथा -

"अभी न होगा मेरा अंत
अभी अभी तो आया है
मेरे जीवन में मृदुल वसंत।"

'ध्वनि' कविता की इन पंक्तियों में नाद सौन्दर्य है, जो वस्तुत: हिंदी के शब्दों के अनोखे प्रयोग का एक अलग पक्ष उद्घाटित करता है और साहित्य के सौन्दर्य की नई अनुभूति कराता है।

जीवन यापन करने के लिए जिस प्रकार अनेक तरीके होते हैं, उसी प्रकार साहित्य की अनेक विधाएँ होती हैं; जैसे कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक, निबंध, रेखाचित्र, संस्मरण आदि। आधुनिक युग में, हिंदी के पितामह भारतेंदु हरिश्चंद्र ने गद्य साहित्य के विकास में भारी योगदान देते हुए गद्य की भाषा को अधिक ग्राह्य और सुलभ बनाया। उनके सबसे प्रसिद्ध नाटक का वाक्य *"अंधेर नगरी चौपट राजा, टके सेर भाजी, टके सेर खाजा"* प्रांजल और सुबोध हिंदी का सुन्दर उदाहरण है। कथा सम्राट् मुंशी प्रेमचंद ने आगे चलकर अपनी कहानियों और उपन्यासों में गाँव के किसानों और मज़दूरों की भाषा का प्रयोग करते हुए साहित्य में हिंदी की सुन्दरता की कसौटी में परिवर्तन किया। 'कफ़न' कहानी में देहाती भाषा द्रष्टव्य है -

"हाँ बेटा, बैकुंठ में जाएगी। किसी को सताया नहीं, किसी को दबाया नहीं। मरते-मरते हमारी ज़िन्दगी की सबसे बड़ी लालसा पूरी कर गयी। वह न बैकुंठ जाएगी, तो क्या ये मोटे-मोटे लोग जाएँगे, जो गरीबों को दोनों हाथों से लूटते हैं, और अपने पाप को धोने के लिए गंगा में नहाते हैं और मंदिरों में जल चढ़ाते हैं?"

ध्यातव्य है कि ग्रामीण शब्दावली का प्रयोग करते हुए भी प्रेमचंद ने भाषा में व्याकरण के नियमों को शिथिल होने नहीं दिया। प्रेमचंद ने सिद्ध किया कि अच्छे लेखक कठिन साहित्य के प्रेत न बनकर भाषाई सरलता की लीक अपनाते हैं। प्रेमचंद, सुदर्शन, विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक', भगवती प्रसाद वाजपेयी आदि रचनाकारों के साहित्य में शब्दों को समझने के लिए कोश की शरण नहीं लेनी पड़ती है। उनकी कहानियाँ एक ही साँस में पढ़ ली जाती हैं। साहित्य में सरल हिंदी के प्रयोग का जो जादू प्रेमचन्द ने दिखाया, वैसी ही करिश्मा मोहन राकेश के नाटकों की सहज भाषा में दृष्टिगत होती है। 'आधे-अधूरे' के संवाद में हिंदी के अभिनव प्रयोग की सुंदर झलक मिलती है -

"यूँ तो जो कोई भी एक आदमी की तरह चलता, फिरता, बात करता है, वह आदमी ही होता है... पर असल में आदमी होने के लिए क्या ज़रूरी नहीं है कि उसमें अपना एक माद्दा, अपनी एक शख़्सियत हो?"

मोहन राकेश के नाटकों की प्रसिद्धि प्रतिपाद्य विषय के कारण नहीं, अपितु भाषा की बुनियादी खूबसूरती और मुहावरों के सुन्दर प्रयोग से हुई।

साहित्य में हिंदी ऐसा पुष्प है, जो सौन्दर्य और माधुर्य से भरपूर है। आदिकालीन कवियों ने साहित्य में

हिंदी के सौन्दर्य की नींव रखी, मध्यकालीन रचनाकारों ने इसे परिमार्जित किया और आधुनिक कालीन साहित्यकारों ने अपने प्रेम, ओज और तेजस् से हिंदी को सींचा और पल्लवित किया। हिंदी के सुन्दर प्रयोग ने निस्संदेह साहित्य को उत्कृष्ट बनाया। आज हिंदी साहित्य विश्व स्तर पर प्रतिष्ठित है और दुनिया की किसी भी समृद्ध भाषा के साहित्य के समकक्ष माना जाता है। जब तक साहित्य में हिंदी भाषा का विलक्षण प्रयोग होता रहेगा, तब तक हिंदी साहित्य और हिंदी भाषा का नित्य विकास सुनिश्चित है।

- डॉ. माधुरी रामधारी
उपमहासचिव

अनुक्रम

लघुकथा

भारत	पुश्तैनी मकान	श्री यशपाल निर्मल	1
	गुज़रती बहार के फूल	श्री मार्टिन जॉन	1
	कुछ दिन और	श्री राम मूरत 'राही'	2
	प्रबुद्ध और बुद्ध	श्री सन्तोष सुपेकर	3
	पापा! तुम घर कब आओगे?	श्री शिशिर मिश्र	4
मॉरीशस	सिक्का	श्री हीरालाल लीलाधर	5
अमेरिका	हार की जीत	नीना वाही	6
यू.के.	चींटी	श्रीमती उषा वर्मा	7

कहानी

भारत	तेरे सुर और मेरे गीत	डॉ. मंजु शुक्ल	9
	उसका चाँद	श्री विजय कुमार तिवारी	13
	दूसरे दौर की प्रताड़ना	श्रीमती विनीता शुक्ला	15
सेशेल्स	एक चाहत ऐसी भी	श्री अशोक कुमार	20
अमेरिका	एल्बम	प्रीति गोविन्दराज	23
	उस एक सुबह के लिए	श्री दीपक कुमार चौरसिया	30
बाली	आघात	श्री मनोहर पुरी	35
ऑस्ट्रेलिया	तीन पत्र	श्रीमती अनीता बरार	40
कनाडा	हाईवे 401	डॉ. हंसा दीप	43
यूरोप	खानदानी डायरी	श्री आशुतोष द्विवेदी	47

कविता

भारत	लड़कियाँ	श्री भरत चन्द्र शर्मा	53
	नमन	डॉ. मंजु पुरी	53
	जी हाँ, मुझे कवि होने पर गर्व है	श्री हलीम आईना	55
	तो देश होता है	श्री विजयानंद विजय	56
	पतंग	श्री राजेन्द्र ओझा	57

	प्रतिबिम्ब	श्री देवेन्द्र मिश्रा	58
	गंगा : स्वयं एक कविता	सुश्री प्रज्ञा तिवारी	59
	बेदखल हो जाना	श्री भुपेन्द्र कुमार त्रिपाठी	60
	मज़दूर	श्री राजीव मणि	60
	विमुक्त घुमंतू	श्री व्यंकट धारासुरे	61
	तुम गाँव ही बने रहना	डॉ. योगेन्द्र अग्रवाल	62
	प्रकृति जीवन दाता प्राण-वायु का दान किया करती है	श्री गंगाधर शर्मा 'हिन्दुस्तान'	62
	जंगल और मनुष्य	डॉ. अमरनाथ प्रजापति	63
	नो मैन्स लैंड	श्री संजय भारद्वाज	64
	अपने काँटों से लगे, और पराये फूल	प्रियंका सौरभ	65
	गूँगी जहाज़	श्री लक्ष्मीकांत मुकुल	66
	बेटियाँ	स्मृति चौधरी	67
नेपाल	वीरांगना	श्रीमती रेखा यादव	67
मॉरीशस	सज़ा-ए-काला पानी	श्री अरविंदसिंह नेकितसिंह	68
	सच	श्री वशिष्ठ कुमर झमन	68
	बिछड़ना लाज़मी है	श्री सहलिल तोपासी	69
यूरोप	नींव की ईंट	श्रीमती इंदु बारौठ	70
श्री लंका	माँ	सुश्री हिमाली संजीवनी कोनार	70
सिंगापुर	कल रात फिर बात हुई	श्रीमती सुनन्दा वर्मा	71

दोहा

भारत	दोहे	मिति भारद्वाज	73

हाइकु

मॉरीशस	कोरोना	श्रीमती कल्पना लालजी	73
	मिले जुले हाइकु	श्रीमती अंजू घरभरन	75

मुक्तक

भारत	हिंदी भाषा व साहित्य सेवी जर्मन विद्वानों पर मनहरण मुक्तक	श्री सुरेश कुमार श्रीचंदानी	77

गीत

भारत	आस के पंछी	श्री सूर्य प्रकाश मिश्र	79

ग़ज़ल

ऑस्ट्रेलिया	हम भूल जाते हैं	डॉ. भावना कुँवर	79

नाटक / एकांकी

भारत	बस... सिर्फ़ एक...	श्री रमेश शाह	80
	कैंची और बंदूक	डॉ. सुनिल गुलाबसिंह जाधव	83
मॉरीशस	एक हिंदी अध्यापक की व्यथा	डॉ. सोमदत्त काशीनाथ	100
अमेरिका	पढ़ाई जारी है	डॉ. कुसुम नैपसिक	113

निबंध

भारत	आधुनिक भारतीय साहित्य और औपनिवेशिकता	डॉ. साकेत सहाय	117

संस्मरण

भारत	एक दिन का परिवार	श्री देवेंद्र मिश्रा	125
	हंगरी में हिंदी का परचम	श्रीमती विजया सती	128
ऑस्ट्रेलिया	उर्दू लेखिका : सावित्री गोस्वामी	रीता कौशल	130

यात्रावृत्तांत

भारत	मॉरीशस की धरती पर बजा हिंदी का डंका	श्री अंशुमन कुठियाला	134
	लेह लद्दाख मोटरसाइकिल यात्रा	श्री योगेन्द्र सिंह	134
मॉरीशस	अविस्मरणीय यात्रा - भोपाल से श्री मल्लिकार्जुन	श्री आकाश आर्यनायक	139
अमेरिका	अमेरिका के इन्द्रलोक ‘लास वेगस’ की ओर	श्रीमती शकुन्तला बहादुर	144
न्यूज़ीलैंड	कबीर की नगरी में	श्री रोहित कुमार ‘हैप्पी’	148

रिपोर्ताज

न्यू जर्सी	चुनौतियों से भरा ऑनलाइन हिंदी-शिक्षण	श्री अशोक ओझा	153

व्यंग्य

भारत	अथ घूरेलाल कथा	श्री महेश शर्मा	158
मॉरीशस	कुरसीदास	श्रीमती बिद्वंती शम्भु	168
अमेरिका	संवेदना डॉट कॉम	श्रीमती आस्था नवल	171
कनाडा	हिंदी : जिधर जगह उधर मात्रा	श्री धर्मपाल महेंद्र जैन	175

साक्षात्कार

भारत	कथाकार पुन्नी सिंह से खेमसिंह डहेरिया की बातचीत	प्रो. खेमसिंह डहेरिया	178
	साहित्य जनकल्याण को साधता है : सुरेशचंद्र शुक्ल	डॉ. दीपक पांडेय	181

जीवनी

मॉरीशस	हिंदी भाषा एवं साहित्य सेवी श्री हीरालाल लीलाधर की संक्षिप्त जीवनी	श्रीमती चन्द्रकला लीलाधर	196

समीक्षा

भारत	'नीली तितली' : संस्कृतियों का संगम बनाम जड़ों की तलाश	श्री अर्पण कुमार	210

पुश्तैनी मकान

- **श्री यशपाल निर्मल**
जम्मू-कश्मीर, भारत

पुश्तैनी घर अब छोटा लगने लगा था। दोनों भाइयों के परिवार एक ही घर में समा नहीं पा रहे थे। बड़े बेटे ने जब से होश संभाला, समझो सारा घर ही संभाल लिया। खेतों में मेहनत मज़दूरी करते हुए बाहरवीं तक की पढ़ाई पूरी की। उसके बाद सुबह ट्यूशन पढ़ाना दिन में प्राइवेट नौकरी और रात को किताबों की जिल्दसाज़ी का काम करते हुए एम.ए. तक की पढ़ाई भी की और घर भी चलाया। इसी दौरान छोटे को फ़ौज में भर्ती करवाना, बहनों की शादियाँ और पुश्तैनी मकान को कच्चे से पक्के में परिवर्तित करना भी साथ-साथ चला। छोटा भी जब आता थोड़ी बहुत मदद कर जाता।

अब दोनों भाइयों की शादियाँ हो गईं। बीवियाँ आ गईं। बच्चे हो गए। घर छोटा पड़ने लगा।

पिता जी ने कहा कि दोनों में से एक, नया मकान बना ले, जो भी बनाना चाहे। लेकिन जो भी मकान बनाएगा दूसरा उसकी मदद करेगा। इस पर बड़ा चुप रहा। कहता भी क्या घर को घर समझता था। इसलिए कुछ बचाकर रखा ही नहीं।

छोटे भाई ने डायरी निकाली और कहा, "यह देखो मैंने एक-एक पैसे का हिसाब लिख रखा है, जो घर पर खर्च किया है। मैंने बहनों की शादियों पर भी पैसा दिया। इस तरह अपनी 20 साल की फ़ौज की नौकरी में मैंने 15 लाख रुपये घर पर खर्च किए हैं। इसलिए पुश्तैनी घर पर मेरा हक बनता है। नया मकान बनाए बड़ा। इसने सारी उमर किया भी क्या है। और अब मेरे पास इसकी मदद के लिए एक पैसा भी नहीं है।"

बड़ा चुपचाप सुनता रहा। उसकी आँखें छलकने ही वाली थीं। मन में कुछ विचार किया और फिर कुछ देर बाद पत्नी-बच्चों को लेकर बिना कुछ कहे पुश्तैनी मकान से बाहर हो गया।

yash.dogri@gmail.com

गुज़रती बहार के फूल

- **श्री मार्टिन जॉन**
पश्चिम बंगाल, भारत

उसने तो सिर्फ़ पचास रुपये माँगे थे, वह भी वृद्धा पेंशन के पैसों से। बरसों से घर में काम कर रही कामवाली बाई की बेटी के जन्मदिन पर चुपके से एक गिफ़्ट देना चाहती थी। उसकी इस छोटी-सी माँग पर तूफ़ान खड़ा हो गया। इस बात पर इतना बड़ा प्रलय मच जाएगा, उसने ऐसा सोचा नहीं था। बेटे ने इतनी जली-कटी सुनाई कि मन-मिज़ाज तिक्त हो गया। बहू के सामने भीगी बिल्ली बना रहता है। माँ को भेदने के लिए ज़हर से भरे बाण हमेशा तैयार रखता है। और बहू ... उसे तो बस कोई बहाना मिलना चाहिए, काँटे चुभाने के लिए। उस दिन उसने इतने काँटे चुभोए कि सास का हृदय छलनी हो गया। अपमान और घोर प्रताड़ना का कड़ुआ घूंट पीकर भूखे पेट सारी रात

बिस्तर पर करवटें बदलती रही। ज़िन्दगी की शाम इतनी स्याह और भयावह होगी, वह भी अपने घर में, अपने लोगों के बीच, इसका उसे कतई अंदेशा नहीं था। क्या अंतिम सांस लेने तक ऐसी बदतर ज़िन्दगी जीनी पड़ेगी?

सुबह हुई। उसने एक कड़ा फ़ैसला लिया और मौका देखकर दबे पाँव घर से निकल पड़ी।

माँ का लापता हो जाना बेटे के लिए कोई ख़ास परेशानी का सबब नहीं था। हाँ, वृद्धा पेंशन की एक मुश्त रकम हाथ से निकल जाने का अफ़सोस उसे अवश्य साल रहा था। लोक-लाज के मारे इधर-उधर खोजबीन की, लेकिन विशेष तत्परता नहीं दिखाई।

एक लम्बा समय बीत गया माँ को गायब हुए। इस दरमियान घर के लोग भूल गए कि यहाँ एक वृद्ध माँ भी रहती थी। उसकी वापसी का इंतज़ार किसी को नहीं था। उसके कमरे को स्टोर रूम बना दिया गया था।

उस दिन पत्नी घर पर नहीं थी। शाम उतरने से पहले चाय बनाने के लिए वह दूध गरम कर रहा था। उसी समय कॉलबेल बजा। दरवाज़ा खोला तो देखा, सामने पोस्टमैन खड़ा था। उसने एक रजिस्टर्ड लिफ़ाफा सौंप दिया। लिफ़ाफा शहर के सेंट विन्सेंट आश्रम की सुपीरियर की ओर से भेजा गया था। फ़ौरन उसने लिफ़ाफा खोला। टेढ़े-मेढ़े अक्षरों में लिखा पत्र पढ़ना शुरू किया, "बेटा, ज़िंदा हूँ, लेकिन मौत के करीब हूँ... पत्र के साथ हस्ताक्षर वाली रकम निकासी स्लिप भेज रही हूँ ... लगभग ढाई साल की पेंशन की रकम है... लाइव सर्टिफ़िकेट दे चुकी हूँ। पत्र मिलते ही फ़ौरन बैंक चले जाना... छोटू की ऊँची पढ़ाई में लगा देना।... सदा खुश रहो। तुम्हारी माँ।"

माँ ने बचपन में उसे प्यार से अनगिनत चपतें लगाई थीं। लेकिन इस उम्र में माँ की इस ज़ोरदार चपत ने धिक्कार के साथ उसे यह एहसास दिला दिया कि गुज़रती हुई बहार में भी फूल खिल सकते हैं।

martin29john@gmail.com

कुछ दिन और

- श्री राम मूरत 'राही'
इंदौर, भारत

"घर का मालिक आज कोर्ट गया है। भगवान करे वह मुकदमा हार जाए, तो अच्छा है।" मुर्गी बड़बड़ाने लगी।

पास ही दाना चुग रहे बच्चे ने पूछा - "माँ! आप उनके लिए बुरा क्यों सोच रही हैं?"

"बेटा! उनका बुरा इसलिए सोच रही हूँ, क्योंकि मैं कुछ दिन और जी लूँगी।"

"माँ! मैं समझा नहीं!" बच्चे ने भोलेपन से कहा।

"बेटा! जब मनुष्य को ज़्यादा खुशी होती है, तो वह पार्टी मनाता है और जब पार्टी मनाता है, तो हम जानवरों को...।"

rammooratrahi@gmail.com

प्रबुद्ध और बुद्ध

- श्री सन्तोष सुपेकर
उज्जैन, भारत

दूसरे शहर के एक बड़े महाविद्यालय से आए कुछ सदस्य उस शहर के हिल स्टेशन की प्रसिद्ध पहाड़ी पर घूमने गए। एक जगह बड़ी-बड़ी खाइयाँ थीं, जिनके किनारों पर रेलिंग लगी थी। सब जाकर वहाँ खड़े हो गए।

"क्यों?"

वहाँ खड़े एक मूंगफली बेचने वाले से महेन्द्र जी ने पूछा "यहाँ क्या खास बात है?"

"खास बात? हाँ साब। यां लोग खड़े होके फोटू-वोटू खींचते हें, और... "

"फ़ोटो? वो तो ठीक है, पर और क्या?"

"ओर... इस जगा, रेलिंग के पास खड़े होकर सामने गेहरी खाइयों की तरफ़ मू करके जोर से चिल्लाते हें, तो सामने घाटी में से आपकी ही आवाज़ आपको वापस सुनाई देती है।"

"ओ इकोइंग! अरे वाह! हम भी देखते हैं।" और कुछ सोचकर वे ज़ोर से चिल्लाए -

"...वाद का नाश हो, ...वाद मुर्दाबाद!!"

खाई के उस पार, घाटियों से आवाज़ गूँजी "वाद मुर्दाबाद।"

और सब हँस पड़े।

फिर उसी प्रबुद्ध समूह में से कुछ ने दूसरी विचारधारा की आवाज़ लगाई -

"नहीं, ...वाद मुर्दाबाद!!"

घाटियों में फिर आवाज़ गूँजी

"....द मुर्दाबाद!!"

इस तरह एक ही समूह में दो गुट बन गए और अपनी-अपनी विरोधी विचारधारा की मुर्दाबाद के नारे लगाने का सिलसिला चल पड़ा। घाटियों से भी प्रत्युत्तर में 'मुर्दाबाद-मुर्दाबाद' ही सुनाई देता। ज़ोर-शोर से अन्य विचारधारा के विरुद्ध बोलने से मनोरंजन करने आए चेहरे अब तमतमाने लगे थे।

पास खड़े एक संत यह सब देख रहे थे। एकाएक उन्होंने ज़ोर से आवाज़ लगाई, "नफ़रत का नाश हो। प्रेम, सद्भावनावाद ज़िंदाबाद!!"

पर अब घाटियों में से एक बार नहीं, बल्कि दो बार पलटकर आवाज़ गूँजती आई -

"...सद्भावनावाद ज़िंदाबाद-ज़िंदाऽऽऽबाद!!"

क्योंकि इस बार दोनों परस्पर विरोधी समूहों ने मिलकर प्रेम के समर्थन में हर्षनाद किया था।

santoshsupekar29@gmail.com

पापा! तुम घर कब आओगे?

- **श्री शिशिर मिश्र**
मुंबई, भारत

डॉ. शशिकांत सुबह 8.00 बजे ही घर से निकल गए थे। महामारी में मरीज़ों की संख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही थी। एक बार डॉक्टर शशिकांत अस्पताल जाते, तो उनके आने का कोई तय समय नहीं होता। घर पर पत्नी शुभांगी व 10 साल की बेटी सुनंदा अकेली ही रहती हैं। उनको हमेशा मेरी चिंता लगी रहती है। पिछले सप्ताह मैं दो दिन घर नहीं जा पाया था। सुनंदा तो छोटी है। वह यह सब नहीं जानती। वह हमेशा फ़ोन करती रहती है। अब कुछ आधे घंटे पहले ही उसने फ़ोन किया था – "पापा! आज मम्मी ने दही बड़े बनाए हैं। आप जल्दी घर आ जाइए।

सुनंदा बड़ी प्यारी बच्ची है। उसे हम घर पर प्यार से 'सुनंदू' पुकारते हैं। मैंने कहा – "सुनंदू, मैं घर पर जल्दी ही आ जाऊँगा। तुम अपनी मम्मी के साथ दही बड़े खा लेना। अच्छा बताओ मेरी प्यारी सुनंदू क्या कर रही है?"

सुनंदा - "पापा! मैं अभी ड्राइंग बना रही हूँ। मैंने अभी एक पेड़ बनाया है। जो ढेर सारा ऑक्सीजन देता है।"

शशिकांत - "बहुत ही बढ़िया! सुनंदू ऐसा करो, दो पेड़ और बनाओ, तो वे हमें बहुत ही ज़्यादा ऑक्सीजन देंगे।"

अचानक सिस्टर दौड़ती हुई आई और डॉक्टर साहब से कहने लगी -

"डॉक्टर साहब! बेड नंबर 4 की हालत बहुत खराब हो रही है। उसका ऑक्सीजन लेवल 74 हो गया है। मैंने सुनंदू से कहा - "बेटी! मैं बाद में तुम से बात करता हूँ।"

फ़ोन काटकर, शशिकांत मरीज़ के पास गए। उन्होंने मरीज़ का पल्स चेक किया। तुरंत सिस्टर को इंजेक्शन लगाने के लिए कहा। धीरे-धीरे मरीज़ों की संख्या बढ़ती जा रही थी। डॉक्टर और सिस्टर की संख्या सीमित थी, जिससे उन पर दबाव बढ़ता जा रहा था। संसाधनों की कमी ने डॉक्टरों की चिंता और बढ़ा दी थी। रात के 11.00 बज चुके थे। घर से दुबारा फ़ोन आया।

"पापा! आप कब आओगे? आपने जल्दी घर आने के लिए कहा था ना?"

डॉक्टर शशिकांत - "मेरी प्यारी बेटी सुनंदू, मेरा काम अभी खत्म नहीं हुआ है। तुम्हारे पास वहाँ मम्मी है, ना! यहाँ! मेरे पास मरीज़ हैं। इनको मुझे ठीक करना है! मैं जल्दी मरीज़ों को ठीक कर के घर आ जाऊँगा। तुम जल्दी से सो जाओ।"

समय गुज़रता गया। रात के 1.30 बज गए। शुभांगी का फ़ोन आया - "शशि! तुम अभी तक आए नहीं। सुनंदू इंतज़ार करके सो गई। आप घर कब आ रहे हो।"

शशिकांत - "शुभांगी मैं! शुभांगी मैं!"

शुभांगी - "मैं! मैं! क्या? बात क्या है?

शशिकांत - "शुभांगी! मैंने कोविड का टेस्ट करवाया था। उसकी रिपोर्ट आज आई है। वह भी पॉज़िटिव।"

शुभांगी - "क्या? अब?"

शशिकांत - "अब क्या? अब मुझे तुम्हारी व सुनंदू की चिंता हो रही है। मैं सोच रहा हूँ, यहाँ अस्पताल में ही क्वॉरन्टीन हो जाऊँ, जिससे तुम दोनों घर पर सुरक्षित रहोगे। इधर अस्पताल में मरीज़ों की देखभाल के लिए मैं उनके करीब रहूँगा।"

शुभांगी - “पर! मैं सुनंदू से क्या कहूँगी?”
शशिकांत - “उसे कह देना। पापा जल्दी घर लौटेंगे। वह भी एक बड़ा-सा पेड़ लेकर।”

shishirmishra961@gmail.com
ssmhindibooks@gmail.com

सिक्का

- श्री हीरालाल लीलाधर
लालमाटी, मॉरीशस

मैं बस में था। जिस बर्थ पर बैठा था, वह तीन सीटों वाला था। तीनों सीटें खाली थीं। मैं आराम से नवाब की तरह बीच में बैठ गया। मुझे आरम्भ से अन्त तक जाना था। सफ़र लम्बा था। बस भर जाने के इन्तज़ार में खड़ी थी। समय होने पर वह स्टॉप से हट तो गई, पर अड्डे से निकलने में कछुए की चाल चली। यह कोई नई बात नहीं थी। निजी बस चालकों का यही रवैया होता है। कछुए की चाल और अधिक-से-अधिक यात्रियों को चढ़ाना। उधर सी.एन.टी. का एकदम उलटा। वह सरकारी होती है। फ़िक्स सालेरी। बस-स्टॉप के अलावा कहीं रुकती नहीं। आप हाथ देते रह जाएँगे। चालक की नज़र पड़ेगी ही नहीं। हाँ कभी-कभी यदि वह ड्रायवर या कंडक्टर के किसी करीबी या रिश्तेदार के हाथ हों, तो ड्रायवर की दृष्टि अवश्य पड़ जाती है और गाड़ी बिना बस-स्टॉप के रुक जाती है।

खैर सी.एन.टी. को छोड़ते हैं और अपनी कहानी को आगे ले चलते हैं। अड्डे से निकलते-निकलते कई यात्री चढ़ पाए। एक दादी भी अपने पोते को लेकर चढ़ी। मेरे बर्थ पर दो सीटें खाली देखकर वह रुकी। मुझे बीच से हटकर किनारे खिड़की के पास खिसक जाना पड़ा।

बैठने से पहले दादी बोली "आपका पैसा!"

बात मेरी समझ में नहीं आई। मैंने पूछा "पैसा?"

"हाँ नीचे गिरा है।"

"नीचे?"

उसने हाथ से इशारा किया। मैंने नीचे देखा। पाँच रुपये का सिक्का पड़ा दिखा।

"क्या यह मेरा है?" मेरे मुँह से निकला।

"हाँ, आप ही का है।" वह विश्वास से बोली और मेरे उठा लेने की प्रतीक्षा करने लगी। पोते को भी बैठने नहीं दिया। फिर मैं ने न चाहते हुए सिक्का उठा लिया। फिर दोनों आराम से बैठे। पोता मेरी बगल में बैठा। वह स्वभाव से चुलबुला था। दादी कृशकाय थी। वह अपने पोते को नियंत्रण में रखने में व्यस्त रही।

इधर सिक्का मेरे हाथ में तुल रहा था। मुझे विश्वास नहीं हो रहा था कि मेरा ही है। मैं दुविधा में था। सिक्का जेब में नहीं डाला। उसे मुट्ठी ही में रखे रहा। क्या करूँ? सोचने लगा। कई विचार आए-गए, पर किसी निश्चय पर नहीं पहुँच पाया। बस दुविधा की ही चलती रही रील। सिक्का मेरा हो सकता है और नहीं भी। मैं जाँचकर भी किसी निश्चय पर पहुँच नहीं सकता था, क्योंकि मुझे पता ही नहीं था कि मेरी जेब में क्या और कितना था? मैंने पैसे-पैसे का हिसाब कभी नहीं रखा। कितना आता है और कितना जाता है, पता ही नहीं रहता। फिर यह सिक्का मेरी जेब में था और गिर गया, कह नहीं सकता।

जब अपना नहीं, तो अधिकार छोड़ ही दूँ, परन्तु यह महिला। इसने तो विश्वास के साथ कहा "आपका पैसा गिरा है।" उसके सामने मैं पुन: गिरा नहीं सकता। अतः मुझसे न गिराते बना और न रखते बना। आप लोगों को पता ही होगा कि जब

कोई निर्णय नहीं सूझता, तो मस्तिष्क शीघ्र तपने लगता है। फिर मेरे मस्तिष्क में विकल्पित विचारों का ताँता लग गया। क्या करूँ इसका? यह प्रश्न मस्तिष्क पटल पर विशेष रूप से चिपक गया।

बस में मेरा तो किराया लगता नहीं। सोचा, बगल वाली दादी इसे मिलाकर अपना किराया दे देगी। पूछने पर पता चला, कि वह भी वरिष्ठ थी। फिर मन में आया कि बच्चे के लिए कोई मिठाई खरीद ली जाए, पर इस एक सिक्के में कुछ खास मिलेगा भी नहीं। दूजे महिला की आवाज़ में स्वाभिमान टपका था। स्वीकार करेगी नहीं। फिर मेरा मुँह सब के सामने छोटा-सा हो जाएगा।

विचार फिर बदला। रास्ते में किसी भिखारी को दे दूँ, पर दान देना मेरी फ़ितरत में था नहीं। दान भी कोई अपनी कमाई का करें, तो सार्थक होगा। किसी और का दें, तो चोरी और ऊपर से सीना जोरी। यह भी गया और अन्य का अनुगमन हुआ। कंडक्टर को दे दूँ। बस में जो रह जाते हैं, सब उसी के हो जाते हैं, पर यह तो रह नहीं गया है। यह मेरे हाथ में है। इतना तो निश्चित है कि यह उसका नहीं है। मेरा हो सकता है।

फिर सोचा, किसी मंदिर की दान पेटी में डाल दूँगा। धार्मिक कार्य में काम आ जाएगा। तभी विचार पलटा 'भगवान सब देखता है। उसको पता है कि यह मेरा नहीं है। फिर कैसे दूँ? यह मेरे हाथ आया, क्या देने के लिए? नहीं, भगवान को पता है कि मैं दान देता नहीं। फिर इसे दान पेटी में कैसे डालूँ? हर प्रकार से मेरी प्रकृति के प्रतिकूल होगा।

यह कोई सिक्का न होकर कभी न सुलझनेवाली उलझन बन गया। फिर मन में बच्चे की प्रवृत्ति हावी हुई। जब वश में नहीं तो फेंक दूँ, पर दिमाग ने तुरन्त प्रतिकार किया "लक्ष्मी का अपमान होगा। आज के ज़माने में लक्ष्मी सब पर हावी, सब से शक्तिशाली दिखाई देती है। लोग उसे देवी-देवता की श्रेणी में रखकर घड़ी-घड़ी सम्मानित करते हैं। इसलिए लक्ष्मी का तिरस्कार उचित नहीं होगा।"

मैं इसी पशोपश में उलझा था कि बस अपनी मंज़िल पर पहुँच गई। सभी यात्री उतरने लगे। मैंने सिक्के को अपनी जेब में न डालकर बस्ते की जेब में छोड़ दिया। आज भी उसी में होगा। शायद कभी किसी इमर्जेन्सी में काम आ जाए।

hiralall_leeladhur@yahoo.com

हार की जीत

- नीना वाही
अमेरिका

सीमा के हाथ में तलाक के कागज़ हैं, सोच में पड़ी है पिछले एक साल से दौड़-भाग और कचहरी की हाज़री भरने से छुट्टी मिली। रोज़-रोज़ का सुबह चार बजे से कुकर का शोर बंद हो जाएगा। आधी-आधी रात को उठकर पतिदेव को खाना पकाकर खिलाने से छुट्टी मिलेगी, ससुराल वालों के ताने शान्त हो जाएँगे। ऐसी ही अनगिनत ज़िम्मेदारियों से हमेशा के लिए छुटकारा मिल जाएगा।

वाह! फिर तो आज़ादी से ज़िंदगी जीने का अवसर सीमा पा जाएगी। इतना सुनहरा भविष्य दिख रहा है, फिर भी सीमा को खुशी का अहसास क्यों नहीं हो रहा। आज तो सीमा को खुशी से झूमना चाहिए, लेकिन उसका मन दुखी क्यों हो रहा है? क्या उसकी आज़ादी अकेलेपन और अवसाद से घिरी हुई लग रही है? क्या जीतने के प्रयास में उसने हार ही हासिल की है? ऐसे ही कितने विचारों में घिरी हुई अचानक चौंकी। किसी ने उसके आँचल

के छोर को खींचा। सीमा ने घूमकर देखा उसकी नन्ही बेटी सोना मुस्कुराकर उसकी ओर देख रही है। सोना की मुस्कुराती हुईं आँखों में सीमा को एक उजले भविष्य की झलक दिखाई दी। आज सब कुछ खोने के बाद सोना के, ज़िंदगी में, होने से सीमा की हार भी मानो जीत में बदल गई।

neeshina@gmail.com

चींटी

- श्रीमती उषा वर्मा
यू.के

चींटी रोज़ सुबह अपने परिवार के साथ बाहर निकल जाती और दो दिन का खाना घर ले आती। बड़े आराम से दिन कट रहे थे। चींटी अपने बड़े परिवार के साथ एक साहित्यकार के घर में रहती थी। उसे लगा था कि साहित्यकार एक अच्छा आदमी है। उसके घर बहुत से लोग आते हैं और देर-देर तक बैठे रहते हैं, चाय-पानी-खाना-पीना चलता रहता है। चींटी बहुत सुखी थी कि दुनिया में इतने अच्छे लोग हैं कि तभी एक दिन अभी सुबह नहीं हुई थी कि चींटी को लगा कि जैसे घर में बवंडर उठा है। उसके बच्चे भी घबराए और चींटी भी घबराकर, परेशान होकर, बाहर निकल आई। अभी चींटी संभल भी न पाई थी कि उसके आधे परिवार को किसी ने खींच लिया। उसे लगा कि कहीं ज़रूर कोई ब्लैक होल है, जिसमें सब समा गए। अब वह क्या करे? जल्दी-जल्दी बचे हुए बच्चों को और अपने चींटे को घसीटती किसी तरह घर से भागी। उसे लगा कि कोई मशीन थी, जिसमें उसका सारा परिवार समा गया। जो बचे थे वे भी घायल हो गए थे। भागते-भागते वह जंगल में जाकर छिप गई। कई-कई दिन निकल गए चींटी रोती रही। उसे हर समय बच्चों की याद आती थी। फिर चींटे ने उसे समझाया कि हमारी तो ज़िंदगी ही ऐसी है। उठो चलो, हम फिर से कहीं अपना घर बनाएँ।

चींटी उठी, पर उसने मन में सोचा हमें कुछ करना चाहिए, ऐसे चुपचाप कब तक सहते रहेंगे। चींटी ने सब जानवरों से इस बारे में बात की, पर किसी ने उसकी बात पर ध्यान नहीं दिया। हारकर वह जंगल के राजा शेर के पास गई और उससे कहा "आप तो जंगल के राजा हैं, आपकी बात सब मानेंगे। आदमियों का आतंक दिन-प्रति-दिन बढ़ता जा रहा है। उनकी आबादी तो बेइन्तहा बढ़ रही है, जंगल कट रहे हैं, मोटर कारें कितनी हो गई हैं। जंगल से निकलकर जब हम आबादी की तरफ़ जाते हैं, तो मारे जाते हैं, कुचले जाते हैं। आखिर आदमी का आतंक कब खत्म होगा?"

शेर ने सोचा कि चींटी की बात में कुछ तथ्य तो है। अतः चींटी से बोला जाओ सारे जानवरों से कह दो कि जंगल के राजा शेर ने नदी के किनारे सभा बुलाई है, सब को आना है। चींटी अपने बचे-कुचे परिवार के साथ इस काम में जुट गई। महीनों की मेहनत के बाद जंगल के सारे जानवर आने को तैयार हो गए।

सभा का दिन आ गया। ठीक समय पर सब जानवर अपनी-अपनी जगह पर बैठ गए। शेर ने कहा "चींटी तुम्हारे एजेंडा में क्या-क्या है, कहो।" चींटीं ने कहा कि मैं समझती हूँ कि हमें आदमियों का भी एक प्रतिनिधि चाहिए, क्योंकि समस्याएँ तो सब उन्हीं की पैदा की हुई हैं।

अब सवाल उठा कि किसे बुलाया जाए। किसी ने प्रस्ताव रखा कि किसी राजनैतिक लीडर को बुलाया जाए। विरोध हुआ। नहीं, उनका क्या

भरोसा झूठे वादे करते हैं, कत्ल करते हैं, वे तो अपने को बचाने के लिए गुंडे रखते हैं। जंगलों को काट-काटकर अपने लिए बड़े-बड़े मकान बना रहे हैं या फिर बड़ी-बड़ी फ़ैक्टरियाँ लगा रहे हैं। हमारे रहने की सारी जगहें छिनती जा रही हैं। हमारे लिए न घर की जगह है, न हवा और पानी। हम सांस तक नहीं ले सकते हैं। और फिर दूसरा प्रस्ताव आया कि डॉक्टर को बुलाया जाए, उसका भी विरोध हुआ। डॉक्टरों का भी क्या भरोसा, उनमें से कुछ तो गरीब बच्चों की किडनी निकाल लेते हैं और उसका व्यापार करते हैं। मरीज़ तड़पता रहता, कोई परवाह नहीं। फिर पुलिस के आदमी को बुला लेते हैं, लेकिन कोई तैयार नहीं हुआ। कुछ पुलिस के आदमी तो घूस लेते हैं, कमज़ोर आदमी को पीटते हैं, झूठे मुकदमे बनाते हैं। नहीं, पुलिसवाला नहीं चलेगा! सब लोग सोचने लगे कि आखिर किसे बुलाया जाए।

तब कहीं दूर से आवाज़ आई। बंदर उछलता हुआ आया, बोला "क्यों न किसी साहित्यकार को बुलाया जाए? साहित्यकार संवेदनशील होते हैं। समाज में फैली हर अनैतिक बात का विरोध करते हैं। उनके पास कलम की ताकत होती है। वे आदर्शवादी होते हैं और समाज को बदलने की बात करते हैं।"

चींटी घबराकर बोली "नहीं-नहीं। मैं एक साहित्यकार के घर में ही तो रहती थी। पर देखो दूसरों के दुख पर झूठे आँसू बहाते हैं, ऊँची-ऊँची बातें करते हैं, पर वह सब केवल बातें हैं। साहित्यकार का कोई विश्वसनीय चरित्र नहीं होता। वे लोग आपस में ही गुट बना लेते हैं और कलम की लड़ाई करते हैं। औरतों की बात चले, तो ऐसे आंसू बहाते हैं, रो-रोकर कविता लिखते हैं। और घर पहुँचते ही बीवी से मारपीट करते हैं। गरज़ यह कि गरीबों के दुख की तो बात करते हैं, पर नौकर जो बच्चा है उसे मारते-पीटते हैं। खाना भी नहीं देते।"

किसको बुलाया जाए इस पर एक राय नहीं बन पाई। शेर ने कहा आज की सभा भंग होती है। मुझे दूसरी मीटिंग में जाना है। चींटी अब तुम जाकर आदमी के बीच में रहो और पता लगाओ कि किसे बुलाया जाए और दो महीने बाद फिर यहीं पर सभा लगेगी।

चींटी उदास होकर लौटी और सर पर हाथ रखकर बैठ गई। और सोचने लगी आज तो मैं बहुत थक गई हूँ, कल चींटे के साथ जाऊँगी। और तब से चींटी-चींटा फिर से सुयोग आदमी की खोज में घर-घर घूम रहे हैं।

ushaverma9@hotmail.com

तेरे सुर और मेरे गीत

- डॉ. मंजु शुक्ल
लखनऊ, भारत

लम्बे खिंचते लॉकडाउन में सखियों के संग वार्तालाप से वंचित श्रीमती लीलाधर बिन जल मछली-सी हो गई है। अब उसके पतिदेव का देशी, विदेशी कवि-सम्मेलनों में जाना भी नहीं होता। अतः ऊपरी आमदनी पर रोक है। विख्यात कवि-पति चौबीसों घंटे घर में रहकर साहित्य साधना में लीन हैं और पन्ने पर पन्ने फाड़ते जाते हैं। कवि-पति का लिखा कोई भी कागज़ बेकार नहीं होता, सो वह रद्दी की टोकरी में जा नहीं सकता, कभी कागज़ की गेंद बनती है और कभी पन्नों के मनकों से बनी माला, मेज़ पर ही शोभायमान रहती है। इस माला में अधिकांश अन्य कवियों की प्रसिद्ध पंक्तियाँ सुरक्षित रहती हैं, इस आस में कि कविवर जाने कब उन्हें कैद से मुक्त कर, नए रूप में मंच पर प्रस्तुत कर वाहवाही लूट लेंगे। कवि परिवार में केवल वे और पत्नी ही हैं, बच्चे बाहर हैं, एक सहायिका अंगूरी है, जो इन दिनों लॉकडाउन में अपने घर पर है।

जब कविवर, कवि-सम्मेलनों की शोभा बढ़ाया करते थे, पत्नी सहेलियों संग ताश पार्टी, सिनेमा और ब्यूटी पार्लर जाने के शौक पूरा कर लिया करती थी, क्योंकि कवि-सम्मेलनों से पतिदेव, नोटों और प्रशंसा से भरे-पूरे मुदित मन से घर लौटते थे। पर अब लॉकडाउन में खाने की मेज़ ही पति की काव्य-साधना, देशी-विदेशी काव्य-सम्मेलनों और वेबिनारों का मंच बनी हुई है। जले पर नमक यह है कि इन दिनों पतिदेव की फ़ैन कवयित्रियाँ और शिष्याएँ, जो उनके आसपास खद्योत-सम टिमटिमाती थीं, वे गायब हैं, पर पुरानी लगी जाती कहाँ है, सो कविवर वक्त-बेवक्त पत्नी को विश्वास दिलाते रहते हैं कि प्रिय चन्द्रमुखी तुम्हीं इस देवदास की स्थाई प्रेरणा हो। यद्यपि कोरोना रूपी खलनायक से सदैव चौकन्नी रहने वाली कवि-पत्नी को डर सताता रहता है कि यदि उनके देवदास, काव्य-रस की मदहोशी में ज़रा भी फिसले, तो परिणाम भयंकर होंगे। अतः वे शारीरिक दूरी बनाए रखने के सरकारी फ़रमान से कवि-पति को निरंतर आगाह कराती रहती है, सम्भवतः यही कारण है कि कविवर का विरह महाकाव्य पूर्णता की ओर शीघ्रता से अग्रसर हो रहा है।

इस लॉकडाउन में रसिक कविवर की कविताई के साथ ही कविप्रिया को जो बात सबसे अधिक परेशान करती है, वह है - स्वयं के लिए फ़ुरसत के रात-दिन का अभाव। अब तो छज्जे पर पड़ोसिनों से लंतरानी भी असम्भव है, क्योंकि उन सभी के प्राणनाथ इन दिनों घर पर ही स्थापित हैं। वैसे भी इस लॉकडाउन में सिनेमा, जिम और मॉल, सभी पर ताले लटके हैं, तो चंट सहेली और चटोरी आंटी से भी क्या उम्मीद रखना। अब तो गलियों, चौबारों, बाज़ारों में प्रेमी-प्रेमिकाएँ भी गलबहियाँ डाले नज़र नहीं आते, घर से निकल कर जाएँगे कहाँ, सड़कों पर तो लाठी लिए मामू तैनात हैं।

कवि-पत्नी चाय बनाने की जुगत में जुटी थी कि कविवर ने आवाज़ दी "अरी चन्द्रमुखी, मेरी नींबू वाली चाय!" कवि-पत्नी कान से मोबाइल सटाए एक कंधे से उसे सम्हाले अपनी माताश्री से खानदानी समाजशास्त्र सीख रही थी कि फलाँ चाची ने लॉकडाउन का फ़ायदा उठा वर-कन्या पक्ष के केवल पच्चीस सदस्यों को बुला बेटी ब्याह दी। इतनी कंजूसी तो कोर्ट मैरिज करने पर भी नहीं होती, आखिर प्रीतिभोज तो अच्छा खासा देना ही होता है। चाय का पानी उबाल पर उबाल ले रहा

था। मम्मी जी को मलाल था कि इन्ही चाची जी का 20 जनों का खानदान हमारे विवाह में एक नामी-गिरामी होटल के जिम में गया था। कवि-पत्नी माँ के ज़ख्मों पर फाहा रखना चाहती थी, पर कहाँ, कविवर की चाय की तलब बढ़ती जा रही थी। बुझे मन से कवि-पत्नी ने माँ से फ़ोन काटने को कहा और "जी अभी आई!" कह नींबू ढूँढने लगी, पर नींबू है कहाँ? दो दिन से तो सब्ज़ीवाला फटका नहीं। कवि-पत्नी के माथे पर पसीना छलछला आया तभी मोबाइल पर नाम उभरा "अंगूरी"। कवि-पत्नी ने राहत की साँस ली। चलो इसे मेरा नम्बर तो याद है। उसने झट से गैस बन्द की और मोबाइल लिए छज्जे पर पहुँच गई, पतिदेव से फुसफुसा कर बोली, "अंगूरी का फ़ोन है?" कवि भी अंगूरी देवी की महत्ता से परिचित हैं, सो वे चाय की चाह दबा अखबार के पन्ने पलटने लगे। कवि-पत्नी को इन दिनों अखबार ज़रा भी नहीं भाते हैं। समाचार-पत्रों में बस यही पढ़ते रहो कि कोरोना के कितने केस रिपोर्ट हुए और कितने ऊपर चले गए। पढ़-पढ़कर डर लगने लगता है, हालाँकि डर भी ज़रूरी है। समस्या यह है कि रद्दी वाला आता नहीं। अखबारों की तही बना के कवि-पत्नी को ही रखनी पड़ती है, कविवर सुबह उठते ही दातून की तरह ब्रश मुँह में दबाए अखबार के पन्ने बेसब्री से पलटते हैं। लॉकडाउन में सभी खर्चों पर रोक है, पर 3-4 अखबार पूर्ववत् छज्जे पर कवि-पत्नी को मुँह चिढ़ाते रहते हैं। कान पर मोबाइल लगाए कवि-पत्नी ने पुनः रसोई का रुख किया, देर तक कंधे पर मोबाइल टिकाने से गर्दन में दर्द होने लगा, पर अंगूरी की ऑनलाइन क्लास जारी रही।

अंगूरी, कवि-पत्नी को, बरतन चमकाने के नुस्खे समझा रही थी - "भाभी जी, गुनगुने पानी में ज़रा-सा नींबू और नमक डालकर बरतन धोएँगी, तो वे चमक उठेंगे और हाँ झाड़ू-पोंछा कौन-सा कठिन काम है? इससे आपकी कमर भी मेरी तरह पतली लचकदार हो जावेगी।" अंगूरी की फीकी-सी हँसी सुनी और कवि-पत्नी भुना बैंगन हो गई, पर अंगूरी कहाँ रुकने वाली थी। बोली "वैसे भाभी आप दोहरे बदन की है न, सो थक तो जाती होंगी, पर क्या करें? लॉकडाउन जो है! सो झाड़ू मारते अगर साँस फूलने लगे, तो भाभी ज़्यादा परेसान न होना, अरे इधर का कूड़ा उधर, अउर सबसे बढ़िया है कालीन के कोना, सब छिप जाई, अबै कौन मेहमान आवत हैं? वैसे भी आप लोगन के ज़्यादा साफ़-सफ़ाई से रहने की आदत कहाँ है? धूल से अलर्जी हुई जात है। कूड़ा ही तो है, आज नहीं तो कल उठि जाई।"

कवि-पत्नी का मन किया तुरंत फ़ोन काट दें, पर अंगूरी के बिना जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती, सो कोमल स्वर में कवि-पत्नी ने अंगूरी से पूछा "तुम्हारी तबियत तो ठीक है न? अपना ध्यान रखना और लॉकडाउन उठते ही आ जाना-ठीक!" अंगूरी को जैसे इसी पल का इंतज़ार था, छूटते ही बोली "काहे नाहीं, हमें आपकी और शायर साहब की बहोत याद आती है। का करें साहब का हमरे बिन कामौ कैसन चलत होई?" अंगूरी फिर हँसी।

कवि-पत्नी की स्मृति में बसी उसके पान मसाले से महकते होठों की तिरछी मुस्कुराहट उन्हें अन्दर तक भेद गई। कवि-पत्नी बोली "अच्छा तो फ़ोन रखती हूँ - ठीक!" पर कहाँ अंगूरी बाई पुनः चहकी "औउर भाभी जी आप पालर तो जाय नाहीं पाती होंगी? सो हम बताइत है, दूध की मलाई मा थोड़ी-सी हरदी डाल के मुँह माँज लिया करौ - अरे दुई दिन मा हमरे जैसी दमकन लगिहौ।" कवि-पत्नी को चक्कर आ गया – "मुझे तो पहले से ही शक था। तभी तो फुल-क्रीम दूध पर भी कभी मलाई देखने को नहीं मिली।" अंगूरी बाई पूरे जोश में थी "देखौ भाभी! हमें आपकी कितनी फिकर है। बरतन, झाड़ू-पोंछा, ऊपर से पालर की बात, सभै केर कलास लै लिहा - तौन हमरी पगार टेम से पहली का बंक मा जमा कराय दिहो- अच्छा तौ भाय-

भाय! अब जावौ हमरे सायर साहब छज्जे पर बिना चा के तलफ़त हुइ है। हाँ तनख्वाह याद रखियो।" कवि-पत्नी का चन्द्रमुख अमावस हो गया। दो कप चाय का पानी उबल-उबलकर आधा रह गया था, पर नींबू कहाँ है? उधर कविवर पुकार रहे थे "अरी प्राणप्रिये, कहाँ हो देखो तो आकर!" कवि-पत्नी ने मसालदान से अनारदाना निकाला, काली मिर्च भी डाली, लो जी हो गई चाय तैयार!

कप थामे जब वह छज्जे पर पहुँची, तो कवि पूरे मूड में थे बोले, "कभी पास भी बैठा करो - मेरी शायरी। ये देखो सभी समाचार-पत्रों में तुम्हारे प्राणनाथ के चित्र छपे हैं।" पत्नी प्रसन्नता से अखबार खींचते बोली "देखूँ तो!" 'काव्य-प्रवाह कॉलम' में छपा कवि का चित्र देख उसे लगा यदि चित्र के नीचे पतिदेव का नाम न छपा होता, तो वह इसे मानव-जाति के पूर्वजों का चित्र ही समझती। वैज्ञानिक ठीक ही कहते हैं कि वानर ही हमारे पूर्वज हैं। वह तत्काल जाने को पलटी, पर शायर पीछे पड़ गए, वे अपनी चन्द्रमुखी के मुख से प्रशंसा के कुछ शब्द सुनने को आतुर थे, परन्तु कवि-पत्नी दुखी थी, हाय इस लॉकडाउन में ये दिन भी देखना था। असल में छपी खबर ऑनलाइन काव्य-पाठ की थी और चित्र भी उसी से लिया गया था, सो चित्र में प्रमुख रूप से कविवर की नकली बत्तीसी ही नज़र आ रही थी, बाकी सब गुल थे। धुँधले चित्र में, बढ़े हुए बालों में प्राणनाथ ऐसे नज़र आ रहे थे, जैसे कोई चिम्पांज़ी काव्य-पाठ की मुद्रा में हो। कवि-पत्नी को पसीना पोंछते देख पतिदेव ने उसे रोकते हुए पूछा, "कहो कैसी रही - इस लॉकडाउन में भी मैं बराबर छप रहा हूँ, मेरी चन्द्रमुखी मेरी प्रेरणा", कवि-पत्नी पीछा छुड़ाते बोली "चलिए इसी बात पर पकौड़े भी तल लाती हूँ। वैसे बिना आपकी सुरीली आवाज़ और कातिल अंदाज़ के मुझे ये चित्र-वित्र कुछ समझ नहीं आते, "तभी कवि जी ने चाय की चुस्की ली, थू-थू करते बोले, "अरे ये ज़हर क्यों दे रही हो?" कवि-पत्नी ने नरमी से उत्तर दिया "जी वो आपके स्वर को नज़र न लगे और इम्यूनिटी बढ़ाने के लिए मैंने खास चाय बनाई है। आपकी शायरी और स्वर की तो मुरीद हूँ मैं!" कवि ने एक ही साँस में कप खाली कर दिया। तरल होते हुए बोले "मेरी प्रेरणा, लगता है इस लॉकडाउन में मेरे साथ से तुम्हें भी शायरी आ गई।"

कवि-पत्नी ने सोचा यही मौका है अंगूरी की पगार के विषय में बात करने का, वरना हो सकता है प्राणनाथ तनख़्वाह देने से मुकर जावें। इस मुफ़लिसी में ज़्यादातर गृह कार्य मैं स्वयं और बाकी तुम करती हो, तो काहे की पगार? सो कवि-पत्नी ने सकुचाते हुए पगार की बात छेड़ी, पर ये क्या शायर जी छूटते ही बोले, "हाँ, अंगूरी का फ़ोन आया था। भली महिला है। पूरे परिवार का बोझ भी उसी पर है। वह बता रही थी कि समय-समय पर तुम्हारी ऑनलाइन क्लास भी लेती रहती है, तो तनख़्वाह तो बनती है न!" कवि-पत्नी झटके से उठी और रसोई की ओर बढ़ चली - बड़े आए शायरी के नाम पर घर में पड़े-पड़े खाट तोड़ने वाले, मेरी चन्द्रमुखी! मेरी प्रेरणा! अरे, मैं क्या मूर्ख हूँ? सब जानती हूँ, जब कवि-सम्मेलनों में जाते थे, तब प्रशंसकों से अधिक प्रशंसिकाओं के फ़ोन आते थे। लॉकडाउन में तो और आफ़त है! दिनभर काम में जुटे रहो, ऊपर से इनकी शायरी झेलो। जब अंगूरी आती थी, तब सब सम्हाल लेती थी। इन्हें और इनके कवि-मित्रों को भी, हम क्या जानते नहीं? नए कवि तो कविता सुनाने और पीने-खाने से अधिक अंगूरी की वाह-वाह सुनने और नयन-सुख के लिए ही आते हैं।

तभी कवि-पति ने छज्जे से पुनः गुहार लगाई, "प्राणप्रिये! वो पकौड़े-वकौड़े छोड़ो ज़्यादा तला नहीं खाना मुझे, बस वो स्पेशल चाय और पिला दो। नई कविता लिखी है, तो ज़रा स्वर साध लूँ!" कवि-पत्नी भन्ना गई। लगता है अब दिनभर इनकी कविता झेलनी होगी और "वाह-वाह करनी होगी"

वह कुढ़कर बोली "अब छज्जा छोड़िए भी धूप बढ़ रही है और आप वहाँ कर क्या रहे हैं? इन सूनी गलियों से कोई स्वप्न-सुन्दरी तो गुज़रने से रही। वो भी बिना मास्क के। दुकानें जब से बन्द हैं, कुत्ता तक तो फटकता नहीं, सो अपना काव्य-मंच यहीं खाने की मेज़ पर सजा लीजिए मुझे अभी बहुत काम पड़े हैं।" कवि-पत्नी ने स्वयं के लिए मलाईदार चाय प्याली में डाली और राहत की साँस ली। पर हाय, शाम होते ही पतिदेव ने गद्गद् होकर, दो दिन बाद होने वाले ऑनलाइन काव्य-पाठ की सूचना दी, जो एक अंतरराष्ट्रीय साहित्यिक संस्था आयोजित कर रही थी। कवि-पत्नी का सरदर्द बढ़ गया। कविवर का मोबाइल तान छेड़ने लगा। शुभकामना संदेशों की बाढ़-सी आ गई।

इस एकल काव्य-पाठ हेतु तैयारियाँ तो कवि-पत्नी को ही करनी थी। पति तो विभिन्न कोणों से मोबाइल पर अपनी छवि देखने, उन्हें सुधारने के साथ कविताओं के स्वप्नलोक में लीन हो गए। शायर जी ने अथक प्रयास से ऐसा स्थान चुना जहाँ बैठकर काव्य-पाठ करने पर वे सुदर्शन दिख सकें। जहाँ प्रकाश की पर्याप्त व्यवस्था हो। काव्य-पाठ हेतु स्थान चयन के बाद कविदेव को लगा कि बैकग्राउंड भी प्रभावी होना चाहिए। अतः सभी पर्दे और कुशन कवर बदलने का भार भी कवि-पत्नी पर ही आन पड़ा। पतिदेव का आदेश था कि सभी कुछ वैभवशाली दिखना चाहिए, नहीं तो भविष्य में पैसे वाले कवि-सम्मेलनों के स्थान पर मुफ़्तिये कवि-सम्मेलनों से ही बुलावा आवेगा। वैसे ही लॉकडाउन में ये आभासी सम्मेलन मुफ़्त में ही करने पड़ रहे हैं। कविवर ने स्वयं को मिले स्मृति-चिह्नों और मानपत्रों की बैकग्राउंड सजावट का कार्य स्वयं ही किया, जिससे सब कुछ कैमरे की ज़द में रहें।

एकल ऑनलाइन काव्य-पाठ का दिन आ गया, सभी को सूचित किया जा चुका था कि वे तय समय पर श्रोता के रूप में उपस्थित रहें। शायर जी सज-धजकर समय से काफ़ी पहले ही सोफ़े पर स्थापित हो चुके थे। पढ़ी जाने वाली कविताओं की फ़ोटोस्टेट लिए कवि-पत्नी भी तैनात थी कि यदि नई नवेली कविता की पंक्तियाँ बीच-बीच में रूठने लगीं, तो कवि-पत्नी फुसफुसाकर पतिदेव को याद दिला देगी। समय पर काव्य-पाठ हेतु पतिदेव ने लिंक दबाया और श्रोताओं का अभिवादन करते हुए पूछा कि क्या आवाज़ मिल रही है? उधर से आवाज़ें आने लगीं "आवाज़ ठीक है! चालू हो जाइए!" शायर प्रसन्न हुए, पर उनका चेहरा कहाँ है? वे मोबाइल के बटन पर बटन दबाए जा रहे थे। कवि-पत्नी ने ईश्वर का धन्यवाद दिया, चलो चेहरा गुम है और इनका स्वर तो मधुर है ही, सो वे भी कविवर पर ज़ोर डालने लगी, "काव्य-पाठ जारी रखें वरना लोग हूट करने लगेंगे।" सम्भवतः कवि-पत्नी की आवाज़ भी मोबाइल पर जा रही थी, सो उधर से आवाज़ें आने लगीं - "हाँ, भाभी जी ठीक कह रही हैं! सुनाइए-सुनाइए।" घबराहट में शायर महोदय पंक्तियाँ भूलने लगे। उनकी चन्द्रमुखी को बार-बार फुसफुसाकर लाइनें याद दिलानी पड़ रही थीं, उस पर कवि महोदय बार-बार पोज़ बदल-बदलकर, बटन दबादबाकर अपनी छवि देखने को आतुर थे। समय समाप्ति की ओर था कि कविवर अपनी नवेली शृंगारिक कविता की पंक्तियाँ पुनः भूल गए। कवि-पत्नी घबराहट में कुछ अधिक पास आकर कविता की भूली पंक्तियाँ दिखाने लगी और लो अचानक ही आवाज़ गायब और चित्र दिखने लगा। जब तक शायर पोज़ लेते, समय समाप्त हो गया। मोबाइल बधाइयों से भर गया। वाह भाभी जी वाह क्या खूब कविता लिखती हैं आप। कविताएँ आपकी और स्वर कविमित्र का, तेरे सुर और मेरे गीत वाह वाह! दूसरे दिन खोजी पत्रकारिता के लिए प्रसिद्ध समाचार-पत्र की हेडलाइनें थीं - "वैश्विक, काव्य पटल पर कवि-पत्नी का उदय।"

उसका चाँद

- श्री विजय कुमार तिवारी
उड़ीसा, भारत

बचपन में चाँद देखकर खुश होता और अपलक निहारा करता था। चाँद को भी पता था कि धरती का कोई प्राणी उसे प्यार करता है। दादी ने जगा दिया था प्रेम उसके दिल में, चाँद के लिए। बड़ी बेबसी से रातें गुज़रतीं जब आसमान में चाँद नहीं होता। वैसे तो दादी नित्य ही चाँद को दूध-भात के कटोरे में उतारती और हर कौर में खिलातीं।

तब शायद समझ नहीं थी और लगता था कि जो मीठापन है, वही चाँद है। दादी ने कहा कि चाँद रोज़ रात में उसके सिरहाने आ खड़ा होता है और प्यार की थपकी देता है। वह महसूस करता कि दादी की थपकी बंद हो गई है और पूरी रात चाँद मीठी-मीठी थपकी देकर सुलाता है। उसे ऐसा भी लगता कि चाँद उसके साथ रात भर जागता है और उसकी रक्षा करता है।

माँ को जब दूसरी सन्तान बेटी हुई, तो माँ ने कहा कि चाँद तुम्हारी बहन बनकर आया है। कई दिनों तक वह बाहर नहीं गया, अपनी बहन को देखता रहा। उसने आसमान की ओर नहीं देखा। उसे खुशी हुई कि चाँद धरती पर आ गया है और बहन को निहारता रहता।

एक दिन उसे आसमान में फिर चाँद दिखाई दिया, तो वह दौड़कर बहन को देखने कमरे में पहुँचा। चाँद यहाँ भी है और बाहर आसमान में भी। उसने माँ को बताया और पूछा कि दो चाँद कहाँ से आ गए?

माँ ने कहा, "दादी ही चाँद बनकर आसमान में टिक गई हैं। अब उसके पास दो-दो चाँद हैं। अकसर वह बहन के आसपास रहता और जब उसकी स्मृतियों में दादी आतीं, तो आँगन में आकर चाँद से बातें करने लगता। इस तरह उसके सारे प्रश्नों के जवाब दादी से मिल जाते। अपनी भाषा में उसने बहन को भी समझा दिया कि तुम्हारा चाँद भी उधर ऊपर आसमान में है। बहन किलकारी मारकर हँसती, तो वह खुशी से झूम उठता।

स्कूल जाते समय उसकी बेचैनी बढ़ जाती। चाँद को घर में माँ के पास छोड़कर जाना पड़ता और दिन में आसमान में दादी दिखती नहीं। स्कूल की प्रार्थना से जो उसने सीखा, अपनी सारी बातें मन-ही-मन आसमान के चाँद को सुना देता। उसे विश्वास हो गया कि दादी सब सुनकर उसे सोते समय बता देती हैं।

किसी दिन कहीं सुन लिया कि सब का अपना-अपना चाँद होता है। उसने मान लिया कि ऐसा हो सकता है। समस्या तब खड़ी हुई, जब उसने पिता को माँ से कहते सुन लिया कि तुम्हीं मेरा चाँद हो।

दादी ने तो कभी नहीं बताया कि माँ भी चाँद है। माँ को चाँद मानने के लिए उसका मन तैयार नहीं होता था, वह भी पिता का चाँद! माँ को वह बहुत प्यार करता है और माँ भी उसे बहुत प्यार करती है। यदि माँ चाँद है, तो उसका चाँद है, पिता का कभी नहीं। इसपर वह पिता से लड़ने को भी तैयार हो गया।

माँ ने गौर किया कि बेटा थोड़ा खिन्न रह रहा है, तो उसने पूछ ही लिया पर उसने कोई जवाब नहीं दिया।

एक दिन वह माँ के गले लग गया और दुलार दिखाने लगा। उसने पूछा, “माँ, तुम भी चाँद हो?"

माँ हँस पड़ी, "हाँ, मैं भी कभी चाँद थी।" माँ की आँखों के सामने उनके बचपन से लेकर जवानी

के दिन की मधुर स्मृतियाँ कौंध गईं। याद आया, अभी हाल में ही उसके पति ने अन्तरंग क्षणों में उसे अपना चाँद कहा था। उसके मुँह से निकल गया, "मैं तुम्हारे पिता का चाँद हूँ।"

वह बहुत गुस्सा हुआ, "नहीं, तुम मेरा चाँद हो!"

माँ को स्थिति समझते देर नहीं लगी। उसने खुश करने के लिए कहा कि हाँ हाँ, मैं तुम्हारा ही चाँद हूँ। उसे खुशी हुई और एक तरह की जीत का आभास भी। उसने दूर खड़े पिता को हँसकर देखा, मानो कह रहा हो, बड़े आए चाँद लेने वाले।

माँ ने प्यार से समझाया,"तुम्हारे पास पहले ही दो-दो चाँद हैं और पिता के पास एक भी नहीं। तुम चाहो तो मुझ चाँद को बेचारे पिता को दे दो। देखो कैसे दुखी हो रहे हैं।"

"फिर ठीक है", उसने खुश होकर कहा और पिता को आवाज़ दी, "ले लो चाँद तुम भी!"

पिता मुस्कुराए और उसे गोद में उठा लिया।

थोड़ा बड़ा हुआ। स्कूल की कक्षाएँ उत्तीर्ण कीं। अगली कक्षा की मैडम बहुत स्नेह से पढ़ाती थीं। उससे बहुत दुलार से पेश आती थीं। वह भी उन्हें पसंद करता था।

एक दिन उनकी सुन्दरता की चर्चा करते हुए दूसरी मैडम ने कहा, "आज तो तुम चाँद-सी सुन्दर लग रही हो।"

उसके कान खड़े हो गए। मन में चिन्ता और बेचैनी बढ़ने लगीं। उसने अपनी मैडम से कहा, “आपसे एक बात पूछनी है।"

"हाँ हाँ, बोलो-क्या बात है?"

"आप चाँद हैं?" उसने धीरे से पूछा।

पहले तो उनकी समझ में कुछ भी नहीं आया। थोड़ी देर बाद वस्तु-स्थिति समझ में आई, तो वे हँस पड़ीं। अकसर लोग उनके सौन्दर्य की तुलना चाँद से करते हैं। बोलीं, "तुमसे किसने कहा?"

"उस दिन वो मैडम आपको बोल रही थीं", उसने कहा और पूछ बैठा, "आप किसका चाँद हैं?"

बच्चे की बालसुलभ बातों को सुनकर वे खिलखिलाकर हँस पड़ीं और मुस्कुराकर बोलीं, "तुम्हारा!"

वह बहुत खुश हुआ और घर जाकर माँ से कहा, "मेरी मैडम भी मेरा चाँद हैं।"

माँ को भी हँसी आ गई। उसने रात में आसमान की ओर देखकर कहा, "दादी, आज एक और चाँद मुझे मिला है।" उसे लगा, दादी मुस्कुरा रही हैं और कह रही हैं कि "हाँ, मुझे पता है।"

इण्टर में उसे एक विचित्र स्थिति का सामना करना पड़ा। पूरी कक्षा में साँवली-सी मात्र एक लड़की थी। वह मन-ही-मन सोचता रहता था कि यह भी किसी-न-किसी की चाँद होगी ही। उसके चिन्तन में यह बात स्पष्ट हो चुकी थी कि सबके अलग-अलग चाँद हैं।

उस लड़की ने उसकी नोटबुक वापस की, तो उसमें एक पत्र मिला। गलती से उसने रख दिया था। वह समझ गया कि किसी ने उसे प्रेम पत्र दिया है। उसने वापस किया, तो लड़की हँस पड़ी।

उसने पूछा, "किसका है?"

लड़की ने हँसते हुए जवाब दिया, "मेरे सूरज का। वह मेरा सूरज और मैं उसका चाँद।"

वह भी हँस पड़ा।

उसने नौकरी शुरू की तो पिता ने माँ से कहा कि इसके लिए एक चाँद-सी दुल्हन खोजते हैं। माँ बहुत खुश हुई।

माँ ने उससे पूछा, "क्या कोई चाँद-सी तुम्हें मिली है?"

वह शरमा गया। माँ ने कहा, "हम लोगों ने एक चाँद-सी लड़की पसन्द की है। तुम भी चलो, देख लो।"

शादी हुई बहुत धूम-धाम से और बहुत सुन्दर चाँद-सी दुल्हन आई। उसने आसमान में अपनी दादी को देखा। उसकी आँखें भर आईं। उसे खुशी हुई कि दादी ने आशीर्वाद दिया।

वह निकल पड़ा अपने चाँद को लेकर। शीतल चाँदनी फैली है, आसमान में चाँद पूरे सौन्दर्य के साथ मुस्कुरा रहा है। चाँद को देखते हुए दोनों आलिंगनबद्ध हो मुस्कुरा उठे, आज चाँद उनके पहलू में है।

vijsun.tiwari@gmail.com

दूसरे दौर की प्रताड़ना

- श्रीमती विनीता शुक्ला
केरल, भारत

अमन शर्मा झल्ला रहे थे। उनकी भूरी वाली टी-शर्ट पर इस्तरी नहीं फेरी गई। देविना रोज़-रोज़ की नाराज़गी से तंग आ चुकी थी। पतिदेव का मिज़ाज आजकल सातवे आसमान पर रहता। झगड़े का कोई-न-कोई बहाना उन्हें मिल ही जाता। नीली बिटिया के ब्याह की बात चल रही थी। एक ऑडी कार और पंचसितारा होटल में विवाह की व्यवस्था, वरपक्ष की माँग थी। सब कुछ लगभग तय था, लेकिन लड़के वालों की सुई 40 लाख पर आकर अटक गई। अमन चाहते तो यह माँग भी पूरी कर सकते थे, परन्तु छोटी बिटिया भी कतार में थी। छुटकी की बारी आने पर... कुछ 'दान-दक्षिणा' तो जुटानी ही पड़ेगी। तब वे हाथ झाड़कर, खड़े नहीं हो सकते। ऐसे में अमन को पत्नी देविना का ख़याल आया। देविना को अपने पिता की वसीयत के अनुसार ज़मीन का एक टुकड़ा मिला था।

उस प्लॉट की कीमत करीब 50 लाख रही होगी। पहले वह इलाका गाँव से जुड़ा था, किन्तु तेज़ी से विकास होने के कारण, वहाँ की शक्ल ही बदल गई। अमन की आखिरी उम्मीद, वह सम्पत्ति थी। लिहाज़ा ज़मीन के कागज़-पत्तर बटोरे और लग गए ग्राहक की तलाश में। उनके अरमानों पर पानी फिर गया, जब उन्होंने जाना कि वह प्लॉट विवादास्पद था और कोई जाना-माना बिल्डर, उस जगह पर अपनी दावेदारी ठोंक रहा था, तब अमन निराश हो गए और उनका सारा गुस्सा देविना पर फूट पड़ा।

"उस ज़मीन को पहले ही बेच देना चाहिए था। वहाँ तेज़ी से शहरीकरण हुआ। बहुतों की नज़रें रही होंगी उस पर" देविना ने सकपकाकर प्रतिवाद किया।

"तुम्हारे भाइयों को क्यों नहीं दिया - वह फ़ालतू प्लॉट। वे तो मज़े से गाँव का घर, खेत और बाग-बगीचे लिए बैठे हैं। कोई झगड़ा, कोई टंटा नहीं!"

"लेकिन पिताजी ने आपकी सहमति से जायदाद का बँटवारा किया था। तब आपने ही बोला। उस पिछड़े हुए गाँव में आपकी कोई दिलचस्पी नहीं!"

"चुप कर। मूरख औरत! अकल के पीछे लठ लेकर पड़ गई है।" पति की रोष भरी घुड़की पत्नी को बेतरह चुभ गई। वह डबडबाई आँखों को पोंछती हुई वहाँ से चली गई।

अमन के व्यवहार से उनको प्रायः लज्जित होना पड़ता। पति के लालच और उजड्डता के कारण मैके से उनके सम्बन्ध बिगाड़ रहे थे। भाई तो पहले ही भाभियों के हो चुके थे। अब तो अम्मा भी देविना से खिंची-खिंची रहने लगी थीं। दामाद के नखरे नाकाबिले-बर्दाश्त होते जा रहे थे। देविना को लगता है, "काश! पिताजी आज जीवित होते। ऐसे में उनका विवेक ज़रूर काम आता।" इधर पतिदेव की रणनीति स्पष्ट थी। उनके अनुसार, सब दोष देविना के नैहरवालों का था। उनकी अदूरदर्शिता से ही समस्या पैदा हुई। इसलिए समाधान का

दायित्व भी उन्हीं का था।

किंतु देविना का स्वाभिमान, मायके वालों के आगे हाथ फैलाने से उसे रोकता था। कितनी बार पति के कारण जग-हँसाई हुई थी। यहाँ तक कि उनके रक्त-सम्बन्ध फीके पड़ने लगे थे। अमन उन सबसे लेना ही जानते थे, देने के नाम पर हाथ खींच लेते। माँगलिक उत्सवों में जब कुछ देने की परम्परा होती, वे रस्मों को सस्ते में निपटा देना चाहते। 'मान्य' की श्रेणी में होने के कारण, बात-बात पर रौब झाड़ना, यहाँ तक कि बदसलूकी कर बैठना, उनकी फ़ितरत में था। पति के इस स्वभाव के चलते, देविना अपनी जड़ों से कटती जा रही थी, जबकि ससुराल पक्ष के अनचाहे सम्बन्धों को ढोना उनकी लाचारी थी।

देविना को इन दिनों रह-रहकर, अपने ब्याह के शुरुआती दिन याद आते हैं। सासू-माँ को तब, 'सास की पिटारी' में आभूषणों की कमी अखर रही थी। पिताजी की खानदानी हीरे की अंगूठी सेवा में पेश हुई, तब जाकर उनकी त्योरियाँ ढीली पड़ीं। व्यंग्योक्तियाँ तब भी सुनी थीं और अब भी शादी के 24-25 साल बाद भी सुनने को मिल रही हैं, यह तो उसने स्वप्न में भी न सोचा था! वह तो किसी दूसरे ही भ्रम में जी रही थी। पतिदेव उसको मालकिन बुलाते थे और वह स्वयं भी ऐसा समझने लगी थीं। इस घर को उन्होंने अपने रक्त-स्वेद से सींचा था, निजी खर्चों में कतर-ब्यौंत करके देवर-ननद के ब्याह निपटाए थे। घोर श्रम किया था, गृहस्थी जमाने में, लेकिन इसका कोई एहसान तक नहीं!!

पतिदेव ज़ाहिरी तौर पर कुछ नहीं कहते थे, किन्तु दबी ज़बान से जो कुछ कहते, उन्हें आहत करने के लिए काफ़ी था। शिकायतें जो गज़ल के मिसरे की तरह दोहराई जा रही थीं! ऐसे में दोनों बेटियाँ - नीली और मिली बहुत याद आतीं, जो दिल्ली के प्रतिष्ठित कॉलिजों में अपनी शिक्षा पूरी कर रही थीं। इधर कुछ दिनों से अमन उनकी आयरन की दवा जान-बूझकर भूल रहे थे। पहले तो जब दवा का स्टॉक ख़तम होने में 15 दिन रह जाते थे, दौड़कर ले आते थे। देविना के चश्मे का नम्बर भी बढ़ गया था शायद! आँखों की चेकिंग कराना तो दूर, उसका ज़िक्र सुनकर ही टाल-मटूल शुरू हो जाती। इस कारण पढ़ना-लिखना फ़िलहाल छोड़ रखा है उसने। आयरन टेबलेट के बजाय मायके से लाया हुआ कोई आसव गटक लेती है। अमन में यदि अकड़ है, तो वह भी कुछ कम नहीं। पतिदेव बात-बात में भन्नाते हैं, कुछ उस तरह, जैसे वर-दक्षिणा हाथ न आने पर नया-नया दूल्हा भन्नाता हो! अर्श से फ़र्श तक पहुँच जाने की स्थिति बन गई है। गृहस्वामिनी न होकर अवांछित अतिथि बन गई हो मानो!

परिवारवालों की देखभाल में उसने खुद को निछावर कर दिया। अच्छी खासी नौकरी को छोड़, घरवालों की नौकरी में लग गई। अपनी पहचान धुँधलाकर, कुटुंब की किस्मत चमकाई। और अब! जेठ जी के बहकावे में आकर अमन बड़बड़ाते हैं, "अरे वह ज़मीन नहीं, तो खेत का कुछ हिस्सा ही हमारे नाम कर दें, तुम्हारे मइके वाले। गाँव में पुरानी दुकान भी तो है तुम लोगों की!" जेठ जी उनके वैवाहिक जीवन के प्रारम्भिक दिनों में भी अमन के यूँ ही कान भरते थे। वह भी तब, जब देविना के माँ-बाप ने विवाह में हैसियत से बढ़कर पैसे दिए।

अमन को यह तक याद न था कि डेढ़-दो माह में उनके विवाह की रजत-जयंती थी। सप्ताह भर न हुआ होगा, वे लोग एक दोस्त की 'सिल्वर एनिवर्सरी' मनाने गए थे। दोस्त ने अपनी पत्नी को महंगी कार भेंट की। इसका कारण पूछने पर वे बोले, "मेरी पत्नी ने मुझे एक प्यारा-सा घर, दो सुंदर बच्चे और शानदार ज़िन्दगी का तोहफ़ा दिया है। उसके आगे यह कार तो कुछ भी नहीं!" और अमन, क्या उनके लिए पत्नी की तपस्या का कोई मोल है? देविना को

लगने लगा है कि सब स्त्रियों का भाग्य एक-सा नहीं होता। घर में वैसी कद्र नहीं होती, जैसी कि होनी चाहिए। इतने वर्षों तक बिना वेतन के खटने के बाद कोई पारिश्रमिक नहीं मिलता। उलटे ही उनसे वसूली की अपेक्षा रहती है।

सभ्यता का यह कैसा चेहरा? गृहलक्ष्मी, अन्नपूर्णा, पूज्यनीय नारी कहकर नारी को परखने की कसौटियाँ बना दी गई हैं। सीता जैसी पवित्रात्मा को भी अग्नि-परीक्षा देनी पड़ी थी। सम्बन्धों का हर हाल में निर्वहन, उसकी परख है। इसके लिए भले ही आत्मा को तार-तार होना पड़े! देविना अपने बालों में पड़े रुपहले धागों को देखती है। उम्र की गरिमा चेहरे पर उतर आई है, किन्तु जो आदर, संघर्षों में तपकर पाया था, बेमानी लगने लगा है। हाल में ही किसी विवाहेतर सम्बन्ध की चर्चा होने पर अमन तमककर बोले थे, "क्या दूसरी शादी मैं नहीं कर सकता? बिलकुल कर सकता हूँ।" वह स्तब्ध-सी पति को देखती रह गई थी। उनका रसिक स्वभाव उन्हें सदा कचोटता रहा। किन्तु यह बात कुछ ज़्यादा ही कचोट गई थी!

यह औरत जात की नाकदरी का नतीजा ही तो है कि हरियाणा व राजस्थान के कुछ इलाकों में दहेज मिलना तो सोच के परे है, बल्कि वहाँ दुल्हनें खरीद कर लानी पड़ती हैं, जात-बिरादरी को ताक में रखकर! उसाँस लेकर, वह अपनी विचार-तंद्रा से बाहर निकली। "अरे बहू किस सोच में हो? शाम वाली बैठक का इंतज़ाम करना है या नहीं?" देविना हड़बड़ाई, ज्यों किसी ने पत्थर मारकर शांत चित्त को व्यग्र कर दिया हो! सासू अम्मा अभी-अभी ससुर जी और जेठ जी के साथ घर में घुसी थीं। आते ही सवाल दागने लगीं। देविना पूरी तरह सचेत हो गई। इस समय दोपहर के साढ़े तीन बजे थे। अभी जेठानी जी का आगमन होना था।

उनको अपने 'सपूतों' संग पधारना था। ये 'तथाकथित' सपूत रिक्की और विक्की, बला के आवारा और नालायक थे, परन्तु फिर भी जेठानी जी को उन पर गर्व था। वे दोनों दादा और दादी को सहारा देकर चलाते-फिराते और उठाते-बिठाते। इसी से उन्हें अकसर उनके साथ कर दिया जाता। जेठानी जी को बेटों की माँ होने का घमंड कुछ ऐसा कि गाहे-बगाहे। देविना पर तानाकशी करना न भूलतीं, "दो-दो बेटियाँ जनकर बैठी है। हे राम! कैसे पार लगेगी नैया?" तब देविना का मन कहता, "मेरी बेटियाँ तो मेधावी हैं। आप अपनी सोचो जिज्जी!" जिज्जी की ज़बान सरौते की धार जैसी थी, किन्तु जेठ जी भी कम न थे। परिवार के बड़े बेटे होने के कारण उन्होंने अमन की शिक्षा में आर्थिक योगदान दिया और कुछ अन्य ज़िम्मेदारियाँ भी निभाई थीं। इसी से देविना का अपमान करना वे अपना अधिकार समझते।

उस बर्ताव का एक मनोवैज्ञानिक कारण भी था। देविना यदि नौकरी न छोड़तीं, तो अध्यापिका से प्रधानाध्यापिका बन ही जातीं। देविना की शैक्षिक योग्यता को देखते हुए, जेठ भगतराम का कद बौना पड़ गया। उन्हें ठेस पहुँचाकर भगतराम का चोटिल अहम् तुष्ट होता। स्वयम् उनकी पत्नी मंदा, कम पढ़ी-लिखी थी। एक विदुषी स्त्री को नीचा दिखाकर उनके भीतर का कमतर पुरुष हिंसक आनन्द का अनुभव करता। अमन पत्नी का अनादर देखकर भी मुँह सिये रहते। जाने यह भैया के पुराने उपकारों का बदला था या फिर रूढ़ियों का प्रभाव...! शाम की सभा नीली के दहेज को लेकर आर्थिक समस्या पर 'मनन' हेतु बुलाई गई थी।

देविना जानती थी कि घूम-फिरकर बात उनके मैके वालों पर केन्द्रित होगी, तदुपरांत वाक्-बाणों की दिशा स्वतः उनकी ओर मुड़ जाएगी। कुटुंब की इस बैठक में बार-बार उन्हीं का तिरस्कार होगा! सासूमाँ तो पहले ही इसकी चैंपियन रह चुकी हैं। और ससुर जी! यूँ तो वे चुप रहते हैं, पर कभी-कभी किसी मंजे हुए खिलाड़ी की तरह वार कर जाते

हैं। "कितना अच्छा होता यदि नीली इस समय यहाँ होती" देविना का मन व्याकुल होकर कह उठा। लड़के वालों ने उसे रिश्तेदारी में हुए किसी समारोह में देखा था। लड़का देखने-सुनने में 'ठीक-ठाक' ही लगा। इसी से नीली ने बात आगे बढ़ाने की अनुमति दे दी। अपने विवाह को लेकर अभिभावकों की विकलता वह जानती थी। सहमति का यह भी एक कारण रहा होगा, किन्तु बातचीत अपने अंतिम-चरण तक पहुँच चुकी थी, इसकी उसे भनक तक न थी। लेन-देन के बारे में तो कतई नहीं! कॉलिज से मिले, शीतकालीन अवकाश के चलते वह घर आई थी। इस दौरान तीन बार अनौपचारिक तौर पर उसकी 'देखाई' हुई। औपचारिक 'देखने-दिखाने' से उसे सख़्त नफ़रत थी।

इस घृणा के पीछे एक ठोस कारण था। वह था पिछले साल श्रीमान और श्रीमती कौशिक का आगमन। वे औपचारिक तौर पर ही उनके यहाँ पधारे थे। वैवाहिक-विज्ञापन किसी मैट्रीमोनिअल-साइट पर पढ़कर उन्होंने कन्या को देखने का विचार बनाया था। नीली की सुन्दरता पर रीझकर श्रीमती कौशिक ने अपने बेटे ऋत्विक के लिए उसका फ़ोटो और बायोडेटा माँगा था। उस सिलसिले का ख़याल आते ही आज भी दिल कसक उठता है! विवाह की बात प्रारम्भिक स्तर पर आगे बढ़ी। वे लोग उनके घर भी गए। तब ऋत्विक लॉन-टेनिस खेलने क्लब जा रहा था। उस सुदर्शन व्यक्तित्व ने उन्हें बहुत प्रभावित किया था। नीली पहले ही उससे किसी सहेली के यहाँ मिली थी। वहाँ कोई पार्टी रही होगी शायद। उसे जब ऋत्विक का फ़ोटो दिखाया गया, वह बावरी-सी हो गई थी। ऐसे आकर्षक युवक संग गाँठ जुड़ना, किसी सुंदर सपने जैसा था। मौका मिलने पर चोरी-छिपे उसके फ़ोटो को डैड की दराज़ खोलकर देख लिया करती, लेकिन उसके अरमानों पर एक दिन गाज गिर गई।

लड़के वालों को 'स्तरीय' विवाह चाहिए था। अमन शर्मा सेक्रेट्रियेट में कार्यरत थे। पैसे तो खूब कमाए, परन्तु संयुक्त परिवार के दायित्वों ने उनकी झोली को रिक्त भी किया। बैंक में पदाधिकारी ऋत्विक उनके 'बजट' में 'फ़िट' न हो पाया। निराशा की उस घड़ी में नीली ने ही देविना को सम्बल दिया, "एक बार पढ़ाई पूरी कर लेने दो माँ, फिर देखना कैसे शीशे में उतारती हूँ इन लड़केवालों को!" उदासी को परे रख बिटिया जीवन-धारा से पुनः जा मिली। उसकी जीवटता ने ही माँ को भी संभाला था।

लिविंग रूम की हलचलों से देविना की अन्यमनस्कता भंग हुई। उसी समय घड़ी ने चार का घंटा बजाया। उसने फटाफट जूस और पानी की बोतलें वहाँ पहुँचा दीं, साथ ही बिजली से चलने वाली केतली, दूध पाउडर, चाय की प्यालियाँ और चीनी का मर्तबान। कई दूसरे तामझाम भी फैला दिए गए। गम्भीर वार्तालाप के दौरान यदि गला सूखने लगे, तो उसे तर करने के लिए कुछ तो चाहिए था। 'बैटरी' को 'रिचार्ज' करने का ईंधन भी! घरेलू संसद की कार्यवाही शुरू हुई। अध्यक्ष पद पर ससुरजी को आसीन होना था, किन्तु चिलचिलाती दोपहर में ए.सी. का सुख मिलते ही, उनकी देह पर आलस छा गया और वे अधसोए से आरामकुर्सी पर ढह गए। वैसे भी उनको दूसरों के कंधे पर रखकर बंदूक चलाने की आदत थी, किसी पर प्रत्यक्ष निशाना साधने से वे बचते थे। ऊपर से निर्लिप्त बने रहते, किन्तु अंदर-ही-अंदर मक्कारियों का जाल बुनने की योग्यता अवश्य रखते थे।

अध्यक्ष पद की बागडोर सासूमाँ के हाथ में थी। वे पूरे दमख़म से बैठक के बीच वाले सोफ़े पर जम गईं। पान का बीड़ा मुँह में रख इतमीनान से चबाने लगीं। उनकी ठसक देखते ही बनती थी। मंदा और भगतराम की मुद्रा भी खासी आक्रामक थी। लड़कों को बाहर भेज दिया गया। बड़ों के बीच उन्हें बोलने की अनुमति नहीं थी। लिहाज़ा वे 'संसद' के बाहर

वाले बरामदे में चौकीदार की तरह सुशोभित हो गए। वहाँ मोटे टाट वाले परदे लगे थे और कूलर चल रहा था। इसी से उन्हें कोई तकलीफ़ भी न हुई। इधर, घरेलू बैठक के हाल निराले थे। कटघरे में तो देविना को खड़ा होना था। परिवार में दोष किसी सदस्य का हो, घुमा-फिराकर उस पर ही मढ़ने का लक्ष्य बना रहता। यदि वह भी जेठानी की तरह कर्कशा और मुँहफट होती, तो उससे उलझने की हिम्मत कोई नहीं जुटा पाता!

चिन्तन का क्रम पुराने ढर्रे पर चल रहा था। संभावित धन-स्रोत, जहाँ से पैसा मिल सकता था, लोन लेने के विकल्प और जैसा कि पूर्वनियोजित था, बातचीत की सुई देविना के खानदान पर आकर अटक गई। प्रेम से सम्बन्धों की बखिया उधेड़ी गई। अंत में सबकी तिर्यक् दृष्टि देविना पर जा टिकी, मानो जवाबदेही भी उसकी ही हो! बिन अपराध दोषी ठहराए जाने की पीड़ा असहनीय होती जा रही थी। सासूमाँ, ससुरजी, भगतराम, मंदा, अमन सारे चेहरे किसी कोतवाल की तरह उसे लानत भेज रहे थे। इतने में कॉलबेल की तीखी आवाज़ ने माहौल का मिज़ाज बदल दिया।

समय-असमय कुटुंब की गुप्त-सभा में विघ्न डालने भला कौन आया होगा? छुट्टी का दिन था। शाम के पौने पाँच बजे तो धूप भी अपने फैलाव को समेट नहीं पाती। लोग अलसाए से घरों में पड़े रहते हैं। "माँ... डैड...! देखो कौन आया है!" नीली का स्वर सबको जड़ कर गया। देविना को स्वयं इस तरह उसके 'धावा बोलने' की भनक न थी। सकपकाए हुए रिक्की और विक्की, नीली के साथ ही भीतर प्रविष्ट हुए।

इससे भी बड़ा झटका द्वार पर खड़े आगन्तुक को देखकर लगा। "यह तो ऋत्विक कौशिक है, यह यहाँ कैसे?" फुसफुसाकर मंदा ने अपने पति भगतराम को कोहनी मारी। "गलत टाइम पर आया है, अमन पहले ही चिढ़ा बैठा है। उसका दिमाग भी गरम हो रखा है। कौशिक की तो खैर नहीं!" भगतराम ने मच्छर की तरह भिनभिनाकर जवाब दिया, "क्या माजरा है? कोई हमें भी तो बताए।" अमन, भगतराम के बूढ़े पिता उद्विग्न हो उठे। नीली का यूँ प्रकट होना और चुपचाप सबको अनदेखा कर, भीतरी कमरे में घुसना, उनसे हज़म नहीं हो पाया।

"सॉरी दादाजी! हमने ही आज की मीटिंग के बारे में नीली को बताया" रिक्की ने कहा और विक्की ने तत्काल सर झुकाकर 'अपराध' को स्वीकार किया।

"क्या?" दादी अपने क्रोध को दबा नहीं पाईं, "तुम्हें मालूम था कि नीली दहेज के नाम से भड़क जाती है! सब कुछ उससे छिपाकर तय होना था।"

"उसने तो बस हालचाल लेने के लिए फ़ोन किया था। गलती से मेरे ही मुँह से निकल गया। माफ़ कर दो।" विक्की गिड़गिड़ा रहा था। "उसने पूरी बात पूछी, तो मैं भी छिपा नहीं सका" रिक्की लपेटे में आ गया। दोनों लड़के स्तब्ध थे, काटो तो खून नहीं। "जब देखो नाक कटवाते हैं, बेवकूफ़!" बात-बेबात बेटों का पक्ष लेने वाली मंदा भी भभक उठी थीं।

नीली और ऋत्विक, अपने संग देविना और अमन को भी खींच ले गए। अंदर जाने कौन-सी खिचड़ी पक रही थी! थोड़ी देर बाद वे बाहर आए, तो उनके चेहरे खिले हुए थे। नीली बोल पड़ी, "कोई कुछ नहीं पूछेगा, मैं सब बताती हूँ।" उसने एक गहरी नज़र हर तरफ़ दौड़ाई। लोग सन्नाटे में थे। उच्छ्वास लेकर उसने बताया, "मैंने माँ को कॉल करके बोला कि जल्द उन्हें एक सरप्राइज़ दूँगी।" थोड़ी देर तक रहस्यमय चूप्पी छाई रही। उत्सुकता के चलते हवा में सुगबुगाहट पसर गई थी। मौन भंग करते हुए नीली की आवाज़ गूँजी, "मुझे एम.ए. में सबसे ज़्यादा मार्क्स मिले हैं। यह पहला सरप्राइज़ है।" उसकी इस घोषणा से दादा-दादी प्रफुल्लित

हुए, किन्तु मंदा ताई जी का चेहरा लटक गया। रिक्की और विक्की, बहन की कामयाबी के आगे खुद को बौना महसूस कर रहे थे, जबकि भगतराम अभी असमंजस में थे। कदाचित उनको दूसरे 'धमाके' की प्रतीक्षा थी।

भैया की जिज्ञासा पढ़कर अमन चुप न रह सके, "नीली सुबह से यहीं थी, इसी शहर में अपनी सहेली के पास। अपने रिज़ल्ट से हमें चौंका देना चाहती थी। मिली के भी बी.बी.ए. सेकंड-इयर में अच्छे अंक आए हैं। वह बेस्ट-ऑलराउंडर चुनी गई है। फ़िलहाल अपने सीनियर्स की फ़ेयरवेल पार्टी तक वहीं रुक गई है।" बेटियों की उपलब्धियाँ गिनाते हुए अमन का मुख गर्व से दमक उठा था।

"एक सरप्राइज़ मेरी तरफ़ से" यह ऋत्विक था। सारी आँखें तत्क्षण उस पर गड़ गईं। वह अपने में डूबा बोलता जा रहा था, "मुझे ज़रा भी अंदेशा न था कि साल भर पहले देविना आंटी, मंदा ताई जी और अमन अंकल मेरे घर आए थे। रिश्ते की चर्चा ने मुझ तक पहुँचने से पहले ही दम तोड़ दिया। बहुत लज्जित हूँ मैं अपने माता-पिता के व्यवहार पर। क्षमा करें कहते-कहते उसने हाथ जोड़ लिए।

नीली सोच रही थी, "विधि का यह कैसा विधान है। ऋत्विक का किसी काम से दिल्ली आना, वहाँ अपने दोस्त से मिलना, दोस्त के साथ उसके छोटे भाई उमंग के कॉलिज पहुँचना। वहाँ एनुअल-फ़ंक्शन में नीली का सम्मानित होते देखना और दूसरे ही पल उसे दिल दे बैठना!"

"कैसा चक्र रचा है ईश्वर ने", देविना भी सोच में थी। "दहेज-लोलुपों से हमारी जान छूटी। बिटिया को उसका मनपसन्द वर मिलने वाला है।"

"ऋत्विक... मेरी सफलता के पीछे माँ का स्नेह और आशीर्वाद है। यह उन्हीं की प्रेरणा है कि दहेज की माँग के आगे मेरा सर नहीं झुका" नीली अपने होने वाले दूल्हे को बता रही थी। उसके नेत्रों का कोप घरवालों पर बरस पड़ा था, जो देविना के खिलाफ़ बैठक कर रहे थे। नीली ने पाया कि वे सब शरमिंदगी से लाल पड़ गए। दूसरे दौर की प्रताड़ना से उसकी माँ अब उबर चुकी थी।

vinitashukla.kochi@gmail.com

एक चाहत ऐसी भी

- श्री अशोक कुमार

विक्टोरिया, सेशेल्स

पिछले आठ सालों से फ़ेसबुक उपयोग कर रही हूँ। फ़ेसबुक पर काफ़ी सारे दोस्त बने। कुछ बचपन के भी, कुछ स्कूल कॉलिज के भी, कुछ पति के रिश्ते से भी, तो कभी अनजान भी फ़ेसबुक पर दोस्त बने। पर मेरी ये दोस्ती हर पल अधूरी रही। जाने-अनजाने में मैंने कई बार तुमको ढूँढने की कोशिश की। तुम्हारे नाम से, शहर से, दोस्तों के लिस्ट से, दोस्त के फ़्रेंड्स लिस्ट से भी। पर तुम नहीं मिले। न ही तुम्हारा कभी रिक्वेस्ट आया। कभी-कभी सोचती थी कि तुम इतने भी गँवार नहीं, जो फ़ेसबुक उपयोग न करो। तुम्हारे व्यक्तित्व का मुझपर प्रभाव ही कुछ ऐसा है कि शादी के इतने सालों बाद भी तुम्हारी याद आ ही जाती है। किस रूप में, किस अधिकार से, ये तो मुझे भी नहीं पता है। गलती तो मेरी ही थी, जो मैं तुम्हारे लिए कुछ दिन और इंतज़ार नहीं कर सकी और सात साल के रिश्ते को ऐसे तोड़ दिया, मानो वह कल का ही एक हल्का रिश्ता हो। मुझे नहीं लगता कि कोई लड़की अपने पहले प्यार को भूल पाती होगी। सो

मैं भी नहीं भूल पाई। पर किसी से तुम्हारा कभी ज़िक्र भी नहीं कर पाई। एक दिन यूँ ही आदतन फ़ेसबुक पर तुम्हें ढूँढ रही थी, तो अकस्मात तुम्हारे डीपी पर नज़रें टिक गईं। तुम्हारा नाम और तुमको फ़ेसबुक पर देख कर मन को सुकून मिल गया। पर तुम्हारे नाम का दीदार होने से आँखों से कुछ दर्द-सा रिसने लगा था। पलकें बोझिल हो रही थीं। जल्दी-जल्दी से तुम्हारा पूरा फ़ेसबुक खंगाल लिया। तुम्हारी हर तस्वीर और पोस्ट मुझे कमज़ोर कर रही थी और दर्द बढ़ता ही जाता था, तुम्हें सिर्फ़ तस्वीरों में देखकर। तुम्हारा मेरे पास न होना बहुत कचोट रहा था मुझे। मन किया तुम्हें रिक्वेस्ट भेजूँ, पर नहीं भेज पाई। अब तो तुम्हारी टाइमलाइन चेक करना मेरी आदत-सी हो गई है। हर पोस्ट के कमेंट्स को पढ़कर अहसास होता कि तुम मेरे काफ़ी करीब हो। न जाने कितनों ने तारीफ़ में क्या-क्या लिख डाला था। पढ़कर गुरूर-सा हुआ कि आखिर तुम मेरी पसंद हो। तुमसे एक जलन-सी भी महसूस हो रही थी। मगर दिल को तसल्ली-सी थी कि तुम आज भी नहीं बदले। बिल्कुल पहले की तरह हो। तस्वीरों में आँखों में वही खामोशी, पतले होठ, कान के नीचे तक बढ़े बाल और शांत निर्मल मुस्कान। मन किया तुम्हें मैसेंजर से कॉल करूँ, पर सोचती हूँ किस अधिकार से करूँ? पता नहीं तुम क्या सोचोगे। अचानक देखा कि 7 जुलाई को हर साल तुम अपने टाइमलाइन पर किसी को जन्मदिन की शुभकामनाएँ बड़े ही भावुक तरीके से देते हो। कौन हो सकता है? अरे यह तो मेरा ही जन्मदिन है। तुम्हें आज भी याद है, जबकि जीवन की आपा-धापी में मैं ही भूल गई। आँखों में आँसू आ गए। अतीत ने मुझे जकड़ लिया है। ज़िंदगी में मेरे जन्मदिन पर पहला गिफ़्ट तुमने ही तो दिया था, जब हम साथ पढ़ते थे। कितना प्यारा-सा गिफ़्ट था वह। पर वह मैं संभाल कर नहीं रख सकी। कितनी अल्हड़ थी मैं। ये सब सोचते-सोचते और डरते-डरते मैंने तुम्हें फ़्रेंडशिप रिक्वेस्ट कब भेज दिया पता ही नहीं चला। जुलाई का महीना था। 5 दिन तक तुमने एक्सेप्ट नहीं किया था। कई बार मन किया कैंसेल कर दूँ। हर दिन डर कर देखती कि तुमने शायद एक्सेप्ट किया हो। मन में यह भी था कि तुम क्या सोचोगे मेरे बारे में। छठे दिन सुबह-सुबह उठते ही मोबाइल चेक किया, तो मैं झूम उठी थी। तुम मेरे फ़ेसबुक फ़्रेंड थे। मैं भी कितनी पागल थी कि जब तुम असल में मेरे थे, तो मैं तुमसे दूर हो गई और फ़ेसबुक पर खुश हो रही थी। मैंने न जाने तुम्हारे कितने फ़ोटो और पोस्ट को तुरंत लाइक किया। लेकिन तुमने मेरे किसी भी पोस्ट को लाइक नहीं किया। इतना तो पता चल गया कि तुम हिन्द महासागर के किसी छोटे किंतु सबसे सुंदर देश में हो। पर मैं तुम्हारे बारे में बहुत कुछ जानना चाहती थी। तुम्हारी पत्नी के बारे में सबसे ज़्यादा। उससे मैं अपनी तुलना करना चाहती थी। मुझे उससे जलन हो रही थी। अगले दिन 7 जुलाई आ गया। इस बार भी मुझे अपना जन्मदिन याद नहीं रहा, न ही किसी ने याद दिलाई। पतिदेव ऑफ़िस जा चुके थे। सुबह-सुबह मैसेंजर पर आए मैसेज से तंद्रा भंग हुई। देखा तुम्हारा मैसेज था। एक झटके में पढ़ लिया। तुमने मुझे जन्मदिन की बधाई दी थी। आँखों में खुशी के आँसू थे। पास रहते तो आगोश में ले लेती। मुझे कुछ सूझ नहीं रहा था कि क्या जबाब दूँ। मैंने बस 'थैंक यू वेरी मच' लिखा। बहुत हिम्मत कर मैंने दूसरा मैसेज किया "हाऊ आर यू?"

तुम्हारा जबाब आया "फ़ाइन एंड यू? कैन आई कॉल यू ऑन मैसेंजर?"

मैंने बस 'ओके' लिखा।

साँसें तेज़ हो गईं। धड़कनें बढ़ गईं। हाथ काँप रहे थे। पलकें बोझिल हो रही थीं। यदि तुमने पूछा कि मैंने तुमको क्यों छोड़ा, क्यों बेवफ़ाई की? तो मैं क्या जबाब दूँगी? अचानक तुम्हारा कॉल आ गया। मैंने आहिस्ते से 'हेलो' बोला। तुमने कहा - "हैप्पी

बर्थ डे 'डॉल' (तुम मुझे इसी नाम से बुलाते थे)।" इसी एक शब्द से तुम्हारे साथ गुज़रे सात साल का हर वाकिया आँखों के सामने आ गया। न ही तुमने ज़्यादा पूछा, न ही मैंने ज़्यादा कहा। वही आवाज़, वही कसक, वही इमोशन। तुम बिल्कुल भी नहीं बदले। सुकून मिला कि तुम... जाने दो।

फिर बातचीत का सिलसिला शुरू हो गया। मैं भी हर दिन 'गुड मॉर्निंग' भेजने लगी और तुम्हारा रिप्लाई भी आने लगा। लगातार मैसेज से तुम कुछ नाराज़ भी हो रहे होंगे, पर तुमने ज़ाहिर नहीं होने दिया। कभी-कभी बात भी कर लेती थी, पर ज़्यादा नहीं। तुम मेरी आँखों के नूर थे और हो। मैं तुमसे बहुत बातें करना चाहती थी, पर दायरा जानती थी। तुमने भी कभी भी पिछली बातों को याद नहीं किया। एक दिन तुमने मुझे अपने यहाँ आने को कहा। मैं भी तुमसे मिलना चाहती थी। तुमसे बहुत बातें करना चाहती थी। पति को मनाकर उनके साथ ही मैं तुम्हारे पास तुम्हारे देश गई। उनको पता था कि तुम मेरे दोस्त हो। तुमने हम दोनों का खूब मान-सम्मान किया। तुम्हारी पत्नी कितनी प्यारी है। कितना ख़याल रखा मेरा। उसने तो मुझे पलकों पर बिठाकर रखा। मैं हर पल तुम्हारी नज़रो को ही देखने का प्रयास करती थी। शायद तुम मुझसे पिछली बातों के लिए गुस्सा हो। पर तुमने ज़ाहिर नहीं होने दिया। तुम भी तो पलकें झुकाकर, छुप-छुपकर मुझे देख लेते थे।

वह आखिरी दिन था तुम्हारे यहाँ एक अंजान देश में। तुमने मुझे और मेरे पति को, हम लोगों के न चाहते हुए, भी गिफ़्ट दिए। मैंने बहुत मना किया, पर तुम हम लोगों को उपहार देकर ही माने। शाम हो चली थी। अब फ़्लाइट का टाइम हो चला था। अचानक तुम्हारी पत्नी ने मुझे अपने कमरे में ले जाकर मेरे हाथों में कुछ दिया। मैं समझ नहीं पाई। वह गले के लिए सोने की चेन थी। उसने बस इतना कहा कि ये तुमने अपनी पहली सैलरी से खरीदा था, क्योंकि ये वादा था कि तुम अपनी पहली सैलरी से मुझे गले की चेन दोगे। ओह नहीं! मैं बीस साल पुराने पल में खो गई, जब तुमने मुझे पहला गिफ़्ट दिया था और कहा था कि अभी तो इतनी ही हैसियत है। लेकिन अपनी पहली सैलरी से तुम मुझे गले की चेन दोगे, ताकि मैं हमेशा उसे गले में पहनकर दिल से लगाकर रखूँ। आँखों में आँसू आ गए। तुमसे गले मिलकर लिपटना चाहती थी। मन-ही-मन तुमसे माफ़ी माँगने लगी कि मैं तुम जैसे इंसान से बिना बताए दूर हो गई थी। मेरे पास कोई शब्द नहीं था। गला रूँध-सा गया था। आँखें भर आई थीं। मैंने तुम्हारी पत्नी को गले लगा लिया। आज तक मैं उससे जलती रही थी। आज वह मुझे दुनिया की सबसे प्यारी इंसान लगी। मेरी छोटी बहन। मैंने उसके ललाट को चूम लिया। उसने चेन अपने हाथों से मेरे गले में डाल दिया। पलकें उठाकर तुम्हें देखा। तुम मेरे पति से बात कर रहे थे। एयरपोर्ट पर तुमने मुझसे आखिरी बार हाथ मिलाया। वही स्पर्श, वही नरमी, वही कोमलता, वही अपनापन, वही प्यार, जो बीस साल पहले था। मैं तुम्हारे करीब आना चाह रही थी और समय का थपेड़ा तुमको मुझसे दूर कर रहा था। बार-बार तुम्हारी नज़रों को देख रही थी। तुम तो जीत गए थे और हारी मैं ही थी। जाते-जाते सिर्फ़ 'बाय' ही बोल पाई। लेकिन तुमसे 'बाय' क्यों? इस चेन के रूप में तुम अब तो हर पल मेरे दिल और मेरी धड़कनों के समीप रहोगे। तुम मेरे अनकहे अहसास और आँखों में खामोशी भरे आँसू के रूप में हर पल साथ रहोगे।

aashuashok2009@yahoo.co.in

एल्बम

- प्रीति गोविन्दराज
अमेरिका

जैसे ही एल्बम उठाकर सोफ़े पर दुखते घुटनों को विश्राम देने के लिए अनुपमा पसरने लगी, तो पूरे दिन का परिश्रम पैंसठ वर्षीय वृद्ध काया पर दुष्प्रभाव दिखाने लगी। अनुपमा अपने एल्बम को पुन: खोलकर उसके पन्ने पलटने लगी। इन चित्रों ने कभी संतोष, कभी सुख तो कभी आँसू दिए थे। प्रत्येक जीवन पड़ाव का एक प्रतिनिधि-चित्र इसमें लगा था। किसने सोचा था अनुपमा अपने इस अंतरंग-सखी एल्बम के साथ एक दिन अमेरिका भी आएगी? क्या करती, यदि अपने एकमात्र पुत्र के साथ रहने के लिए बॉस्टन न आती? कौशल और प्रतिभा दोनों अनुपमा का कितना ख़याल रखते हैं। अपना खून तो अपना ही होता है न? कौशल के कितने सारे एल्बम हैं! कुछ कॉलिज के दिनों के, कुछ विवाह के और हाल ही में पेरिस की सैर के। अनुपमा का तो बस एक ही एल्बम है, जिसमें केवल महत्त्वपूर्ण क्षणों के लिए स्थान है। केवल उसके अपनों के लिए जगह है यहाँ। अब तो उसके एल्बम पर सेलोटेप भी लग चुका था, पुरानी अनुपमा और पुराना एल्बम!

पहले पृष्ठ पर थी माँ-बाबूजी की तस्वीर और उनके साथ अठारह वर्ष की अनुपमा। दुबली-पतली, छुई-मुई लड़की, दो काली लंबी चोटियाँ कमर तक लटकती हुईं, चेहरे पर निश्छल मुस्कान। दूसरे पृष्ठ पर अमर और अनुपमा के विवाह की तस्वीर थी। अमर का गोल-मटोल मुसकुराता चेहरा, घुँघराले बाल और अनुपमा का सजा-संवरा मगर थका हुआ चेहरा! पुराने ज़माने में फ़ोटो की बारी तब आती है, जब विवाह संपन्न हो गया हो और बाराती घर लौट गए हों। बेचारी वधू को पूरे दिन निर्जल उपवास रखना पड़ता था। कम-से-कम चालीस बार तो बड़े-बूढ़ों के पैर छूने होते थे। भला साज-शृंगार से थकान कहाँ छिपती है? ईर्ष्या हो जाती है दुल्हे राजा के खिले चेहरे को देखकर, न कोई थकान, न किसी से कोई अपेक्षा! उनके तो ठाठ हैं। स्वयं मायके वाले अपनी बिटिया को भूलकर दामाद की आवभगत में लग जाते हैं। देखते-ही-देखते हँसमुख और सरल व्यक्तित्व के स्वामी अमर कब जीवनसाथी बन गए, पता ही नहीं चला।

गाँव की गोद में पली-बढ़ी अनुपमा को शहर के पढ़े-लिखे अमर के साथ नए तौर-तरीके सीखने पड़े। बिजनौर से निकलकर कभी कोल्हापूर, तो कभी सिकंदराबाद, कभी जोधपुर, तो कभी राउरकेला में हमारे वैवाहिक जीवन की रेल चल पड़ी। दूसरे ही स्थानांतरण में कौशल का आगमन हुआ। एक और पन्ना पलटा और कौशल के शैशव काल की प्यारी-सी तस्वीर दिखी। मुस्कुराने का सबसे अच्छा बहाना था, इस छवि को निहारना। उसके नटखट कारनामों का स्मरण करती, तो कभी-कभी आँखें छलक जातीं। स्थानांतरण के समय सामान बाँधने का काम उस नटखट बच्चे के लिए रोचक बन गया था। कभी रसोई से बरतन लेकर भाग जाता, तो कभी सूटकेस में बैठ जाता। उस समय उसका खेल अनुपमा का मनोरंजन था। हाँ काम तो बढ़ गया था, लेकिन ऐसे काम पर वारी जाए। अमर मिलनसार व्यक्ति थे, चाहे पड़ोस हो चाहे अपने घर या मायका सब जगह उन्हें स्नेह और सम्मान मिलता था। राऊरकेला में आए साल हुआ था और कौशल सात साल का हो गया था। दूसरी कक्षा में पढ़ रहा था। ससुराल से एक ही शिकायत थी कि दूसरे बच्चे में बड़ी देर कर दी। हमारे मन में भी यही आशा थी कि हमारे आँगन में एक और

फूल खिले पर दूसरा बच्चा किसी कारणवश हमारे भाग्य में नहीं था। दो वर्ष बिना तनाव के प्रतीक्षा भी की, फिर कौशल को ही अपनी पूरी दुनिया मान लिया। अगले चित्र में कौशल, अमर और मैं कोल्हापूर के महालक्ष्मी मंदिर के सामने खड़े थे, कितना सुंदर दर्शन था। मानो उस संतोषपूर्ण क्षण को ईश्वर ने किसी तरह ठोस बना दिया था इस चित्र के माध्यम से। किसे पता था कि उसी वर्ष हमारा जीवन सदा के लिए बदल जाएगा? जिस दिन अमर का शव घर आया, उस दिन को अनुपमा कभी नहीं भुला सकती। काम से आते हुए अमर की एक भयानक दुर्घटना में मृत्यु हो गई। अमर की अंतिम तस्वीर अजीब लग रही थी, नाक-कान में रूई और आँखें बंद, जैसे बस सोए हों। चेहरे पर एक खरोंच भी नहीं आई थी, यूँ लगता था, जैसे पलक झपकते ही उठ जाएँगे, लेकिन ईश्वर ने उन्हें उठने की आज्ञा नहीं दी।

पुराने संदूक से बारहवीं के प्रमाण-पत्र की आवश्यकता पड़ेगी यह कभी सोचा न था। अमर की सरकारी नौकरी के सहारे अनुपमा को छोटी-सी नौकरी मिली। आगे बड़ी संघर्षमयी यात्रा थी, सास-ससुर दो साल तक बहू और पोते के साथ रहे। उनकी उपस्थिति से बहुत प्रोत्साहन मिलता था, आपस में दुख बाँट लेते थे। असामयिक मृत्यु को भुगतने के लिए हम चारों निःशब्द एक-दूसरे का आसरा बन जाते। कौशल इन दो वर्षों में इतना सयाना बन गया, उसने माँ का हाथ बँटाना सीख लिया। सब्ज़ी काटना, बरतन माँजना और झाड़ू लगाना, उसने अपने हिस्से की ज़िम्मेदारी मान ली। स्कूल में गंभीरता से पढ़ाई करने लगा, अब वह प्रथम आने लगा था। हँसता-खेलता बच्चा, जो पहले लाड़-प्यार के कारण पढ़ाई पर ध्यान नहीं देता था, वह अब स्वयं सुबह अलार्म लगाकर पढ़ने लगा था। जीवन अनुभव या परिस्थिति ही यथार्थ में हमारी पाठशाला है। बारहवीं कक्षा में कौशल पूरे स्कूल में दूसरे नंबर पर आया था। इंजीनियरिंग कॉलिज में उसका दाखिला हुआ, तो खुशी भी हुई और चिंता भी। अनुपमा रात भर सोचती रही कि इतनी फ़ीस कैसे चुका पाएगी। किन्तु इस समस्या का निदान भी हुआ। दादा जी ने अमर की जायदाद का भाग बैंक में जमा कर दिया, जो उस समय ईश्वर के वरदान से कम न था। एल्बम पलटा, तो सत्रह साल का मुस्कुराता, लंबा पतला कौशल हॉस्टल के सामने खड़ा था। बी.ई. के बाद दो वर्ष उसने नौकरी की और उसके बाद मास्टर्स के लिए यू.एस. के लिए अर्ज़ी भरी। अपनी परीक्षा की तैयारी बिना बताए की, उसमें कुछ नया नहीं था। माँ को वह किसी बात के लिए परेशान नहीं करना चाहता था, यहाँ तक तो ठीक था। किन्तु अब अनुपमा का एकमात्र पुत्र अचानक सात समुंदर पार जाने के लिए पंख फैलाकर खड़ा हो गया। कौशल के एयरपोर्ट के चित्र में अनुपमा की आँखें रोते-रोते सूजी हुई थीं। एक ही तो अपना था और वह भी अब उड़ने को आतुर। कौशल को आने वाले भविष्य से आशाएँ थीं और होनी भी चाहिए। कुछ हद तक अपरिचित वातावरण में पहले-पहल उतरने से पूर्व का भय तो रहा होगा, लेकिन उसने उस भय को बड़ी चतुराई से छुपा रखा था। "माँ एक दिन आप भी आएँगी मेरे पास, वहाँ रहेंगी, जैसे हम पहले रहते थे" उस वचन को उसने निभाया भी। तभी तो बॉस्टन में इस भव्य भवन में रहती है अनुपमा। पन्ना पलटा, तो कौशल के विवाह की तस्वीर थी, कितना प्यारा लग रहा था उसका बेटा। उससे यदि कोई सुंदर लग रही थी तो प्रतिभा; राम बनाई जोड़ी थी। क्यूँ न हो। बड़े चाव और लगन से अपनी बिरादरी की सुघड़ ब्राह्मण कन्या चुनी थी अपने आदर्श पुत्र के लिए। धीरे-धीरे पहली वर्षगाँठ से दूसरी और अब चौथी भी मन गई थी। पारस्परिक स्नेह तो बढ़ रहा था, किन्तु परिवार नहीं। अनुपमा हर दो वर्ष बाद तीन महीने बिताने अमेरिका आ जाती। कभी-कभी कौशल से पूछ भी

लेती कि क्या बात है, अभी तक बच्चा नहीं हुआ? कोई ठोस कारण नहीं था, जाँच तो हो चुकी थी और दोनों शारीरिक रूप से स्वस्थ थे। दोनों पति-पत्नी अमेरिका के व्यस्त जीवन में अपनी-अपनी नौकरी से जुड़े हुए थे। संभव है समय के अभाव से उन्हें बच्चे के न होने से अधिक व्यथा नहीं हो। कितना अच्छा रहता कि जब अनुपमा यहाँ आती, तो कोई बच्चा या बच्ची तोतली ज़ुबान में दादी-दादी करके उसका जीना दूभर कर देता और मन बहला भी देता। पाँचवें वर्ष अनुपमा ने पूछ ही लिया कि क्या दोनों नवजात के लालन-पालन से डरते थे, "कौशल अब तो मेरे पास ग्रीन कार्ड है, लंबे समय के लिए यहाँ ठहरकर बच्चे की पूरी तरह देखभाल करने के लिए तैयार भी हूँ। प्रतिभा को काम छोड़ने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी।" कौशल ने स्नेह से अनुपमा के कंधों पर हाथ रखा और मुस्कुराने लगा। अनुपमा सोचती रह गई कि इस वात्सल्य का क्या अर्थ था, "माँ तुम भोली हो या माँ तुम बुद्धु हो?" वैसे तो अनुपमा भारत में पास-पड़ोसियों के जिज्ञासु प्रश्नों के आगे ढाल बनकर खड़ी हो जाती। अपनी ओर से तो पूरे सहारे की बात व्यक्त कर दी थी, अब सिवाय प्रतीक्षा के कोई विकल्प न था।

अचानक एक दिन कौशल ने कहा कि प्रतिभा और उसने बच्चा दत्त लेने का निर्णय ले लिया है और अब मंज़ूरी भी मिल गई है। मंज़ूरी? अनुपमा को लगा था कि बच्चा दत्त लेना इतनी बढ़िया बात है, इसमें किसी की स्वीकृति भी चाहिए? "हाँ माँ, हर संस्था के नियम होते हैं।" अनुपमा ने अधिक पूछ-ताछ नहीं की। इतना समझदार दंपति है, सब कुछ सोच-समझकर ही करेंगे। उससे कहा गया कि अनुपमा घर में साफ़-सफ़ाई करके उनकी बेटी की प्रतीक्षा करे। दिल्ली में दोनों तीन सप्ताह रहने के बाद आ रहे थे। प्रतिभा तो उससे भी पहले गई थी, पूरी कार्यवाही के लिए, जो भी नियम होंगे, कड़े होंगे। अमेरिका में बैठी अनुपमा अपने-आप से वार्तालाप करती या अपने एल्बम में अपनों का स्नेह ढूँढती।

ऐसे ही एक दिन 'कृति' उनके घर आई, उसे पहली बार देखा, तो अनुपमा देखती रह गई। चार साल की छुई-मुई-सी साँवली लड़की। यही अब कौशल और प्रतिभा की इकलौती संतान बन गई थी। न जाने दत्त लेने की प्रक्रिया कब की साधना थी, जो अब जाकर वास्तविकता में परिवर्तित हुई। अनुपमा के मन में न जाने क्यूँ कुछ टूटता-सा लगा। रात को खाने के बाद उसने अपने मन में लोटते साँप को बाहर निकाल ही दिया, उसे पता था कि कौशल उसका सही उत्तर अवश्य देगा। "यह बच्ची कहाँ की है? इसके माँ-बाप किस जात के हैं, कुछ पता किया था?" कौशल ने आश्चर्य से अनुपमा की ओर यूँ देखा, जैसे उनसे यह अपेक्षा नहीं थी। "माँ आज इतने दिनों के बाद हमें खुशियाँ मिली हैं। प्रतिभा के चेहरे पर इतने दिनों में आज पहली बार सच्ची खुशी देखी है। हमारे लिए इस बात का कोई मतलब नहीं कि उसकी भाषा, धर्म या जात क्या है?" कौशल ने यह बात जैसे ही समाप्त की, वह अपने कमरे में चला गया। अनुपमा खड़ी सोचती रही, इतने वर्षों की परंपरा, उच्च ब्राह्मण-कुल, हमारे रीति-रिवाज़ और कौशल कह रहा है कि उसे कोई फ़र्क नहीं पड़ता। अनुपमा ने पूजा-घर में आकर प्रभु से उसकी उद्दंडता के लिए क्षमा-याचना की। क्या करें बच्चा सयाना हो गया, ऊपर से अमेरिका की आबो-हवा! मन-मस्तिष्क में कोड़े बरस रहे थे, अपनी तड़प सुनाने के लिए कौन था, अपनी पलकें पोंछकर चुपचाप लेट गई। ऊपर कमरे से कौशल, प्रतिभा और उस बच्ची के खिलखिलाने के स्वर सुनाई दिए। उस रात शायद मध्य-रात्रि तक बातें ही चलती रहीं। बच्चे के लिए खिलौने, कपड़े और पुस्तकें आदि तो पहले से आ गई थीं। प्रतिभा ने दो सप्ताह का अवकाश भी ले लिया था। अब वह अपनी बहू की भूमिका छोड़कर माँ की भूमिका

में उतर आई थी। अनुपमा को अपने पद जाने का दुख था या इस अनाथ बच्ची के सौभाग्य से ईर्ष्या? कौशल उसके लिए दफ़्तर से जल्दी घर आ जाता, कभी खाना खिलाता, तो कभी छुपन-छुपाई खेला जाता। कभी दोनों पार्क में जाते, तो कभी आइस-क्रीम खिलाने ले जाया जाता। प्रतिभा ने तो छोटी बच्ची के लिए कपड़ों की भरमार लगा दी, ऊपर से बालों पर लगाने वाले क्लिप, तो कभी हेयर-बैंड। इस विलासिता को पाकर उस बच्ची की आँखें खुशी से चमकती रहतीं, उसके होंठों पर सदैव मुस्कान खिली रहती। कुछ ही दिनों में बच्ची कभी हिंदी, तो कभी अंग्रेज़ी का प्रयोग करने लगी थी। कौशल तो इतनी किताबें पढ़ता या पढ़कर सुनाता था कि लगता दो साल में मैट्रिक पास करा देगा। "कृति ये खाओ, कृति ये देखो, कृति परफ़ेक्ट, वेरी गुड" आदि सुन-सुनकर अनुपमा के कान पक गए थे। जब आई थी, तो सिवा हिंदी के कुछ न आता था। अब तो कंप्यूटर तक चला रही थी। "माँ स्कूल में अंग्रेज़ी बोलेंगे, कंप्यूटर से पढ़ाई करेंगे, इसलिए कृति का सब सीखना ज़रूरी है। अनुपमा ने आज तक न उस बच्ची से बात की, न उसे हाथ ही लगाया, बस दूर से देखती और जलती रहती। तीन चार सप्ताह में वह घबराई-सी चुपचुप रहनेवाली बच्ची, अब अधिकार से अपनी बात कहती और दो समझदार वयस्क उसकी प्रत्येक इच्छा पूरी करने की होड़ में लगे रहते।

एक दिन अनुपमा को धर्म संकट में डालने वाली घड़ी आ गई। कौशल और प्रतिभा दोनों को ऑफ़िस की एक पार्टी में जाना पड़ा। दोनों इतने बेचैन कभी नहीं दिखे थे, तब भी नहीं, जब प्रतिभा की अपनी माँ बीमार हो गई थी और वह भारत अकेली चली गई थी। सारी चिंता तो कृति को लेकर थी, "माँ आप कृति को संभाल लेंगी? हमें आते-आते ग्यारह भी बज सकते हैं। खाना बना है, बस उसे गरम करने के बाद आप दोनों खा लेना।" ऐसे निर्देश दिए जा रहे थे, जैसे अनुपमा बच्ची हो और अब सब कुछ उसे सीखना पड़ेगा। प्रतिभा अपनी बच्ची से बिछड़ने के दुख को अपने चेहरे के साज-श्रृंगार से छुपा न सकी। अनुपमा अपने पुराने वचन पर गौर करने लगी कि मैं बच्चे या बच्ची को पूरी तरह संभाल लूँगी। आज जब वास्तव में बारी आई, तो कैसे छक्के छूट रहे हैं सबके। मन-ही-मन स्वयं से व्यंग्यात्मक टिप्पणी करने लगी, वही सास और माँ जो सब कुछ हुआ करती थी,उसे बाहर से आई बच्ची की देखभाल योग्य नहीं समझा जा रहा। उसकी चिंता तो अपनी जगह ठीक है किन्तु..। "हाँ, हाँ चिंता मत करो, मैं संभाल लूँगी" जाने कैसे उसके मुँह से निकले थे ये शब्द। कौशल आश्वस्त हो गया और प्रतिभा की मुस्कान भी खिल गई। अनुपमा ने कृति को अपनाने का कोई संकेत ही नहीं दिया था, इसलिए दोनों इतने चिंतित थे।

कौशल और प्रतिभा के जाने के बाद बच्ची का चेहरा सफ़ेद पड़ता-सा लगा। उसने बड़ी हिम्मत से अनुपमा की ओर देखा और मुस्कुराई। अनुपमा का गंभीर चेहरा देखकर उसकी मुस्कान जम-सी गई। "जब भूख लगे, तो बता देना" कहकर अनुपमा अपने कमरे में चली आई। "दादी प्लीज टी.वी. लगा दो न" दस ही मिनट में वह नन्ही-सी काया कमरे के दरवाज़े पर खड़ी थी, अपनी निश्छल मुस्कान लिए। अनुपमा ने दोबारा उसे घूरकर देखा, पर उस बच्ची का मन तो टी.वी. पर टिका था, अनुपमा की निर्मम प्रतिक्रिया की ओर उसका ध्यान ही नहीं गया। अनुपमा ने टी.वी. चला दिया। सोफ़े पर बैठी-बैठी कृति खिलखिलाकर हँसने लगी, बच्चों का अंग्रेज़ी प्रोग्राम चल रहा था। बीच-बीच में कुछ चिल्लाती रहती, शायद टी.वी. पर कुछ प्रश्न पूछे जा रहे थे। वह बच्ची यूँ लगातार उत्तर दे रही थी, जैसे इसी वातावरण में जन्मी हो। अनुपमा जान-बूझकर अपने कमरे में बैठी रही। एक घंटे बाद जब खाने का समय हुआ, तो अनुपमा बैठक में आ

गई। उसने देखा बच्ची सोफ़े पर लेटी हुई थी और टी.वी. ज़ोर-शोर से अभी भी चल रहा था। अनुपमा का हृदय पहली बार कृति के लिए पसीजा। संभव है बच्ची को भूख-प्यास लगी हो, लेकिन अनुपमा के रवैये से घबराकर वह कुछ न बोल पाई हो। फिर नन्ही-सी जान ठहरी, निद्रा ने जब अपना आँचल फैलाया, तो पूरे दिन की थकी-हारी कृति सो गई। चार साल की कोमल आयु में तो कौशल उसके आँचल से बंधा ही रहता था और अनुपमा भी कहाँ एक पल को उसे अकेले रहने देती थी। आज तक न तो अनुपमा ने कृति को संबोधित किया था और न ही हाथ लगाया था। धीमे-से उसका कंधा सहलाया, तो उसने पलकें खोलीं। उसके नींद से बोझिल मुख पर एक प्यारी-सी मुस्कान मचली। स्वप्नों में खोई थी या जग रही थी? पुन: उसे स्पर्श से जगाया, तो कोई प्रभाव ही नहीं हुआ। अनुपमा कुछ घबरा गई, यदि कौशल और प्रतिभा ने आकर पूछा, तो क्या उत्तर देगी? एक चार वर्ष की बच्ची को समय से खाना खिला न सकी? विवश होकर उस बच्ची का नाम लेना ही पड़ेगा। ध्वनि ही जगाने का एकमात्र मार्ग था। "कृति उठो, खाना खा लो" कोई असर न हुआ। अनुपमा अब उसके पास बैठकर प्रयास करने लगी, "कृति बेटा, उठो खाना खा लो।" कुछ और दुलार-पुचकार के बाद और कंधे हिलाने के बाद आँखें खुलीं। दोबारा नींद हावी न हो जाए, इसी डर से अनुपमा ने खाना केसरोल में गर्म कर दिया था। दाल-चावल दो चमच्च मुँह में डाला, तो कृति का सिर फिर नींद में डोलने लगा! अनुपमा ने उसे अपनी गोदी में बिठाकर पहले तो उसके चेहरे पर गीला तौलिया फेरा, फिर प्यार से उसको जगाती हुई कुछ बातें करने लगी। "कृति तुम पहले कहाँ थीं?" "क्राइस्ट-होम" वह मशीनी-यंत्र की तरह बोल पड़ी, जैसे सदियों से अपनी पहचान इसी तरह से बताती आ रही हो। "चावल अच्छी लगती है या रोटी?" वार्तालाप का तांता ही नींद को तोड़ सकती थी। "यहाँ दोनों अच्छे लगते हैं, वहाँ दोनों बुरे लगते थे।" अपनी बात कहते हुए उसने चम्मच के लिए अपना मुँह खोला। "गोभी खाओगी या मटर-पनीर?" "पनीर सबसे बेस्ट होती है।" कृति ने निर्णय सुनाया, तो अनुपमा को हँसी आ गई। साधारण संवाद से प्रेरित होकर कृति ने अचानक सिर घुमाकर अनुपमा के मुँह की ओर एकटक देखते हुए पूछा, "क्या मैं बुरी हूँ?" अनुपमा सुन्न रह गई, "नहीं, नहीं यह किसने कहा?" "आप तो मुझसे कुछ कहती नहीं थीं न, मैंने सोचा मैं बुरी हूँ।" उसकी बड़ी-बड़ी आँखें डबडबा गई थीं। अब अनुपमा का गला दुखने लगा और पलकें भीगने लगीं। "नहीं बेटा ऐसी बात नहीं है, खाना खा लो, माँ-पापा आते होंगे।" "वे बहुत अच्छे हैं, बेस्ट, नहीं सुपरबेस्ट", दुबारा पनीर की आशा में मुँह खुल गया था। "तुम भी अच्छी हो।" अनुपमा के मुँह से अनायास बात निकली और निकलने के बाद उसे ही अचंभित करने लगी। यह बात कहाँ से निकली भला? ब्राह्मण स्त्री की गोद में जाने कहाँ की बच्ची बैठी अन्न ग्रहण कर रही थी और ऊपर से ये स्नेहपूर्ण घोषणा। वह भी उसके अपने मुँह से? अनुपमा की अंतरात्मा से कोई प्रत्युत्तर न गूँजा। "फिर आप मेरे साथ सो जाओ" कृति ने मुस्कुराकर कोमल हाथों से अनुपमा के चेहरे पर हाथ रखा। आशा से भरी उस नन्ही बच्ची के विनम्र आग्रह को कौन अस्वीकार कर सकता था? किसी प्यासे पौधे को लंबे समय तक पानी और प्रकाश से जैसे वंचित रखा गया हो, वैसी ही स्थिति थी उस अबोध बच्ची की। अनुपमा ने याद किया, जब वह नौकरी करती थी, तब एक कड़े और नकचढ़े अफ़सर से वह किस तरह दूर भागती थी। उसके मन में भय था कि कोई गलती न कर बैठे, ताकि उसका सामना न करना पड़े। कृति से अनुपमा का व्यवहार उस अफ़सर से मिलता-जुलता ही था, लेकिन इस बच्ची में भय नहीं था, केवल प्रेम की लालसा थी। इतनी अधिक मात्रा

में माँ-पापा स्नेह दे रहे थे कि फिर किसी और से कुछ पाने के लिए जगह ही कहाँ बची थी? किन्तु आज पता चला कि कृति अनुपमा के अपनत्व और वात्सल्य की कितनी प्यासी है। नहीं मैं तुम्हारे साथ नहीं सो सकती"। "मगर क्यों, दादी बोलो न?" मुझे तो लंबा बिस्तर चाहिए, बड़ी हूँ न?" पहला बहाना मैदान में उतारा। "नहीं, माँ-पापा भी सोते हैं, मेरे पास, आप जैसी लंबी तो माँ भी है।" "पापा का पैर तो बाहर निकलता है" फिर खिलखिलाकर हँस पड़ी। अनुपमा ने एक और निवाला मुँह में दिया, उसकी बचकानी बातों का अमृत-रस पान करने लगी। "अच्छा बताओ, स्कूल कब जाओगी" "जल्दी जाऊँगी, मेरी स्कूल-बैग देखी आपने?" सिंडरेला वाली पिंक बैग है" उसकी आँखें निर्मलता और गर्व से यूँ चमकी कि अनुपमा के दिल ने चाहा कि उसे सच बताए। "नहीं" झूठ बोलते हुए भी अनुपमा सकुचाई नहीं। इसी बैग को देखकर तो उसने बहु को खूब सुनाई थी। "इतनी महंगी बैग की क्या ज़रूरत थी, हम-तुम कभी स्कूल न गए थे क्या? जाने तुम लोग इस बच्ची को क्यूँ सिर पर चढ़ा रहे हो? एक दिन तुम पछताओगे, कितना खर्च करोगे इस लड़की पर, राम-राम!" "माँ हमारी इकलौती बेटी पर न खर्चें, तो किस पर खर्चें? उसकी मुस्कान हमारी सबसे बड़ी खुशी है, ठीक उसी तरह, जिस तरह मेरी खुशी आपकी खुशी थी।" कौशल के उस उत्तर से दो प्रतिक्रियाएँ हुईं। एक तो प्रतिभा ने कृतघ्नतापूर्ण आँखों से कौशल की ओर देखा और क्रोध से उबलती बुढ़िया को कम-से-कम प्रत्यक्ष रूप से शांत होना पड़ा। अनुपमा सोच-सोचकर तिलती रही कि जाने किसकी बच्ची, यू.एस. में आराम से ऐश कर रही है! अचानक एक शाम में उसे कुछ नरमी का अनुभव क्यूँ हो रहा था? दाल-चावल और पनीर समाप्त कराने के मूक उल्लास में अनुपमा के मन में शहनाइयाँ बज रही थीं। मुँह धुलाकर गोदी से उतारने लगी, तो कृति लपककर उसके गर्दन से चिपकी रही, "प्लीज गोदी में ले चलो।" उसका अर्थ था इसी मुद्रा में उठाकर बिस्तर तक ले चलूँ। अनुपमा मुस्कुराई। ठीक यही हठ तो कौशल का हुआ करता था। अब तो नींद को दोष नहीं दे सकते, अब तो कृति पर लाड़ का प्रभाव दिख रहा था। चलो, आज भर उसके माँ-पापा घर पर नहीं है, तो उसकी बात मान लेती हूँ। बिस्तर पर लिटाया, तो अनुपमा को भी लेटने के लिए बाध्य करने लगी। अनुपमा पुन: युक्तियाँ सोचने लगी, मुझे सिर्फ़ अपने बिस्तर में नींद आती है, किसी के साथ सोने की आदत नहीं है आदि। "पापा कहते हैं वो बचपन में आपके साथ ही सोते थे।" अनुपमा दंग रह गई, इस जादूगरनी से तो कोई बात नहीं छुप सकती। इतनी उम्र में तो कुछ बच्चे ठीक से बात करना भी नहीं जानते; ये तो सर्वज्ञाता है, एकदम चुस्त और सशस्त्र! क्षणभर के लिए विचार आया, अवश्य क्षत्राणी होगी।

अनुपमा की चुप्पी देखकर कृति तुरंत अपने बिस्तर से उठी। "दादी हम आपके बिस्तर में सोते हैं, वहाँ आपको नींद भी आएगी और आपको गोदी लेने की ज़रूरत नहीं है, मैं चल लूँगी" नन्हीं-सी उँगली हथेली में थमाकर भी यथार्थ में कृति ही अनुपमा को इच्छानुसार चला रही थी। अनुपमा स्वयं इस आग्रह से गौरवान्वित हो रही थी। क्या यह बच्ची उसके सामीप्य के लिए इतनी तत्पर है कि हर युक्ति को पलट कर रख देगी? तीन महीनों से एक ही घर में रहते हुए भी उसकी झोली दादी के स्नेह से खाली थी। "कृति तुम मेरे साथ क्यूँ सोना चाहती हो?" चलते-चलते जब अनुपमा ने प्रश्न किया, तब उसने बड़ी मासूमियत से कहा, "क्योंकि आप हमारी दादी हो।" "लेकिन आज तक तो तुमने हमसे कुछ नहीं कहा?" ध्यान से उसे अपने बिस्तर पर बिठाती हुई अनुपमा ने पूछा। "क्योंकि आज तक माँ-पापा मुझे सुलाते थे न?" हर जोड़ का तोड़ था उस हाज़िरजवाब में। अनुपमा मुस्काई, आज

पहला अवसर था कि माँ-पापा घर पर नहीं हैं और आपसे ममता वसूलने का उपयुक्त समय। अनुपमा उसके भोलेपन और समझदारी पर न्यौछावर हो गई। लेकिन माँ-पापा तो जल्दी आ जाएँगे, फिर मेरी ज़रूरत नहीं होगी।" अनुपमा ने दीवार से तीन तकिये सटाकर रखे, ताकि वह नींद में कहीं गिर न जाए। "पर आप भी तो बड़े हैं..." "तो?" अनुपमा रुकी रही कि अब उसके कमान से कौन-सा तीर छूटने वाला है? "फिर आपको भी कहानी आती होगी।" अनुपमा मुस्कुराई, कहाँ से कहाँ उड़ती हैं इसकी प्यारी बातें? कभी भोली बातें, कभी अपने मतलब की मैत्री! अब समझ आया कि कौशल और प्रतिभा इसकी मीठी चुंगल में कैसे फँसे। "कहानी?" "हाँ पापा ने कहा था आपको ढेर सारी कहानियाँ आती हैं, सुनाओ न प्लीज"। अब की बार उसने अपने छोटे-छोटे हाथ अनुपमा की कमर पर रखा, पूर्ण अधिकार से। अनुपमा ने पलकें मूँदीं, जब से कौशल ग्यारह-बारह वर्ष का हुआ है, तब से अपनेपन का ऐसा स्पर्श कहाँ मिला था उसे! पहले विधवा, फिर काम-काजी माँ और अब सास का रूप धरते-धरते वह अपनी भावुकता ही खो बैठी थी। केवल उपदेश देना ही आता था और अपना दृष्टिकोण ही उचित लगता था। गालों से बहते हुए आँसू को बहने दिया और कहानी शुरू की, "एक राजा था उसका नाम था..।" पता नहीं कब कृति की आँख लगी और कब दादी की। जब कौशल और प्रतिभा ने घंटी बजाई, तब घबराकर अनुपमा उठी, कुछ पल तक कृति के भोले-भाले मुखड़े पर टकटकी लगाने के बाद, दरवाज़े तक जाते-जाते सोचती रही, इतना सुख जीवन में विद्यमान था और वह उसकी अवहेलना करती रही? आज थोड़ी देर अपनी रूढ़िवादी जग से निकलकर देखा, तो कितना सुखद अनुभव पाया।

कौशल और प्रतिभा के मुखड़े पर अपराधबोध और भय दोनों भाव दिखे। क्या अनुपमा का व्यक्तित्व इतना अप्रिय बन गया था कि उसका पुत्र ही उससे डर रहा था और संशय से देख रहा था? अब इसमें उनकी गलती भी तो नहीं थी, मैं तो अपने अहंकार और स्वार्थ के वश में थी। "कैसी रही पार्टी? कृति तो मेरे बिस्तर पर सोई है।" अनुपमा को पता था यह बात सुनते ही दोनों आश्चर्य चकित हो जाएँगे। "माँ आप कृति के साथ सो रही थी?" कौशल की फटी आँखें देखकर, अनुपमा लज्जा से मर गई। "हाँ बेटा, जैसे तुम्हें खाना खिलाती थी, वैसे ही उसे भी खिलाया, फिर कहानी की हठ की, तो वह भी सुना दी। तुम्हारे बचपन की यादें ताज़ा हो गईं आज।" सहसा प्रतिभा अपनी सास से लिपट गई। उसके आलिंगन में आभार और अपनत्व भरा था। इतने वर्षों में एक अजनबी बच्ची के कारण ममता का घेरा दोनों को बाँध रहा था। तीनों बिस्तर के बगल में खड़े होकर कृति को निहारने लगे। अनुपमा ने झूठमूठ का क्रोध दिखाते हुए कहा "तुम्हारे ऑफ़िस वाले तो बड़े कंजूस है, पार्टी बड़ी देर बाद रखते हैं।" "माँ कृति की दादी बनने के लिए पार्टी की आवश्यकता नहीं है।" कौशल ज़ोर से हँसा और अनुपमा भी हँसने लगी।" आपके एल्बम के लिए कृति की प्यारी-सी तस्वीर दे दूँ कल?" कौशल के प्रश्न में चुनौती भी थी, कौतहूल भी था। इस बार अनुपमा अपने-आप को रोक नहीं पाई। उसे गले से लगाते हुए बोली, "बिल्कुल कौशल, जो दिल में उतर जाए, उसका चित्र भी एल्बम में लगा लेना चाहिए। मुझे माफ़ कर दो, मैं बहुत शर्मिंदा हूँ। तुम दोनों तो माँ-पापा बन गए और मैं दादी बनने से कतरा रही थी, लेकिन आज तुम्हारी परी ने मुझपर भी जादू की छड़ी घूमा ही दी!"

cs_preethi@hotmail.com

उस एक सुबह के लिए

- श्री दीपक कुमार चौरसिया
अमेरिका

मैं बस के पीछे अपनी पूरी क्षमता के साथ भाग रहा था, मगर बस हर पल पहुँच से दूर होती जा रही थी। दो दिन पहले हुई बर्फ़बारी ने ठण्डक तो बढ़ा ही दी थी, साथ ही आज दिन भर सूरज चमकते रहने से जो बर्फ़ पिघली भी थी, उसने साइडवॉक को कहीं-कहीं काँच जैसा चिकना बना दिया था और उसकी वजह से दौड़ना आसान नहीं था। बस लगभग छूट चुकी थी कि अचानक किसी ने मेरा हाथ पकड़ा और मुझे हवा में तैरा दिया। पलटकर देखा, तो मेरे बाबा थे, मेरे पिता के पिता, जिन्होंने मुझे ज़मीन से लगभग दो फ़ीट ऊपर उठा दिया। मैं तीव्र गति से उड़ने लगा, हवा में ही एक पैर नीचे की ओर मारा, तो रफ़्तार और बढ़ गई। और आखिरकार मैंने बस पकड़ ही ली, यह और बात थी कि मुझे सबसे पीछे वाली सीट मिली। बस में बैठते ही ख़याल आया कि बाबा तो बीते साल ही देह त्याग गए थे। तभी बस की आगे की किसी सीट से एक अस्पष्ट आवाज़ सुनाई दी। साफ़ सुनने की कोशिश कर ही रहा था कि लगा जैसे कोई मुझे झकझोर रहा है, "आज तुम्हारी बारी है चाय बनाने की, अरमान, अब उठो भी।"

यह महक थी, मेरी जीवनसाथी। यानि आज फिर मैं सुबह तक अजीबो-गरीब सपना देख रहा था।

चाय-नाश्ता बनाते-बनाते साढ़े नौ बज चुके थे। लेकिन चूँकि ऑफ़िस की भाग-दौड़ आजकल हमारी दिनचर्या का हिस्सा नहीं थी, इसलिए हड़बड़ी भी छुट्टी पर थी। दरअसल, बारह दिन पहले मेरा और महक दोनों का अमेरिका का वीज़ा समाप्त हो चुका था और हम तीस दिनों के ग्रेस पीरियड में चल रहे थे। ग्रेस पीरियड माने, वीज़ा समाप्त होने से अगले तीस दिन की अवधि तक हम इस देश में रह तो सकते थे, अगले वीज़ा के लिए आवेदन भी कर सकते थे, मगर काम नहीं कर सकते थे। हमें अमेरिका के एक छोटे शहर में रहते और काम करते वैसे तो पाँच साल बीत चुके थे, लेकिन जीवन में स्थायित्व अभी भी नहीं आया था। इतने समय बाद भी सिर्फ़ एक महीने अवैतनिक रहना कई मानसिक और आर्थिक समस्याओं को पैदा कर रहा था। हालात ऐसे थे कि उस वक़्त हमारे कन्धों पर दोनों ही परिवारों के कुल सात-आठ जनों के पालन-पोषण की ज़िम्मेदारी थी और ऐसे में नौकरी का बना रहना और भी ज़रूरी हो जाता था।

'दूर के ढोल सुहावने होना' जैसे कई मुहावरे हैं, जिनको हम जिस उम्र में पढ़ते हैं, उसमें उनके व्यावहारिक अर्थ समझ नहीं आते, बहुत बाद में समझ आते हैं। जो समस्याएँ मुँह बाये खड़ी थीं, उनमें सबसे बड़ी थी 'अनिश्चितता' की। कहने को वर्तमान वीज़ा की समाप्ति से लगभग दस महीने पहले से ही हमने अगले वीज़ा के लिए तैयारी आरम्भ कर दी थी, लेकिन जिस विश्वविद्यालय में हम थे, उसके मानव संसाधन और अंतरराष्ट्रीय सम्बंध विभाग के लिए इतना समय भी पर्याप्त नहीं था।

चाय पीते हुए मैं एक-बारगी बीते दस महीनों में बने उन कारणों की तलाश कर लेना चाहता था, जिनके कारण हम आज इस स्थिति में थे। ठीक वैसे ही जैसे किसी का सही इलाज तभी हो पाता है जब बीमारी की सही पहचान हो सके। इससे पहले कि बीते समय के दरिया में उतर पाता, फ़ोन पर मार्क का सन्देश प्रकट हुआ, "सुप्रभात अरमान, मैं अगले पंद्रह मिनट में अपने घर से निकलूँगा। क्या

हम स्टारबक्स चलें या कहीं वॉक पर?"

मार्क का आज मिलने आना पूर्वनियोजित था, पर चूँकि आज किसी भी समय वीज़ा-आवेदन के लिए एटॉर्नी/वकील का बुलावा आ सकता था, इसलिए मैंने अपने घर पर ही कॉफ़ी के लिए हामी भर दी। वैसे भी मार्क का मकसद सिर्फ़ इतना था कि हम आधे-पौन घंटे के लिए मिलकर अपने सुख-दुख बाँट सकें। इस विकसित महाद्वीप पर अच्छे दोस्त मिलना आसान नहीं होता।

मार्क और उनकी पत्नी शार्लेट, वे दोस्त थे, जिनसे मिलकर मुझे अपनी मुश्किलें हल्की भी लगने लगती थीं और कई बार उनसे निकलने का रास्ता या कम-से-कम हौसला तो मिल ही जाता था। वैसे तो मार्क उम्र में मुझसे कम-से-कम पच्चीस साल बड़े होंगे, मगर उनसे बचपन के किसी दोस्त सरीखा रिश्ता था। उन दोनों से मुलाकात भी अभी तीन साल पहले हुई थी, जब न्यूयॉर्क से लौटते समय फ़्लाइट में उनकी सीट ठीक मेरे बगल में थी और बैठते ही मार्क ने पूछा था कि, "क्या आप भारतीय हैं?"

पूछे गए सवाल का तरीका बिना बताए ही भारतीयों के लिए उनके मन में सम्मान और उनके भद्र व्यक्तित्व के बारे में बता रहा था। फिर मेरे जवाब से शुरू हुआ वह सिलसिला सुदूर देश में एक परिवार-जन या घनिष्ठ मित्र से संवाद के रूप में अब तक जारी था।

शार्लेट एक चर्चित लेखिका थी और मार्क एक एटॉर्नी और कुछ समय पहले ही दोनों एक महीने के भारत-प्रवास से लौटे थे। उनका भारत से लगाव एक आई.आई.टी. में शार्लेट के अतिथि प्रोफ़ेसर होने के कारण भी था, इसीलिए उन्हें साल में एक-दो बार तो वहाँ जाना ही होता था।

जब हम मिले थे, तब न उनके जीवन में आज के जैसी उथल-पुथल थी और न हमारे में ही। तटस्थ होकर देखने पर जीवन-मरण के प्रश्न जीवनयापन के सवालों के आगे मुश्किल लगते हैं, लेकिन जब खुद पर आ बनती है, तो भारी वही लगता है, जो सामने होता है, भले ही भूतकाल के खाते में जाते ही वे सब के सब राई के समान हो जाते हों। मगर हम एक-दूसरे की परेशानियाँ जानने से पहले भारत और अमेरिका की संस्कृतियों को समझने में विश्वास रखते थे।

मार्क और शार्लेट का घर हमारे अमेरिकी पते से सिर्फ़ पौने पाँच मील की दूरी पर था, जिसे यहाँ की भाषा में कहें, तो सिर्फ़ बारह-पंद्रह मिनट की दूरी पर। इसी साल मई के आख़िरी दिनों में से कोई दिन था, जब एक पार्क में मेरे साथ टहलते हुए मार्क बहुत खुश होकर बता रहे थे कि कैसे अपनी तरुणाई के दिनों में वे पहली बार शार्लेट से हार्वर्ड विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में मिले थे। उस वक़्त उनके चेहरे का भाव इस मान्यता को पुख्ता करता था कि किसी भी देश, धर्म, भाषा, संस्कृति और सभ्यता का व्यक्ति हो, उसमें प्रेम की अनुभूति और मौन अभिव्यक्ति एक-सी होती है। सात सालों तक प्रेमी-प्रेमिका रहने के बाद दोनों ने एक-दूसरे को जीवन-भर का साथी चुन लिया था। तब से अब तक दोनों ने समय के हर क्षण पर साथ-साथ ही हस्ताक्षर किए।

उस दिन सुबह ग्यारह बजे का समय था और शहर से थोड़ा दूर होने के कारण उस पार्क में बहुत कम लोग थे, जो थे वे हैलो-हाय करते हुए दौड़ते या तेज़ चलते हुए निकले जा रहे थे। वे बहुत खुश होकर बता रहे थे कि शार्लेट अपने नए उपन्यास पर काम कर रही है और इस बार भारत जाने से पहले उसे पूरा कर लेना चाहती है। उसी समय मार्क को एक फ़ोन आया, तो वे तनिक धीमी और उदास आवाज़ में बात करने लगे और फ़ोन काटते ही फफक-फफककर रो पड़े। कुछ क्षण पूर्व वहाँ जो उल्लास था, वह अब पूरी तरह नदारद था। पहले तो मेरी समझ में कुछ नहीं आया, पर

थोड़ा सम्हलते हुए मैंने उन्हें कंधे का सहारा दिया और पास ही एक बेंच पर बिठा दिया। दुख और सघन हो गया। थोड़ी देर तक वे मेरे कंधे पर सर रखे रहे फिर बोले, "शार्लेट का साथ कब तक है, कुछ पता नहीं, उसे लास्ट स्टेज कैंसर है। कैंसर की कोशिकाएँ मेटास्टेसाइज़ होकर शरीर के दूसरे अंगों में फैलनी शुरू हो गई हैं। डॉक्टर ने कीमो और रेडिओथेरेपी साथ में शुरू करने के लिए कहा है, उसी के लिए फ़ोन था। विशेषज्ञ डॉक्टर भी भारतीय मूल के ही हैं। मुझे कल अस्पताल जाकर कीमो की पहली खुराक लानी होगी।"

मेरे लिए भी यह बहुत दुखद और चौंका देने वाला खुलासा था। देर तक कुछ कहते नहीं बना, फिर उन्हें दिलासा देने की कोशिश की, "मार्क यह मेरे लिए भी बहुत शॉकिंग खबर है और मुझे नहीं मालूम कि कैसे आपका दुख बाँटूँ। मगर आपको या शार्लेट को जब भी किसी चीज़ की ज़रूरत लगे, तो मुझे परिवार का सदस्य मानकर एक बार बताएँ ज़रूर। मैं पूरी कोशिश करूँगा कि आपका दुख कम कर सकूँ।"

"मैं हृदय से तुम्हारा कृतज्ञ हूँ अरमान। तुम बिलकुल मेरे बेटे के जैसे हो और मेरे परिवार का हिस्सा हो।" उन्होंने संयत होते हुए कहा।

उनका विश्वास अब मेरे लिए भी एक नई ज़िम्मेदारी थी, मैंने कहा, "धन्यवाद तो मुझे कहना चाहिए मार्क कि आपने मुझे इतना मान दिया। अगर आपको कभी लगे कि दवा लाने या किसी भी काम के लिए मैं आपकी जगह जा सकता हूँ, तो मुझे सिर्फ़ सूचित कर दें।"

लौटते समय मार्क माफ़ी माँगने लगे कि वे अपने दुख पर नियंत्रण नहीं रख सके, पर शायद उन्हें मेरे शब्दों से कुछ सम्बल मिला। वे कहते हैं न कि, "आप जिसके साथ हँसे हों, उसे तो भूल सकते हैं, मगर उसे नहीं जिसके साथ रोए हों।", सो उस दिन के बाद हमारी घनिष्ठता और भी बढ़ गई। कभी फ़ोन कॉल द्वारा, तो कभी संदेशों से, हर दूसरे-तीसरे दिन हम एक-दूसरे के परिवारों के हालचाल ले लेते।

उधर शार्लेट की कीमोथेरेपी शुरू हुई और इधर हमने एच.वन.बी. वीज़ा के लिए आवश्यक दस्तावेज़ इकट्ठा कर विश्वविद्यालय को सूचित कर दिया, ताकि वे नए वेतन के निर्धारण के लिए श्रम मंत्रालय में आवेदन भेज सकें। सारे कागज़ तैयार करने में मानव संसाधन विभाग ने समय भले ही लगा दिया हो, मगर तब भी हमें यह उम्मीद थी कि तीन से चार महीनों में वेतन निर्धारण हो जाएगा और उसके आते ही कुछ दिनों में अकादमिक एच.वन.बी. के लिए आवेदन कर दिया जाएगा।

इस दौरान बीच-बीच में कई बार मार्क और शार्लेट से मुलाकातें होती रहीं, कभी समर पार्टी के बहाने, तो कभी दशहरे-दीवाली के या नई किताब या संग्रह पर चर्चा के बहाने। शार्लेट ने अपना नया उपन्यास एक तिहाई से अधिक तैयार कर लिया था, दूसरी तरफ़ उन पर इलाज का कुछ असर तो था, लेकिन कीमोथेरेपी के दुष्प्रभाव से उनके बाल भी झड़ते जा रहे थे। सिर पर जहाँ पहले घने बाल हुआ करते थे, वहाँ अब एक मलमल जैसा पतला कपड़ा बँधा रहता। चूँकि केशों को विश्व की हर स्त्री सौंदर्य का सबसे विशिष्ट अंग मानती है, सो मुझे लगा था कि यह समय उनके लिए बहुत मुश्किल होगा। कारण चाहे उनका एक लेखक होना रहा हो, एक व्यावहारिक व्यक्ति होना या हर हाल में साथ देने वाले पति का संग, शार्लेट जब भी दिखती, मज़बूत ही लगती। बेचैनी, जी मचलना और भूख न लगने जैसे दूसरे दुष्प्रभावों से लड़ते हुए उन्होंने उपन्यास जल्दी पूर्ण करने के लिए पूरा ध्यान लेखन पर ही लगा दिया था।

इस ओर वेतन निर्धारण के लिए भेजी गई हमारी फ़ाइल को जैसे-जैसे साढ़े तीन महीने से ऊपर हो रहे थे, हमारा तनाव बढ़ता जा रहा था,

साँसें अटकी हुई-सी थीं। जब कभी कोई जानने वाला बताता कि विश्वविद्यालय में किसी अन्य की चूक से उनको दोबारा सारी प्रक्रिया से गुज़रना पड़ा और चार महीने अतिरिक्त खर्च हुए, तो हम यही मनाते कि "काश ये सारी बातें हमारे मामले में झूठी साबित हों।" पर मन में एक संशय हमेशा बना रहता। न चाहकर भी इस परीक्षा की घड़ी में एक भय घर करने लगा कि सभी जो हमें कहते हैं कि "तेरी किस्मत ही ऐसी है कि ऊँट पर बैठे होने पर भी कुत्ता काट लेता है" तो कहीं वे ही सही तो नहीं।

एक दिन शाम को मार्क का सन्देश आया कि "मैं कई दिन से तुम दोनों की परेशानियों के बारे में सोच रहा था और बात करना चाह रहा था। क्या वीज़ा के लिए आवेदन हो सका? या हमारे लायक कोई काम हो, तो बेहिचक कहें। साथ ही बताएँ कि क्या कल मिल सकते हैं?"

अगले दिन मैं कुछ विशेष भारतीय व्यंजन बनाने वाला था, तो मैंने उन्हें और शार्लेट को घर पर ही आमंत्रित कर लिया।

अगले दिन शार्लेट अस्वस्थता के चलते नहीं आ सकी, पर मार्क ने हमारे लिए अदरक की एक ख़ास आइस-क्रीम बनाई थी, तो वे थोड़े समय के लिए घर पर आए। निराश करने वाली खबर यह थी कि कीमो ड्रग काम नहीं कर रहा था और डॉक्टर ने दो सप्ताह और देखने के लिए कहा था, वरना फिर कोई दूसरा तरीका ढूँढा जाना था। खराब स्वास्थ्य के चलते इस साल उन्होंने भारत-प्रवास निरस्त कर दिया था। हाँ, एक अच्छा समाचार भी था कि शार्लेट का उपन्यास पूरा हो गया था और अब वह प्रकाशक के पास था।

अक्टूबर ख़त्म हो चुका था और फ़सल कटने के त्यौहार, हैलोवीन के साथ-साथ हॉलिडे सीज़न आरम्भ हो गया था। हॉलिडे शब्द वैसे तो मन में उत्साह भर देता है, लेकिन इस बार हमारे लिए यह मुसीबतों में बढ़ोतरी करने वाला हो सकता था। घोंघागति से काम करने वाला अमेरिकी लिपिकवर्ग हॉलिडे के मौसम में निष्क्रिय-सा हो जाता है। अंततः एक सौ बाईस दिन पूरे होने के बाद वेतन निर्धारित होकर आ गया। होना तो यह था कि हम खुश होते, मगर हुआ ये कि सारे उत्साह पर पानी फिर गया, जब मालूम हुआ कि हमारा भय सही निकला। कीं गई दुआएँ बेअसर रहीं और विश्वविद्यालय या सरकारी तंत्र में किसी की गलती से वेतन निर्धारण के समय किसी और का विषय-कोड हमारे आवेदन में डाल दिया गया था। फलतः वेतन इतना अधिक निर्धारित हुआ कि जितना अमेरिका में कोई विश्वविद्यालय नहीं दे सकता था। अब इस वेतन के साथ एच.वन.बी. के लिए आवेदन नहीं किया जा सकता था।

मानव संसाधन विभाग व अंतरराष्ट्रीय मामलों के कार्यालय ने भी अपना पल्ला झाड़ते हुए कह दिया कि गलती उनकी तरफ़ से नहीं हुई है और दोबारा आवेदन किया जाए। 'फिर से आवेदन कीजिए' कहना तो आसान था, पर पुनः आवेदन का अर्थ था कि एक बार फिर लगभग एक सौ बीस दिन लम्बी प्रतीक्षा, जबकि वीज़ा समाप्ति के लिए दिन शेष थे दस। उन दस दिनों में से भी छह दिन सप्ताहांत और थैंक्सगिविंग एवं ब्लैक फ़्राइडे की छुट्टियों में निकल जाने थे। बचे हुए चार दिनों में कुछ भी हो पाना नामुमकिन था।

एक बार फिर हमारी भाग-दौड़ शुरू हो गई। एक मित्र ने बताया कि पास के ही शहर में उनके कोई रिश्तेदार ख्यात इमीग्रेशन एटॉर्नी हैं। उम्मीद का दामन छोड़ना हमारे हक़ में नहीं होता, सो उन से सलाह माँगी गई। उन्होंने ही बताया था कि हमारे वीज़ा के समाप्त होने के तीस दिन बाद तक हम अमेरिका में रह सकते थे और यदि उस समय में नया आवेदन डाल दिया जाए, तो निर्णय आने तक इस देश में रुक सकते थे। अगर निर्णय सकारात्मक रहता, तब तो फिर वापस लौटने की

आवश्यकता थी ही नहीं।

कई दोस्तों ने अपने-अपने स्तर पर हल निकालने की कोशिश की, मार्क ने एक परिचित सांसद से निवेदन किया कि यदि उसके हस्तक्षेप से पुनः वेतन निर्धारण एक-दो सप्ताह में हो सके, तो कुछ उम्मीद हो सकती है। पर नतीजा ढाक के पत्तों से पूरी तरह प्रेरित था। सांसद अपने देश के सरकारी तंत्र को कुछ कह नहीं सकता था, विशेष रूप से तब, जब फ़ाइल कई हाथों से गुज़री हो और यह पता ही न हो कि दोषी था कौन।

बंद पलकों के नीचे टहलते किसी सपने के टूटने पर पल भर की कसक होती है, लेकिन खुली पलकों के सामने एक-एक डग भरकर पलता कोई सपना जब अचानक मरता है, तब वह ज़िंदगी के बचे हुए पलों को अधमरा कर जाता है। हमारे दिन-रात भी लगातार मुश्किल होते जा रहे थे। भारत में हमारे घर में छोटे भाई और एक छोटी बहन की शादी थी और जिस दिन घर में मंगलगान चल रहे थे, ऐन उसी समय हम वीज़ा आवेदन के लिए एटॉर्नी के कार्यालय के चक्कर लगा रहे थे।

ऐसे में एक आखिरी उम्मीद जो बची थी, वह ओ वन वीज़ा के आवेदन से थी, वह वीज़ा, जो अपने क्षेत्र में असाधारण कार्य करने वाले लोगों को ही दिया जाता था। हालाँकि उसके लिए जो योग्यता चाहिए थी वह हमारे पास थी, लेकिन अब सिर्फ़ चौदह दिन हाथ में थे। जिनमें भी सप्ताहांत और क्रिसमस की लम्बी छुट्टियाँ आने वाली थीं। सबसे बड़ी चुनौती थी अपने क्षेत्र के सात-आठ ऐसे दिग्गजों से अनुशंसा-पत्र प्राप्त करना, जो आपको व्यक्तिगत रूप से न जानते हों।

अपने क्षेत्र के कितने ही शीर्ष व्यक्तियों को ईमेल भेजे, दिन-रात एक कर दिए, तब किसी तरह दस दिन में सारे अनुशंसा-पत्र मिले। पर अभी आगे का सफ़र बाकी था, कार्यालय के एक लिपिक या अधिकारी में से किसी की मामूली गलती ने एक सप्ताह और गला दिया।

बीते हुए का हिसाब करते हुए, मैं भूल ही गया था कि थोड़ी देर पहले मार्क को हमारे घर आने के लिए सन्देश भेजा था। तभी मार्क का फ़ोन आया, "हेलो अरमान, आई एम सो सॉरी, मैं फिर से तुम्हारी बिल्डिंग के प्रवेशद्वार का कोड भूल गया।"

मैं बाहर निकलकर उन्हें भीतर ले आया। आते ही उन्होंने मुझे गले से लगा लिया। उन्होंने बताया कि "डॉक्टर का कहना है, शार्लेट का ड्रग और एक बार बदलना होगा। आने वाला समय दर्द और तकलीफ़ से भरा हो सकता है। किताब को भी प्रकाशक समय से प्रकाशित नहीं कर पा रहा।"

उन्हें घर में लाकर मैंने बैठक में बिठाया और कुछ देर के लिए खुद भी चुप हो गया।

मैं अब एक बार फिर सो जाना चाहता हूँ, सपने यथार्थ से सुन्दर लगने लगे हैं। उनमें मैं जो चाहता हूँ, वह देख तो सकता हूँ। सुबह के किसी स्वप्न में मैं देखना चाहता हूँ कि अंततः आवेदन छुट्टियाँ शुरू होने से एक सप्ताह पहले हो गया और दो दिन बाद आवेदन प्राप्ति की सूचना मिली। नए वर्ष में कदम रखने और ग्रेस पीरियड के ख़त्म होने से पहले ही नया वीज़ा स्वीकृत हो गया।

मैं देखना चाहता हूँ कि मेरे फ़ोन पर मार्क का सन्देश आया कि डॉक्टर के अनुसार नया ड्रग काम कर रहा है, शार्लेट का नया उपन्यास प्रकाशित हो चुका है और वे दोनों एक-दूसरे का हाथ थामे फिर से किसी भारतीय प्रसिद्ध स्मारक के आसपास टहल रहे हैं। मुझे ख़्वाब में देखना है कि हम सबका इस दुनिया के प्रति भरोसा बढ़ गया है। मैं नहीं चाहता कि सपने में किसी की भी बस छूटे।

mashal.com@gmail.com

आघात

- श्री मनोहर पुरी
बाली

अभी मैं पार्क में प्रवेश करने ही वाला था कि 'नमस्ते' का मधुर परंतु कंपकपाता स्वर सुनकर चौंक पड़ा। लगभग एक वर्ष के बाद विदेश में किसी सार्वजनिक स्थान पर हिंदी संबोधन सुनाई दिया था। यहाँ तो कोई हिंदी नहीं जानता फिर यह संबोधन किस ने किया होगा, इस उत्सुकता से मैं ठिठककर दाएँ-बाएँ देखने लगा, परंतु वह तो मेरे सामने ही खड़ा था। उभरी नसों से भरे हाथ में झाड़ू लिए हुए एक बूढ़ा शरीर। मुझे देखकर उसके चेहरे पर एक हल्की-सी मुस्कान तैर गई थी, परंतु मेरी दृष्टि का सामना न करने के कारण उसने न केवल अपनी नज़रें झुका ली थीं, बल्कि गर्दन भी नीचे लटका ली थी। जैसी भारत में कुँवारी कन्याएँ संभावित वर पक्ष के लोगों को देखकर झुका लिया करती हैं। उसके हाथ झाड़ू के हत्थे को सहला रहे थे। मैंने उससे बात करने का प्रयास किया, परंतु उसने सिर नहीं उठाया। कुछ लोगों की घूरतीं आँखों से बचने के लिए मैं अधिक देर तक वहाँ खड़ा नहीं रह पाया और आगे बढ़ गया।

विचित्र-सा तेज लिए हुए उसका चेहरा मेरी आँखों के सामने से ओझल नहीं हो रहा था। सिर पर उसने एक अजीब-सा गंदा और फटा हैट पहना था, जो उसके मुख-मंडल की आभा को पूरी तरह से ढक नहीं पा रहा था। उसके चेहरे पर इतने अधिक मिश्रित भाव थे कि किसी दक्ष मनोवैज्ञानिक के लिए भी उन्हें पढ़ पाना संभव दिखाई नहीं देता था। मेरे पाँव स्वत: ही उस पार्क की परिक्रमा कर रहे थे और हाथ आने-जाने वालों के अभिवादनों का उत्तर दे रहे थे। मेरा मस्तिष्क शायद वहीं पीछे छूट गया था। मेरा मन यह मानने के लिए तैयार ही नहीं था कि वह कोई साधारण सफ़ाई कर्मचारी होगा। शायद किसी भारतीय को इंडोनेशिया के इस सुन्दर द्वीप बाली के इस भाग में इस प्रकार देखना मेरी कल्पना से परे था। परंतु कुछ तो था, जो मैं समझ नहीं पा रहा था। मन पर उदासी छाने लगी थी। मैं प्रात: भ्रमण अधूरा छोड़कर घर लौट आया था। मेरी पत्नी समय से पूर्व मुझे आया देखकर चिंतित हो उठी। उसे लगा शायद मेरी तबियत खराब हो गई है। उम्र के इस पड़ाव पर कई प्रकार की आशंकाएँ मन में घर करने लगती हैं। वह सोर्बिट्रेट की एक गोली हाथ में लिए मेरे सामने उपस्थित हो गई। बोली "इसे जीभ के नीचे रख लो और लेट जाओ सब ठीक हो जाएगा।"

मैंने उत्तर दिया, "ऐसी कोई बात नहीं है। मैं बिल्कुल ठीक हूँ, बस मन थोड़ा-सा खिन्न हो गया है। तुम चाय बनाओ, बताता हूँ कि मैंने क्या देखा।" उत्सुकता मन में दबाए वह चाय बनाने के लिए रसोई में चली गई।

सुबह मेरे साथ सैर करने वाला एक वृद्ध पड़ोसी गौतम, जिसे सब पुत्तू कहकर बुलाते हैं, चला आया। आम तौर पर बाली में लोग भारतीयों की तरह यूँ ही बिना औपचारिकता के किसी के घर नहीं जाते, परंतु गौतम की बात कुछ और थी। वह उच्च शिक्षा के लिए एक लंबा समय भारत में व्यतीत कर चुका था, इसलिए भारतीयों के प्रति वह अपना स्वयं पर ओढ़ा दायित्व समझता था। वह बहुत अच्छी अंग्रेज़ी ही नहीं, हिंदी भी बोलता और समझता था। गौतम नाम से भ्रमित हो उसे भारतीय नहीं समझ लिया जाना चाहिए। बाली में अनेक लोगों के नाम भारतीय नामों सरीखे ही होते हैं। अनेक मुस्लिम भी अपने नाम हिंदुओं जैसे ही रखते हैं। नाम केवल धर्म आधारित होते हैं, नामों में कुछ

भेद-भाव होता है, यह उन्हें ज्ञात ही नहीं। किसी भी हिंदू देवी-देवता अथवा फ़िल्मी हीरो पर बच्चों का नामकरण कर देना आम बात है। भारतीय हिंदी फ़िल्मों से यहाँ के लोग बहुत प्रभावित रहते हैं। बाली एक हिंदू बाहुल द्वीप है, परंतु यहाँ के हिंदू मॉरीशस, फ़िजी अथवा सूरीनाम मूल के नहीं हैं। वे विशुद्ध यहीं के मूल निवासी हैं और हिंदू धर्म का पालन करते हैं, शायद भारतीय हिंदुओं से कुछ अधिक ही। इस्लाम धर्म को मानने वालों में भी कोई कट्टरता दिखाई नहीं देती। उन्हें भी रामायण और गीता से उतना ही प्यार है, जितना किसी भारतीय को।

गौतम ने पूछा "क्या बात है, जल्दी चले आए? कुछ गपशप की बैठक भी नहीं जमी।"

"कुछ नहीं पार्क में एक भारतीय सफ़ाई कर्मचारी को देखकर मन उद्विग्न हो गया था। उसका ख़याल बार-बार मन में आता रहा।"

"अरे वह कोई सफ़ाई कर्मचारी नहीं है, अवश्य ही डॉ. रोशन सिंह होगा, वनस्पति शास्त्र का प्रकांड पंडित। पुत्तू इज़ ए ग्रेट गाई, माई बड्डी। बचपन का यार है अपना।" उसने बिना कोई आश्चर्य व्यक्त किए उत्तर दिया।

मैं समझ गया वह अपने माता-पिता की प्रथम संतान होगी। यहाँ पर पहली संतान को पुत्तू अथवा गेडे कहकर बुलाया जाता है। इसी प्रकार गादे अथवा नयमन दूसरी, कोमाँग तीसरी और वायान संबोधन चौथी संतान के लिए हैं। पाँचवी संतान पुन: पुत्तू ही कहलाती है। संबोधन में 'नी' लड़की और 'ई' शब्द का लड़के के लिए प्रयोग किया जाता है।

"इस पार्क को छोड़कर वह कहीं नहीं जाता। वनस्पति शास्त्र का बहुत बड़ा ज्ञाता रहा है वह। यहाँ के सबसे प्रसिद्ध विश्वविद्यालय में हम लोग साथ-साथ ही पढ़ाया करते थे। इस पार्क में अनेक ऐसी दुर्लभ जातियों के वृक्ष हैं, जो कि समाप्ति के कगार पर थे। न जाने कहाँ-कहाँ से खोजकर अनेक लुप्तप्राय पेड़-पौधों का रोपण उसने इस पार्क में करवाया है। न केवल वृक्षारोपण करवाया, बल्कि उन्हें जीवित भी रखा। आपने देखा होगा कि यह पार्क अनेक दुर्लभ पेड़-पौधों का एक विश्व प्रसिद्ध संग्राहलय बन गया है।"

"फिर उसकी यह हालत कैसे हुई?" मेरा स्वाभाविक प्रश्न था।

"एक लंबी दुखभरी कहानी रहा है, उसका जीवन।" गौतम बोला और जैसे भविष्य के काले सायों में से कुछ खोजने लगा हो।

फिर बोला "विश्वविद्यालय में हम दोनों वनस्पति शास्त्र पढ़ाया करते थे। बहुत ही मृदुभाषी और अपने काम से काम रखने वाला रहा है वह। पुत्तू के पिता सरदार मेहर सिंह दूसरे विश्व युद्ध में अंग्रेज़ी सेना की ओर से यहाँ भेजे गए थे। वे लम्बे चौड़े बलिष्ठ शरीर के सुन्दर नवयुवक थे। उन्हें बलात सेना में भर्ती कर लिया गया। इसलिए अवसर मिलते ही वे कुछ अन्य सैनिक साथियों के सहित भाग खड़े हुए और न जाने कहाँ-कहाँ होते हुए बाली के इस सुन्दर द्वीप में आ बसे। यहाँ की एक स्थानीय धनाढ्य परिवार की कन्या से विवाह करके अपना भूतकाल भुलाने का प्रयास करने लगे। सेना से भागने के कारण भारत जाने के रास्ते बंद हो चुके थे। माता-पिता की इकलौती संतान होने के कारण बार-बार भारत जाने को उनका मन तड़पता, परंतु मन मसोसकर रह जाते। इस बीच उनके जीवन में पुत्तू आ गया, तो उनका मन यहाँ रमने लगा। युद्ध समाप्ति के बाद भारत में स्वतंत्रता का आन्दोलन ज़ोर पकड़ने लगा। अंग्रेज़ों के प्रति उनके मन में जमा हुआ आक्रोश उन्हें बेचैन करने लगा। बूढ़े माता-पिता की याद भी सताने लगी और वह पाँच वर्ष के रोशन को उसके दादा-दादी से मिलाने के लिए भारत-यात्रा पर निकल पड़े। एक जमा-जमाया कारोबार था। उसकी देख-रेख के लिए उनकी पत्नी ईरावती और उसके परिवार के अन्य

सदस्य थे ही। वैसे भी बाली में अधिकांश व्यवसाय महिलाओं की देख-रेख में ही चलते हैं। अभी तक संयुक्त परिवार होने के कारण परिवार के अन्य सदस्यों का सहयोग सहज ही प्राप्त हो जाता है।"

"भारत में रहकर अपने माता-पिता और खेत-खलिहानों की देखभाल करें अथवा माँ-बाप को साथ लेकर बाली में बस जाएँ। जीवनयापन के दोनों ही स्थानों पर कोई समस्या नहीं थी। इसी ऊहापोह में दो वर्ष निकल गए। दिन प्रतिदिन भारत की हालत बिगड़ने लगी थी। एक ओर अंग्रेज़ों के अत्याचार बढ़ रहे थे, दूसरी ओर स्वतंत्रता का आन्दोलन तेज़ी पकड़ने लगा था। अंग्रेज़ों पर नरम-पंथियों के दबाव के साथ-साथ क्रांतिकारियों का भय अपना प्रभाव दिखाने लगा था। व्यक्तिगत रूप में अंग्रेज़ अधिकारियों को अपनी और अपने परिवार की सुरक्षा का डर सता रहा था। मुस्लिम लीग विभाजन की माँग करने लगी थी। चारों ओर तनाव का वातावरण था। इसी बीच इंडोनेशिया ने अपने आपको 350 वर्ष के विदेशी शासन से स्वतंत्र करवा लिया। सन् 1946 में डचों की अधीनता को नकारते हुए इंडोनेशिया ने अपने आपको स्वतंत्र राष्ट्र घोषित कर दिया। लगभग 350 वर्ष तक इंडोनेशिया पुर्तगाल, ब्रिटेन और नीदरलैंड के अत्याचार सहता रहा था।"

"आप तो मुझ से अधिक जानते होंगे कि 15 अगस्त सन् 1947 को भारत को दो टुकड़ों के रूप में स्वतंत्रता मिली। पाकिस्तान नामक एक पृथक देश बना दिया गया। भारत की धरती लहूलुहान हो उठी। पंजाब जो सदियों से लूट-पाट और खून-खराबे से अभिशप्त था, एक बार फिर रक्त-रंजित हो उठा। लूट, मार-काट और नरसंहार के मध्य मेहर सिंह जी के पास रातों-रात अपना घर-द्वार छोड़कर जान बचाने के अतिरिक्त कोई चारा ही नहीं था। जब उनका घर आग के हवाले कर दिया गया, वे पिछले द्वार से अपने बूढ़े माता-पिता और रोशन को गोद में उठाए एक अनजान सफ़र पर निकल पड़े। उन्हीं की तरह लाखों अन्य हिंदू और सिक्ख परिवार किसी अनजानी मंज़िल की ओर कदम बढ़ाने लगे। कोई नहीं जानता था कि वह जीवित बचेगा अथवा नहीं और यदि बच गया, तो कहाँ पहुँचेगा। हालाँकि उनके पास एक ऐसी सुरक्षित जगह थी, जहाँ पहुँचकर वे चैन की साँस ले सकते थे। जहाँ उनकी पत्नी प्रतीक्षा कर रही थी। वे वहाँ तक पहुँच पाएँगे, इसकी गारेंटी नहीं थी।"

"अभी वे लोग अपने गाँव की सीमा रेखा भी पार नहीं कर पाए थे और उनके माता-पिता अपने घर-द्वार को अश्रुपूरित नेत्रों से अलविदा भी नहीं कह सके थे कि मुसलमानों की एक भीड़ ने उनपर आक्रमण कर दिया। वे रोशन को गोद में दबाए एक टूटी दीवार की ओट में जा छिपे, परंतु उनके सामने उनके माता-पिता के सिर धड़ से अलग कर दिए गए। भय से रोशन की चीख न निकले, इसलिए सरदार जी ने उसका मुँह हथेली से दबा दिया था। रोशन पहले भी कितनी लहूलुहान लाशें देख चुका था, परंतु अपने दादा-दादी की हत्या वह नहीं सह पाया और मूर्च्छित हो गया। रोशन जीवित है अथवा नहीं यह देखने का न तो उनमें साहस था और न ही समय। अपने माता-पिता के रक्त-रंजित शरीरों पर उस टोली को अमानवीय अट्टहास करते छोड़, वे छिपते हुए आगे बढ़ चले।"

गौतम एक अनुभवी किस्सागो की भाँति हर बात आँखों-देखा सुना रहा था। कुछ देर खामोश रहने के बाद, उसने मेरी ओर देखा। मैं बहुत दिलचस्पी से उसकी बात सुन रहा था। मुझे यह कहानी अपनी ही लग रही थी। मेरी माँ भी इसी तरह मुस्लिम दरिंदों द्वारा विभाजन के समय मौत के घाट उतार दी गई थी। फिर भी मैंने कहा "आप तो जैसे आँखों देखा हाल सुना रहे हों।"

"हाँ ऐसा ही समझ लो। मैं और रोशन बचपन से एक साथ ही पले-बढ़े हैं। एक ही साथ शिक्षा

पाई और एक ही साथ नौकरी भी की। मेहर सिंह जी न तो केश रखते थे, न ही पगड़ी बाँधते थे, फिर भी सब उन्हें सरदार जी ही कहते थे। उन्हीं की कृपा से मुझे रोशन के साथ भारत में पढ़ाई करने का अवसर मिला। बचपन से न जाने यह दर्दभरी दास्तान मैंने कितनी बार सुनी है। परंतु यह तो रोशन के जीवन की भयानक कहानी का प्रारंभ है, अंत तो और भी अधिक भयानक है, जिसे सुनकर किसी का भी कलेजा काँप उठता है।"

कुछ दूर बैठी उदासीन भाव से हमारी बातचीत सुनने वाली मेरी पत्नी भी इसमें रुचि लेने लगी और कुर्सी खींचकर समीप आ बैठी।

"न जाने कितनी ही यातनाएँ सहते और कठिनाइयों का सामना करते हुए दोनों बाप-बेटे बाली पहुँचे, यह एक लंबी कहानी है। यहाँ पहुँचकर उन्होंने सुख की साँस ली और जीवन को व्यवस्थित करने में लग गए। रोशन की पढ़ाई प्रारंभ हो गई और हमारी दोस्ती परवान चढ़ने लगी। स्कूली शिक्षा के बाद सरदार जी ने हम दोनों को उच्च शिक्षा के लिए भारत भेजा। वहाँ से हम वनस्पति शास्त्र में एम.ए. करके लौटे। रोशन ने यहीं आकर कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय से पी.एच.डी. करने का निश्चय किया।"

"पी.एच.डी. के दौरान इंग्लैंड में उसकी भेंट गुरमीत कौर से हुई और वह उसे दिल दे बैठा। दोनों विवाह करके ही बाली लौटे। आते ही उसे विश्वविद्यालय में नौकरी मिल गई। मेरी नियुक्ति अभी वहाँ हुई ही थी। सारा परिवार बहुत प्रसन्न था, परंतु भाग्य में कुछ और ही लिखा था।"

"अभी रोशन को बाली लौटे कुछ ही दिन हुए थे कि इंडोनेशिया में राष्ट्रपति सुकर्णो के विरोध में आन्दोलन उठ खड़ा हुआ और शीघ्र ही उसने विकराल रूप धारण कर लिया। सेना के एक बड़े भाग ने विद्रोह कर दिया और राष्ट्रपति सुकर्णो के समर्थकों को चुन-चुनकर मारा जाने लगा। सन् 1965 के अंतिम महिनों में स्थिति बेकाबू हो गई और चारों ओर कत्ले-आम होने लगा। राजधानी जकार्ता से भड़की हत्या की आग जल्दी ही मध्य-पूर्वी जावा से होती हुई बाली तक पहुँच गई। इस नर-संहार में लगभग 20 से 30 लाख लोगों के मारे जाने का अनुमान है। इतिहासकारों के अनुसार यह बीसवीं शताब्दी का सबसे भयंकर नरसंहार था। बाली में लगभग 80,000 लोग मौत के घाट उतार दिए गए, जो कि उस समय बाली की आबादी का पाँच प्रतिशत था। जनसंख्या को ध्यान में रखते हुए सबसे अधिक हत्याएँ बाली में ही हुईं। इन नरसंहार के भयंकर परिणामों से रोशन भी बच नहीं पाया। सन् 1965 की उस काली रात में, जब वह अपनी नवविवाहिता के साथ गहरी निद्रा में निमग्न था, तब बाहर गोलियों और चीत्कारों की भयानक आवाज़ों को सुनकर जाग उठा। कमरे की खिड़की से ही उसने देखा कि सामने उनका स्टोर धू-धू करके जल रहा है। उसके माता-पिता अभी उसे बचाने का प्रयास कर पाते कि उन्हें गोलियों से भून दिया गया। रोशन अपनी पत्नी को लेकर एक कोने में दुबककर बैठ गया। दंगाइयों का शोर कम होने पर जब उसने बाहर देखा, तब सब समाप्त हो चुका था। स्टोर अभी तक आग की लपटों में लिपटा था और सामने सड़क पर अनेक लाशों के बीच उसके माता-पिता के लहूलुहान शरीर तड़प रहे थे।"

हमारे साथ-साथ गौतम की आँखें भी नम हो गई थीं। उसने पसीना पोंछने वाले तौलिए से आँखों को साफ़ किया और रुक गया। उसका गला रूँध गया था। मेरी पत्नी ने मेज़ पर रखे पानी का गिलास उसे थमा दिया। कुछ क्षण चुप रहने के बाद बोला, "न जाने कितनी त्रासदी लिखवाकर लाया था वह अपने भाग्य में।"

मैं हैरान था कि इससे अधिक भयानक किसी के जीवन में और क्या हो सकता है। कोई कितने आघात सह सकता है।

"धीरे-धीरे जीवन फिर से पटरी पर आने लगा। उसकी पत्नी और बूढ़े नाना-नानी मिलकर व्यापार संभालने लगे, परन्तु रोशन को उसमें कोई रुचि नहीं थी। वह तो इन सबसे दूर जंगलों में भटकता रहता और नई-नई जड़ी-बूटियों पर खोज करता रहता। उसका जीवन पेड़-पौधों तक ही सिमटकर रह गया था। कक्षा में भी वह पाठ्य-पुस्तकों से इतर ज्ञान बाँटता रहता। उसकी वाणी में एक आकर्षण था और शब्दों में इतना प्रभाव कि अन्य विषय पढ़ने वाले छात्र भी उसकी कक्षा में आकर बैठने लगे। ज्ञान बाँटने में उसने कभी कोई कंजूसी नहीं की। अपने वेतन के साथ-साथ व्यवसाय से मिलने वाली कितनी ही धनराशि वह अपने खोज-कार्यों अथवा छात्रों की पढ़ाई में सहायता करने पर व्यय कर देता था।"

"गुरमीत कौर के कुछ निकट के संबंधी अमृतसर में रहते थे, इसलिए वर्ष में एक-दो बार वे भारत की यात्रा पर निकल जाते। कभी-कभी मैं भी साथ रहता था और उनके लिए स्वर्ण मंदिर में संतान की दुआ करता था। दस वर्ष के पश्चात् सन् 1975 में उसके घर जुड़वा लड़कों का जन्म हुआ। गुरमीत बहुत प्रसन्न थी, परन्तु वह उदासीन ही रहा। उसे घर में किसी लड़की की कामना थी। उसके दादा और पिता की तरह उसकी भी कोई बहिन नहीं थी। सोचता जुड़वा ही होने थे, तो एक लड़का और लड़की ही हो जाते, परन्तु इस पर किस का वश था। सन् 1984 में हम लोग सपरिवार बच्चों की दस्तारबंदी अर्थात् पहली बार पगड़ी बाँधने की रस्म के लिए अमृतसर गए। रोशन स्वयं भी पगड़ी नहीं बाँधता था और न ही बच्चों के केश थे, फिर भी उन्हें स्वर्ण मंदिर में ले जाने की उनकी बहुत इच्छा थी।"

एक बार फिर गौतम चुप हो गया और मैं किसी अनहोनी की कथा सुनने के लिए स्वयं को तैयार करने लगा। वह अपना गला साफ़ करके बोला, "हम लोग दरबार साहिब के दर्शन करके एक-दो दिन और अमृतसर में व्यतीत करना चाहते थे, जबकि पूरा शहर बहुत ही तनावग्रस्त था। अचानक एक दिन हम ऑपरेशन ब्लू-स्टार की लपेट में आ गए। दोनों बच्चे हमारे आगे चल रहे थे कि गोलियों की बौछार से घिर गए। भाग्यवश एक निहंग ने दोनों बच्चों को अपनी गोद में समेट लिया और स्वयं उसका शरीर गोलियों से छलनी हो गया। यह देखकर रोशन वहीं मूर्च्छित हो गया और उसे कुछ मास चिकित्सा के लिए आगरा के मनोरोग चिकित्सालय में भर्ती करवाना पड़ा। उसके मस्तिष्क पर गहरा आघात लगा था। डॉक्टरों ने कहा कि अब उन्हें इससे अधिक ठीक नहीं किया जा सकता। अच्छी बात यह है कि इनके व्यवहार में किसी प्रकार की उग्रता नहीं आई, परन्तु वह आंशिक रूप से अपनी स्मरण-शक्ति गँवा चुका था। सबसे दुर्भाग्यपूर्ण बात यह है कि उसने अपने बच्चों को मरा हुआ मान लिया है। वह मेरे और गुरमीत के अतिरिक्त केवल पेड़-पौधों को ही पहचानता है।"

"दुर्भाग्य ने अभी भी हमारा पीछा नहीं छोड़ा था। एक नवम्बर 1984 को हम सुबह की उड़ान लेने के लिए कार द्वारा आगरा से निकले। हम नहीं जानते थे कि 31 अक्टूबर को भारत की प्रधान मंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी की उसके सिक्ख अंगरक्षकों ने हत्या कर दी है। अगले दिन सिक्खों के प्रति आक्रोश के कारण स्थान-स्थान पर उनकी हत्याएँ की जाने लगीं। बाद में ज्ञात हुआ कि इस नरसंहार में भी हज़ारों सिक्खों को मौत के घाट उतार दिया गया था। रास्ते में हमें कुछ स्थानों पर ऐसे दृश्य देखने को मिले थे। उनसे रोशन को बचाने के लिए हमने कार में लगे शीशों को ऊपर कर दिया था, परन्तु तब समस्या यह सामने आई कि हमारी कार को स्थान-स्थान पर रोका जाने लगा। किसी सिक्ख को भीतर न पाकर हमें जाने दिया

जाता था, परन्तु एक भय मन में बना रहा था। मैंने ड्राइवर को कहा कि इससे अच्छा है कि शीशे खुले ही रहें, ताकि हम शीघ्र-अतिशीघ्र हवाई-अड्डे पहुँच जाएँ। फलस्वरूप रास्ते भर रोशन को वे वीभत्स दृश्य देखने को मिलते रहे। वह सहमा हुआ मेरी गोद में सिर छिपाए पड़ा रहा। खैर किसी तरह से हम बाली पहुँचे, तब से रोशन की यही हालत है। वह किसी को कुछ नहीं कहता। पार्क की पत्तियाँ समेटकर उन्हें घूरता रहता है। कभी किसी पौधे अथवा पेड़ से बात करने लगता है। देर शाम तक वह यहीं रहता है। रात को हम उन्हें घर ले जाते हैं और जैसे-तैसे भोजन करवाकर उन्हें नींद का एक इंजेक्शन देकर सुला देते हैं। अब यही उसका जीवन है।" इतना कहकर गौतम मौन हो सामने की खाली दीवार को घूरने लगा। हमारा भी साहस उसका मौन भंग करने का नहीं हुआ।

purimanohar21@gmail.com

तीन पत्र

- श्रीमती अनीता बरार
ऑस्ट्रेलिया

निनी ने फ़ोन को टेबल पर रखा। काँपते हाथों से आँसू पोंछते हुए खिड़की से बाहर देखा। काले बादलों के बीच सूरज कहीं छुप गया था। दूर समुद्री लहरें उफ़ान पर थीं, जैसे रेत पर पहले पहुँचने की लालसा में लहरें एक-दूसरे के साथ होड़ में लिप्त हों। हवा का एक तेज़ झोंका आया और बाहर लॉन पर बिखरे पीले लाल पत्ते भी एक-दूसरे के पीछे भागने लगे। लॉन में अकेली बैठी चिड़िया घबराकर चीं-चीं करती पेड़ पर जा, पत्तियों में कहीं छुप गई। लहरों और हवाओं जैसा एक बवंडर निनी के मन में भी उठा था। ... "बूआ ने बात अधूरी क्यों छोड़ी?"

शरद ऋतु ठंडी हवा में कंपकंपी का एहसास हुआ। उसने खिड़की बंद कर दी। 'बूआ को मेल करती हूँ' सोचते ही लैपटॉप खोला।

मीरा बूआ का मेल पहले से ही आया था। ...

"प्रिय निनी,

फ़ोन इतनी खराब थी कि ठीक से बात नहीं हो पा रही थी। तभी डिस्कनेक्ट कर दिया। निनी, देखो इसमें कुछ भी गलत नहीं है कि नीना भाभी के जीवन में अब कोई और आ गया है। शायद वह अभी किसी को यह बताना नहीं चाहती।

कभी-कभी लगता है, जैसे कल ही की बात हो।...

मैं, माँ-बाबा, भाई राज मतलब तुम्हारे पापा, तुम और भाभी! हमारा छोटा-सा परिवार। जाने किसकी नज़र लगी... उस दिन यूनिवर्सिटी के बाद तुम्हें स्कूल से लिया था। सारे रास्ते हमारी हँसी बंद ही नहीं हो रही थी। क्या पता था कि घर पहुँचते ही हमारी दुनिया यूँ उजड़ चुकी होगी। उस दिन बाज़ार में हुआ एक बम विस्फोट और राज भैया समेत कई निर्दोष एक पल में मृत्यु की बली चढ़ गए थे। माँ-बाबा तो चलतीं-फिरतीं लाशें बन गए थे, लेकिन नीना भाभी ने ढाल बनकर हम सबको संभाल लिया। कुछ सालों बाद माँ-बाबा भी चल बसे। भाभी ने तब भी हिम्मत नहीं हारी थी।

फिर, शादी के बाद मैं नए जीवन में ढल गई और तुम भी तो स्कॉलरशिप पर पढ़ाई करने ऑस्ट्रेलिया पहुँच गई। शायद तुम सोच रही हो कि मैं पिछले 7-8 वर्षों की कहानी क्यों दोहरा रही हूँ... यह इसलिए क्योंकि हम दोनों तो अपनी लाइफ़ में बिज़ी हो गए, लेकिन भाभी का क्या? वह तो वहाँ अकेली-तनहा रह गई।

हाँ निनी, मुझे भी लगता है कि जीवन के इस मोड़ पर शायद किसी ने भाभी के दिल पर दस्तक दी है। कई बार जब मैं अचानक उनसे मिलने घर गई, तो वहाँ चाय की प्यालियाँ और आधी जली हुई सिगरेट देखी। लगता है उसने अपनी एक दुनिया बसा ली है। जानना तो चाहती हूँ, लेकिन उसकी प्राइवेसी का भी मान करती हूँ। बस भगवान से यही प्रार्थना करती हूँ कि उसने अपने लिए सही इंसान चुना हो।

निनी, उसे हमारा सपोर्ट चाहिए। तुम समझ रही हो न? उससे बात करो और बताओ कि तुम उसके साथ हो।

प्यार सहित

मीरा बूआ।"

निनी कुछ पल के लिए चुपचाप बैठी रही। फिर कुछ सोचकर ईमेल लिखने लगी।...

"प्रिय माँ

आपको कॉल करना चाह रही थी, लेकिन शायद लिखना आसान है।

माँ, सोचा था आपसे इस बारे में कोई सवाल नहीं करूँगी, लेकिन अब खुद को रोक भी नहीं पा रही हूँ।... आप जानती हैं कि इस बार छुट्टियों में घर आकर मुझे वहाँ कुछ भी अच्छा नहीं लगा था। मैं यूनिवर्सिटी जल्दी खुलने का बहाना बनाकर लौट आई। सच तो यह है कि मुझे महसूस हुआ कि आपने मुझे अपने से अलग कर दिया है। आपकी तो पूरी दुनिया मेरे चारों ओर घूमती थी। तो अब?

क्या अब मैं आपकी वह दुनिया नहीं रही?

हाँ, आपका किसी और के साथ होना... शायद मैं आसानी से स्वीकार नहीं पाती। कुछ समय लगता... लेकिन क्या मुझे यह सब जानने का अधिकार नहीं रहा? आप झुठलाने की कोशिश मत करना, क्योंकि मुझे पता है कि आपके जीवन में कोई है। माँ, मैं समझती हूँ आपके जीवन का खालीपन...वह अकेलापन...। मुझे याद है, जब एक बार दादाजी ने आपसे पुनर्विवाह करने के लिए कहा था, तो आप गुस्सा हो गई थी कि कोई यह सोच भी कैसे सकता है? आपने कहा था कि पापा की जगह कोई नहीं ले सकता। लेकिन अब...?

माँ, किसी का आपके जीवन में आ जाना गलत तो नहीं है। तो आप छुपा क्यों रही हैं?

नहीं... अब आप इससे इन्कार नहीं कर सकती।

बाथरूम में "आफ़्टर शेव लोशन की बोतल" सच बयान कर रही थी।... मैंने उसे पहचान लिया था। शायद, मेरे आने पर आप उसे हटाना भूल गई।... अपने स्कूल के दिनों से, मैंने उस आधी खाली बोतल को ड्रेसिंग टेबल पर देखा था। आपने कहा था, "यह पापा की याद है... उनकी पसंदीदा खुशबू"।

यही नहीं... जब भी पापा कहीं टूर पर जाते थे, वे शाम 6 से 7 बजे के बीच फ़ोन करते थे। पापा के जाने के बाद, आप इस समय के बीच, किसी से फ़ोन पर बात करना पसंद नहीं करती थी। फ़ोन बजता रहता था।

मेरे पूछने पर आपने कहा था कि यह शाश्वत बंधन है और इसकी गहराई समझने के लिए मैं बहुत छोटी थी। यह बात मैं इसलिए कह रही हूँ कि एक बार नहीं, बल्कि कई बार मैंने आपको इसी समय पर फ़ोन किया था और फ़ोन बिज़ी आता था। यानि कोई तो है, जिससे आप इसी समय पर बात करने लगी। सही कहा न?

माँ, मैं कोई सफ़ाई नहीं माँग रही हूँ। जानती हूँ कि सबको अपनी मर्ज़ी से जीने का अधिकार है। मैं तो बस सोच रही हूँ कि वह कौन है, जिसने इतनी जल्दी पापा की जगह ले ली? और क्या आप को पक्का यकीन है कि वह सही इन्सान है?

मैं आपको किसी के भी साथ स्वीकार कर सकती हूँ, लेकिन पता नहीं क्यों ऐसा लग रहा है, जैसे कुछ खो गया है।

माँ आपने मुझे अपने से दूर क्यों कर दिया? क्यों माँ, क्यों?

लव यू मम

निनी"

ईमेल पढ़ते-पढ़ते नीना का चेहरा पीला पड़ गया। ... "यह सब क्या हो गया? मेरी बच्ची ... निनी को फ़ोन करना होगा।"

घड़ी की ओर देखा, तो रात के साढ़े आठ बजे थे। "वहाँ तो रात का एक बजा होगा। सोयी हुई होगी।"

नीना की बेचैनी बढ़ती जा रही थी। उसने ईमेल को बार-बार पढ़ा और फिर रिप्लाई पर क्लिक किया।

"डियर निनी

मैंने यह क्या कर दिया, अनजाने में तुम्हें दुखी और निराश कर दिया। शायद भगवान भी मुझे इसके लिए माफ़ नहीं करेगा। सुबह का इंतज़ार नहीं कर पा रही। निनी बेटे तुम्हारे मन में यह क्या चल रहा था, मुझे ज़रा भी एहसाह नहीं हुआ। कैसी माँ हूँ मैं? अपने आप पर ग्लानि हो रही है। कैसे बताऊँ कि मेरी सारी दुनिया तुम्हीं से है, सिर्फ़ तुमसे। काश तुम मुझसे बात कर लेती।...

तुम मेरे जीवन में 'उस कोई' के बारे में जानना चाहती हो न? मैं बताती हूँ।

एक बार, तुम्हारे दादाजी ने मुझसे कहा था, "... अकेलापन घना और ठंडा होता है। यह अन्दर तक घर कर जाता है।" इस पर मैंने उन्हें कहा था कि सदियों से इन्सान के जीवन में उथल-पुथल होती रही है, फिर भी लोग ज़िन्दा रहते हैं, तो मैं भी रह सकती हूँ।

उनकी वह बात वर्षों बाद अब समझी हूँ।

निनी, समुद्र की गहरी गर्जना के बीच ठंडी रेत पर चलते हुए, मैंने जाना कि अकेलापन कितना गहन होता है। लहरों को क्षितिज की ओर वापस भागते देख, मैं भी राज से मिलन के लिए तरसने लगी थी। आँगन में चिड़ियाँ चहचहातीं नहीं, बल्कि चीखती-सी लगती थीं। मेरी खंडित ज़िन्दगी जैसे मुट्ठी में बंद रेत-सी है, मुट्ठी जितनी कसो, रेत उतनी ही फिसलती जाती है।...

राज तो मेरे वह प्रकाशपुंज हैं, जिससे मैं रोशन हूँ। बस, अपने उस गहरे अकेलेपन की चादर में मैंने उनके अहसास भर लिए। वे दिल में थे, लेकिन सामने नहीं थे। तो मैंने राज को अपने आसपास ज़िन्दा कर लिया।... अलमारी में उनके कपड़े वापस लगा दिए, आधी जली सिगरेट एशट्रे में रखना शुरू कर दिया; शूज़ बाहर निकाले; कभी उनकी शर्ट्स धोकर बाहर टाँग दी... और अब, मैं राह की सिगरेट्स; कपड़ों; जूतों और उनके आफ़्टरशेव से बातें करती हूँ।

यह असली आवाज़ों की दुनिया से अलग है। और इसमें सुकून है। निनी, जो हरदम साथ हो उसे साझा करना कैसे संभव है? मुझे पता है कि तुम मेरी फ़िकर करती हो, मुझे बहुत प्यार करती हो। यकीन करो कुछ भी नहीं बदला। मैं वही हूँ, तुम्हारी वही मज़बूत माँ।

कल जब तुम यूनिवर्सिटी से घर आओगी, तो फ़ोन करूँगी। अपना ख़याल रखना।

बहुत सारा प्यार

माँ"

अगली सुबह, निनी को आँसुओं के सैलाब से उभरने में कुछ समय लगा।

"हे भगवान! हमने क्या सोच लिया था और माँ को यह क्या हो गया?" परेशानी की हालत में वह समुद्र-तट पर पहुँच गई।

रात के तेज़ उफ़ान से थककर लहरें अब धीरे-धीरे अठखेलियाँ कर रही थीं। शांत समुद्र के किनारे का यह एकांत निनी को सुकून दे रहा था। एक चंचल लहर ने जब हल्के-से पास आकर निनी

के पैरों को भिगोया, तो निनी वहीं खड़ी, उस लहर को रेत पर फैलते देखती रही। लहरें आती रहीं और उसके पैर रेत की गहराई में दबने लगे। कुछ देर बाद जब निनी ने चलना चाहा, तब पैर जैसे गुम हो गए थे। उन्हें बाहर निकालने में समय लगा।

"इन्सान अनजाने ही अपनी किसी गहराई में उतरता जाता है, यहाँ तक कि खुद की पहचान भी मिटा बैठे।... माँ को असली लोग, असली आवाज़ों के बीच होना चाहिए, उन्हें उनकी काल्पनिक दुनिया से बाहर निकालना होगा।... यह प्यार नहीं है... माँ तो डिप्रेशन में जा रही है। इससे पहले कि हालात और बिगड़े जल्द ही कुछ करना होगा।" निनी स्थिति की गंभीरता को समझ रही थी।

तभी एक ख़याल कौंधा - डॉ. आकाश आनंद! डॉ. आनंद, राज के मित्र थे और एक सफल मनोचिकित्सक भी। उनकी पत्नी की लगभग 15 साल पहले एक दुर्घटना में मृत्यु हो गई थी। उन्होंने दोबारा शादी नहीं की। निनी को अपनी बेटी समान मानते थे। "माँ को वही इस गहराई से निकाल सकते हैं। क्या मालूम आगे चलकर कोई नई कोपल भी फूट पड़े।"

निनी हैरान थी कि ऐसा पहले क्यों नहीं सोचा। सूरज की सुनहरी किरणों से रेत दमकने लगी थी। मुस्कुराती हुई निनी ने अपनी बाहें फैला दीं, जैसे प्रकृति की सारी सुंदरता को बाहों में समेट लेगी।

प्रफुल्लित निनी ने घर आते ही डॉ. आनंद को एक ईमेल भेजा।

कुछ महीनों बाद, जब निनी ने माँ को फ़ोन किया, तो फ़ोन पर न सिर्फ़ टीवी की आवाज़, बल्कि डॉ. आनंद की खाँसी भी सुनाई दी।

'माँ! क्या अंकल आनंद वहाँ खाने के लिए आए हैं?"

"अरे नहीं, हम खाने के लिए बाहर जा रहे हैं।" ठिठोली करते हुए नीना ने कहा "और तुम्हारे बातूनी आंनद अंकल की बोलती आज बंद है, खाँसी ने टेप लगा दी है।" और वह ठहाके लगाकर हँस पड़ी थी। इधर निनी की आँखें खुशी से भर आईं।

anita.barar@gmail.com

हाईवे 401

- डॉ. हंसा दीप
टोरंटो, कनाडा

धीमी गति से रेंगती कार को जैसे ही वह हरा बोर्ड दिखा "एग्ज़िट 401 ईस्ट", वह हल्का मोड़ लेकर तेज़ गति से दौड़ने लगी। चिन्मय ने कौतूहल से पूछा "अच्छा, तो अब हम हाईवे पर जा रहे हैं। यह वही है न, जो तुम्हारे बेडरूम की खिड़की से दिखाई देता है। इसी का नाम है हाईवे चार सौ एक?"

"हाँ, लेकिन इसे हाईवे चार सौ एक नहीं, हाईवे फ़ोर हंड्रेड वन भी नहीं, हाईवे फ़ोर-ओ-वन कहते हैं।"

"फ़ोर-ओ-वन! शब्दों की हेराफ़ेरी से जो नयापन आता है, वह अलग ही छाप छोड़ता है। तुम्हारा रोज़ यहाँ से निकलना होता है क्या?"

"हाँ, लगभग रोज़। कार से नहीं, तो बस से, शटल से। यहाँ उपस्थिति दर्ज होती ही है। यह मुख्य तेज़ रास्ता है, कई अन्य रास्तों से जुड़ा हुआ।"

चिन्मय को कार से टोरंटो घुमा रहा था मैं। हम दोनों बचपन से लेकर अमेरिका आने तक साथ

थे, पर कनाडा में आकर अलग-अलग राज्यों में बस गए थे। चिन्मय पहली बार आया था टोरंटो। कोरोना काल में लंबे अंतराल के बाद डोमेस्टिक उड़ानें चालू हुई थीं। ऑफ़िस ने एक ज़रूरी असाइन्मेंट के साथ भेजा था उसे। शहर के बारे में जानने और देखने की उत्सुकता से अधिक मेरे साथ समय गुज़ारने की उसे खुशी थी।

काफ़ी कुछ खुलने लगा था। लॉकडाउन के लगभग ढाई महीनों के बाद हाईवे पर गाड़ी चलाते हुए कुछ अजीब-सा लग रहा था मुझे। हालाँकि पिछले तीन महीनों से नज़रें गड़ाए था इस पर। अपने घर की खिड़की से, पेड़ों के झुरमुट के पीछे तीन चार गाड़ियों की आती-जाती कतार लगातार दिखाई देती थी। सोचता, इतने लोग बाहर जाकर काम कर रहे हैं। मैं व पत्नी सेजल दोनों घर से ही काम करते रहे। यही आभास होता रहा कि शायद हम दोनों की दो कारें ही कम हुई होंगी। शेष लोगों की उपस्थिति दर्ज हो रही थी या नहीं, किन्तु हाईवे 401 की व्यस्तता कम न हुई। सेजल भी यहीं से राहत पाती "केतु, कोविड 19 की इस अनजानी दहशत को कम करने वाला यही एकमात्र ऐसा दृश्य है, जिसपर दौड़ती गाड़ियाँ, आँखों से ओझल होती हुई कहती हैं कि घबराने की कोई बात नहीं है।" और हाईवे 401 देखते हुए, घर से काम करते हम पति-पत्नी एक-दूसरे को इसी तरह दिलासा देते रहते।

मुझे लगता है कि यह मेरे लिए मात्र हाईवे नहीं है। मैं इसका एक हिस्सा हूँ। इसकी लंबाई का एक छोटा, बित्ता भर टुकड़ा। रोज़ के सफ़र ने इसके चप्पे-चप्पे से परिचय करा दिया है। इसकी भूख है, गाड़ियों की गड़गड़ाहट और पहियों का स्पर्श। शहर की जान है यह। इसकी धड़कनों की गति एक सौ बीस किलोमीटर की रफ़्तार पर ही रहती है। हालाँकि सौ की लिमिट है, पर हर गाड़ी एक सौ बीस की गति पर ही चलती है। मानो सौ पर बीस परसेंट टिप का रिवाज़ निभा रहे हों। डर तो तब लगता है, जब यह थम जाता है। यह थमा, यानि कोई बड़ा एक्सीडेंट हुआ। इसके अलावा कोई कारण नहीं है इसके थमने का। इसका गुस्सा तब देखते ही बनता है, जब धड़-धड़ करती गाड़ियाँ एक-दूसरे से टकराकर भड़ाम-भड़ाम, धड़ाम-धड़ाम का मिलाजुला शोर पैदा कर देती हैं। इसे आदमी की इस दौड़ से नफ़रत है। अपनी देह को खून से रंगा देखकर क्रोध में घंटों बंद हो जाता है। जब तक ये भयानक लम्हे बीते, फिर से भागमभाग शुरू हो जाती है। आदमी ऐसा प्राणी है, जो अपनी ज़िद के चलते किसी की नहीं सुनता। अपने लोगों की नहीं सुनता, तो इस डामर-कंक्रीट के बेजान रास्ते की क्यों सुनने लगा?

"इतना ट्रैफ़िक होने से तो इसे मरम्मत की बहुत ज़रूरत पड़ती होगी।" चिन्मय ने सवाल किया, तो मेरी तंद्रा टूटी।

"बहुत, मरम्मत का काम चलता ही रहता है। एक खरोंच भी आए इसके शरीर पर, तो तंत्र इसके उपचार के लिए तत्काल पहुँच जाता है। रोज़ रात ग्यारह बजे से काम शुरू हो जाता है, अलग-अलग जगहों पर।"

"हाँ, दिन में तो कर नहीं पाते होंगे, इतना व्यस्त रहता है।" आसपास चलती कई गाड़ियों पर निगाह डालते चिन्मय ने कहा "बहुत दिनों के बाद हम इस तरह साथ घूम रहे हैं, है न केतु।"

"हाँ, कई दिनों से प्रतीक्षा थी तुम्हारे आने की।"

"काम ही ऐसा है हम लोगों का कि लाइफ़ में थोड़ा चेंज तो चाहिए।"

"आई.टी. ने हमें बहुत दिया है चिनू।"

"हाँ, बहुत कुछ, एक ऐसी भाषा दी जो हमारी पहचान है। आज की पहली ज़रूरत है कम्प्यूटर की भाषा।"

"बिलकुल, और इस भाषा से हम कभी जड़ नहीं होते। निरंतर बदलाव के लिए तत्पर रहो, तो

ठीक, वरना बैठ जाओ घर पर। याद है, हमारे साथ के कई लोगों की नौकरी गई। वे सब अमेरिका से वापस भारत लौट गए।" ये यादें वहाँ ले जाती हैं, जब सही समय पर हम दोनों दोस्तों ने कनाडा आने का फ़ैसला लिया था।

"हम जैसे आई.टी. के लोग प्रोग्रामिंग में उलझे रहते हैं, तो लोगों को लगता है कि हम लोग एक्सपर्ट हैं कम्प्यूटर के।" मुस्कुराते हुए चिन्मय ने वह दृश्य खींच दिया, जब आँखें स्क्रीन पर जमी रहतीं, पर हल नहीं मिलता।

"यह कोई नहीं देखता कि घंटों उलझे रहते हैं एक गलत क्लिक से निपटने के लिए।" मैं मुस्कुराया। मशीनी मुस्कान नहीं, मशीनों की दी गई मुस्कान। यह उन क्षणों की वास्तविकता थी, जब उलझते जाते थे उस क्लिक में।

चिन्मय हँसा "बिल्कुल, एक गलत क्लिक से एक सही क्लिक की तलाश का लंबा रास्ता पार करने में दम निकल जाता है।"

"हकीकत यह भी है कि जो इंसान कम्प्यूटर को लिख-पढ़ सकता है, वह हर मूर्त-अमूर्त चीज़ को तेज़ी से पढ़ सकता है। हाईवे फ़ोर-ओ-वन को ही लो, मैं इसके इतने करीब हूँ कि मुझे लगता है कि यह मुझसे लगातार कुछ कहता है। मीलों तेज़ गति की रफ़्तार में इसकी आवाज़ को भी पढ़ने-सुनने लगा हूँ। डामर, कंक्रीट से बने, असंख्य मोड़ वाले रास्ते के बहाव की भाषा से मैं भली-भाँति परिचित हूँ।"

चिन्मय मुस्कुराते हुए केतन को देख रहा था, जो अपनी कार की गति के साथ ही अपनी बातों की गति को भी बनाए हुए था।

"सच कहूँ चिनू, मेरे लिए यह सिर्फ़ रास्ता ही नहीं, जीवन का एक अटूट भाग है, जो मेरे अंदर धड़कता है। इस पर गाड़ी चलाते हुए मैंने अपनी गति पर नियंत्रण रखने का गुर सीखा है। यह बार-बार आगाह करता है, दौड़ोगे, तो औंधे मुँह गिरोगे।"

"तुम ज़रा भी नहीं बदले केतु, आज भी वैसी ही दार्शनिक बातें करते हो।"

मैं खुलकर हँसता हूँ। सोचता हूँ क्या कभी कोई बदल सकता है। शहर छोड़ दे, देश छोड़ दे, बाहरी दुनिया बदल ले, पर भीतर की दुनिया कैसे बदल सकता है। वही तो अपनी एक दुनिया है, जिसमें जब चाहो गोते लगाकर आ जाओ। इतने वर्षों बाद भी इस हाईवे की गति के साथ दौड़ता हूँ, तो लगता है कि माँ साथ होती, तो ऐसी सर्र से चलती गाड़ी के लिए ज़रूर कहती "पेट का पानी भी न हिले।" मेरा "स्मूथ राइड" कहना, माँ की उस आवाज़ की सरलता को कभी नहीं छू पाता है। वर्षों बीत गए माँ को गए। माँ नहीं हैं, पर वह आवाज़ है मेरे भीतर। माँ की कही हुईं कई बातों का विकल्प आज तक नहीं ढूँढ पाया मैं। सालों बाद भी उनके रचे बेटे के सिस्टम में वैसी की वैसी सेव्ड हैं। जब-तब वे आवाज़ें फुसफुसाकर चली जाती हैं। फिर चाहे मैं हाईवे पर दौड़ रहा होऊँ या कम्प्यूटर प्रोग्राम की उलझनों में सिर पर हाथ रखे सोच रहा होऊँ। कुछ समझ में नहीं आ रहा होता है और तभी न जाने कहाँ से एक आवाज़ आती है "माथो मती फोड़, चल आ, रोटी खई ले।" तब उठना ही पड़ता है। खाना खाकर लौटता हूँ, तो सब कुछ मेरे बस में हो जाता है।

चिन्मय की चुप्पी देख मैंने मौन तोड़ा "हर तरह की गाड़ियों का शोरूम है जैसे यहाँ।"

"हाँ, वही देख रहा था मैं। छोटी-से-छोटी, महंगी-से-महंगी, नेम ब्रांड लग्ज़री कारें, एसयूवी, ट्रक, बसें, टूरिस्ट बसें, स्कूल बसें, माल ढोते, गाड़ियाँ ढोते ट्रेकर सब कुछ!" हर लेन को गौर से देखता हुआ चिन्मय गाड़ियों की कई किस्में उस सूची में जोड़ता जा रहा था।

साथ चल रही कार ड्रायवर के अधपहने मास्क से याद आया मुझे, "अब देखो, मास्क हमारी ज़रूरत बन गया है।"

“हाँ, कार में, दरवाज़े के पास, हर जगह एक-एक रखा हुआ है, ताकि कभी बगैर मास्क के न निकलें।”

“मास्क में छिपा चेहरा अब आदी होने लगा है, सिर्फ़ आँखें देखकर पहचान लेने का। सच इतना तैयार होने की, शेव करने की भी अब ज़रूरत न रही। लड़कियाँ अपना काफ़ी समय बचाएँगी। इतना मेक-अप न करना होगा।” मेरे चेहरे पर शरारत नाचने लगी थी।

“समय और पैसा दोनों बचाएँगी।”

दोनों अनायास ही हँस पड़े। दो युवकों के बीच बात हो रही हो और लड़कियों का ज़िक्र न हो, ये भला कैसे संभव था। और फिर हम तो बचपन से अपना क्रश एक-दूसरे को बताते आ रहे थे।

“अरे यहाँ भी भिखारी!” मोड़ पर सामने खड़े एक व्यक्ति को देखकर चिन्मय बोला।

“हाँ, एक यही बात मुझे अच्छी नहीं लगती कि हाईवे में घुसते हुए, निकलते हुए ऐसे कॉर्नरों पर ये खड़े होते हैं। गले पर तख़्ती लगाए भीख माँगते हैं। कभी लिखा होता है, ‘स्मॉल चिल्ड्रन, नो फ़ूड’ कभी लिखा होता है “होमलेस, नो मनी।” लगता है इनकी रोज़ी-रोटी का जुगाड़ भी हाईवे 401 करता है। न जाने ये भिखारी शान बढ़ाते हैं या कम करते हैं। इस तरह पेट भरने लायक मिलता है या नहीं, मुझे नहीं मालूम। कड़ाके की सर्दी में भी खड़े रहते हैं। न जाने क्यों मुझे इनका यहाँ खड़ा होना चुभता है। मैंने तो कभी कुछ दिया नहीं, क्योंकि मुझे मालूम है कि ये अपनी कार यहीं कहीं पार्क करके आए होंगे व खड़े होंगे भीख माँगने के लिए।”

“और क्या, कुछ देने के लिए भिखारी जैसी शकल तो हो, तख़्ती पर लिखे अक्षरों के अलावा कहीं भिखारी वाला भाव दिखाई नहीं देता। दूर से तख़्ती पर भी दो-चार लकीरें ही दिखती हैं।” चिन्मय की तख़्ती पढ़ने की कोशिश सफल नहीं हो सकी।

मेरी नज़रों के सामने वे कटोरे घूमने लगे “भिखारी तो हमने ऐसे देखे हैं कि पहले तो उन पर नज़र पड़ना ही न चाहे और पड़ जाए, तो फिर बगैर कुछ दिए हटना ही न चाहे।”

“इस तरह माँगकर कितने दिन पेट भरा जा सकता है। कौन इस तरह खड़े रहकर भीख के पैसों से गुज़ारा करना चाहेगा।” चिन्मय ने एक नज़र डालकर हटा ली थी अब।

“हाँ भिखारियों को भी कुछ तो सोचना ही चाहिए। स्टेटस बनाना आना चाहिए। ऐसे भीख माँगे कि देने वाला बस रुककर दे ही दे। ये लोग बत्ती बदलते ही कारों के पास आकर चक्कर लगाने लगते हैं। हरी बत्ती होते ही वापस जाकर खड़े हो जाते हैं।”

“जैसे मेट्रो में गा-गाकर सबका मनोरंजन करने वाले। वे बैठकर गाते हैं या बजाते हैं। वहाँ से गुज़रते लोग गाने की धुन पर थोड़ा थिरकते, चंद सिक्के डालकर ही जाते हैं।” चिन्मय की आँखों में मेट्रो प्लेटफ़ॉर्म के आसपास बैठे वे म्यूज़िशियन तैरने लगे।

“वे मनोरंजन करके पैसे कमाते हैं। कम-से-कम भीख तो नहीं माँगते।”

चिन्मय मुझसे सहमत न था “जिस तरह से लोग पैसे डालकर जाते हैं, वह तो भीख ही कही जाएगी।”

“अरे ये तो बेचारे वक्त के मारे इंसान हैं चिनू। इंसान तो इंसान देश भी तो भीख पर गुज़ारा करते हैं। ऐसे देशों की पूरी एक श्रृंखला है, जो अमेरिका की कृपा पर जी रहे हैं।”

मेरा दर्शन हिलोरें मारने लगा, तो चिन्मय को कुछ और ही याद आ गया “तुम्हें याद है केतु, हमने भी बचपन में अमेरिका से आए गोल-गोल, बड़े-बड़े बिस्किट खाए थे। वापस अमेरिका में रहकर उनका कर्ज़ा भी पूरा कर दिया, टैक्स भर-भरकर।”

“हाँ” हम दोनों ने ठहाका लगाया।

अब हम हाईवे से बाहर निकल रहे थे। एक बड़ा बोर्ड लगा था, सामने वाले पार्क में फ़्री पेनकेक और कॉफ़ी मिल रही थी। मैंने खुश होकर कहा "चलो मुफ़्त का माल उड़ाते हैं।"

चिन्मय को कोई एतराज़ नहीं था। घूमने तो निकले ही थे, कहीं भी जाएँ, कोई फ़र्क नहीं पड़ता। यह जुलाई की पूर्व तैयारियों में से एक था, जब कनाडा अपना जन्मदिवस मनाते हुए, जनता का मुँह मीठा करवाता है। हम दोनों आधे घंटे तक धूप सहन करते पेनकेक की लंबी लाइन में खड़े रहे। सब दूर-दूर खड़े थे, मास्क पहने हुए। हमारा नंबर आने ही वाला था। हाथ में डिस्पोज़ेबल सफ़ेद प्लेट थी। पेनकेकवाला तवे से गरम-गरम पेनकेक उठाकर, मुस्कुराता हुआ हम दोनों की प्लेट में डाल रहा था। मेरे सामने उस तख़्ती वाले का चेहरा उभर आया। उसकी तख़्ती पर कुछ लिखा था और मेरी प्लेट निहायत सफ़ेद थी।

"यह प्लेट और वह तख़्ती, अंतर सिर्फ़ फ़ोर-ओ-वन की तरह है। अलग-अलग स्टेटस हैं।"

चिन्मय ने मेरा इशारा तत्काल समझ लिया। वह भी अपनी प्लेट को कुछ वैसे ही देख रहा था।

"यानि हम भी!" चिन्मय अवाक् था।

"स्टेटस वाले हैं!"

"स्टेटस वाले भिखारी!"

भिखारी शब्द मैंने नहीं जोड़ा, चिन्मय ने जोड़ दिया। वह अपनी बात का खुलासा कर रहा था "स्टेटस मेनटेन करके रखना पड़ता है। फ़्री नाश्ता हो या वह तख़्ती, एक ही बात है।"

"स्टेटस!" हम दोनों हँस रहे थे।

मेरे सामने प्लेट में रखा पेनकेक इन पलों की ज़रूरत था "छोड़ो, अभी तो पेनकेक एंजॉय करो। कॉफ़ी ठंडी हो रही है।"

हम दोनों चुस्कियों के साथ ताज़ा हवा का आनंद ले रहे थे। आखिरी निवाला अभी प्लेट में था कि देखा कॉर्नर पर खड़ा भीख माँगता वह आदमी अभी-अभी आकर लाइन में लगा था। उसने तख़्ती उतार दी थी व उसके हाथ में अब वही प्लेट थी, कोरी सफ़ेद।

मैं फिर से हाईवे फ़ोर-ओ-वन की दुनिया में खोने लगा। हर मोड़ पर खड़े भिखारियों की तख़्तियों की कतार में मेरे सामने रखी यह प्लेट भी जुड़ गई थी, जिसमें पेनकेक के बचे हुए टुकड़े कुछ अक्षरों को आकार दे रहे थे।

hansadeep8@gmail.com

खानदानी डायरी

- श्री आशुतोष द्विवेदी
प्राग, चेक गणराज्य

वे बूढ़े हो चले थे। इतने बूढ़े कि तन और मन दोनों लाचार हो गए थे। जीने की कोई चाह भी न बची थी। ऐसा लगने लगा था कि साँस कभी भी उखड़ सकती है। एक दिन, उन्होंने अपनी पत्नी, अपने बेटे और अपनी बहू को पास बुलाया और कहा कि उनका एक पुराना बक्सा है, उसे खोला जाए। बक्से की चाभी वे अपने जनेऊ में बाँधकर रखते थे। चाभी उनके जनेऊ से निकाली गई, बक्सा खोला गया। बक्से में गाँव के खेत और घर के कागज़ थे, कुछ और ऐसी ही कानूनी दस्तावेज़ थे, वे सब उन्होंने अपने बेटे के हवाले कर दिए। कुछ सगे-संबंधियों, मित्रों की पुरानी तस्वीरें थीं, जो उन्होंने अपनी पत्नी को संभालकर रखने के लिए दे दीं। एक पुराने ज़माने का सरौता भी था, सुपारी

काटने वाला, एक लकड़ी की कलम थी, कुछ चलन से बाहर हो चले नोट और सिक्के थे, एक दूरबीन भी थी; ये सब सामान उनके पंद्रह साल के पोते ने ले लिए; उसे एंटीक-कलेक्शन का शौक था।

इन सब सामानों के अलावा बक्से में से एक चीज़ और निकली, वह थी एक पुरानी-सी डायरी, जिस पर उनकी पत्नी का नाम लिखा था। यह आश्चर्य की बात थी। क्योंकि पत्नी से कभी घरेलू काम-काज के अलावा और कोई बात करते उन्हें कभी नहीं पाया गया था, एक टिपिकल स्टीरियोटाइप भारतीय पति वाली उनकी छवि थी, पत्नी के प्रति उनका गुस्सा तो एक-दो बार देखा भी गया था, लेकिन प्यार तो शायद ही किसी ने देखा हो, बल्कि पुरानी भारतीय परंपरा के अनुसार वे पत्नी को नाम लेकर पुकारते तक न थे। लेकिन डायरी पर पत्नी का नाम लिखा था और वह भी बहुत सजावटी अंदाज़ में, ऐसा लगता था कि बड़े चाव से लिखा गया है। वह डायरी पत्नी ने रख ली। डायरी पत्नी को सौंपते हुए पति की आँखों के कोर कुछ भीगे हुए थे, होठ काँप रहे थे, लेकिन बोल पाने की सामर्थ्य शायद नहीं बची थी; और पत्नी के चेहरे पर तो सिवाय आश्चर्य के कोई दूसरा भाव न था।

पत्नी ज़्यादा पढ़ी-लिखी न थी, लेकिन हिंदी मिला-मिलाकर पढ़ लेती थी, चूँकि वृद्धावस्था उनकी भी हो चली थी, इसलिए पढ़ने की गति में थोड़ी और कमी आ गई थी। रात को वे अकेले में उस डायरी को पढ़ने के लिए बैठीं। डायरी के पहले ही पन्ने पर लिखा था, "आज मैं धन्य हुआ, ऐसी स्त्री को अपनी जीवन-संगिनी के रूप में पाकर।" जो तारीख उस पर पड़ी थी, वह उनके विवाह के करीब दस दिन बाद की तारीख थी। पत्नी ने डायरी का अगला पन्ना पलटा। उस पर लिखा था, "जितना यह स्त्री निःस्वार्थ भाव से मेरे माता-पिता, भाई-बहन, मेरे पूरे घर की सेवा करती है, उसका एक प्रतिशत भी क्या मैं इसे कभी दे पाऊँगा? इस महीने सोचा था कि इसके लिए एक सोने की अंगूठी बनवा दूँ, सूनी उँगलियाँ अच्छी नहीं लगती हैं, लेकिन छोटे भाई को बड़े कॉलिज में पढ़ाने की बात चल निकली, तो सारी बचत उसमें लग गई।" तारीख थी पिछले पन्ने से तीन महीने बाद की।

पत्नी ने अगला पन्ना पलटा। उस पर लिखा था, "आज, मैंने देखा वह चौके पर बैगनी साड़ी पहनकर बैठी हुई थी, जो मैं कल उसके लिए लेकर आया था। वह बहुत सुंदर लग रही थी, इस साड़ी में; शायद उसके चेहरे पर इस बात की खुशी भी थी। मैं उसे बहुत देर तक देखता रहा। पता नहीं, उसने मुझे देखते हुए देखा या नहीं?" तारीख थी पिछले पन्ने से एक महीने बाद की। पन्ने काफ़ी पुराने हो गए थे, पीले, जर्जर हो गए थे और डायरी से अलग हो रहे थे; उन्हें काफ़ी संभालकर पलटना पड़ता था। पत्नी ने अगला पन्ना पलटा। उस पर लिखा था, "आज सवेरे जब मैं नहाकर निकला और वह खाना लेकर मेरे पास आई, तो उसकी आँखें बताती थीं कि वह आज बहुत रोयी है। मैंने उससे रोने का कारण जानने का काफ़ी प्रयास किया, लेकिन उसने कुछ बताया नहीं। वह चुप-चाप रो लेती है, अकेले में। रोने का कारण नहीं बताती किसी को भी, मुझे भी नहीं। शायद, उस अपनेपन से हम पूछ ही नहीं पाते; या शायद उसे हमारे ऊपर इतना भरोसा ही नहीं है कि हम उसकी पीड़ा को समझेंगे; या शायद हम ही उसके दुख का कारण हैं, तो हम से ही क्या रोना रोए?" तारीख थी पिछले पन्ने से दो महीने बाद की।

पत्नी के चेहरे पर लगातार आश्चर्य के भाव थे, लेकिन उनके भीतर एक तूफ़ान-सा उठने लगा था। उन्होंने जल्दी से अगला पन्ना पलटा। उस पर लिखा था, "आज मैं नौकरी के लिए दूसरे शहर जा रहा हूँ। अभी वहाँ रहने के इंतज़ामों का ठीक से पता नहीं है, इसलिए अकेले ही जा रहा हूँ। माँ की तबियत भी ठीक नहीं रहती, इसलिए भी पत्नी को

लेकर नहीं जा सकता। मैं जानता हूँ, जैसे मेरे मन में अकेले हो जाने का डर है, वैसे ही उसके मन में भी मेरे बिछोह की पीड़ा होगी। लेकिन, न मैं उसे कुछ समझा सकता हूँ, न वह मुझसे कुछ कह पाती है।" तारीख थी पिछले पन्ने से एक महीने बाद की। पत्नी ने अगला पन्ना पलटा। उस पर लिखा था, "आज उससे कुछ कहने-सुनने का मन हुआ। उसे चिट्ठी लिखना चाहता हूँ। लेकिन, जो उसे लिखूँगा, वह घर में सब पढ़ लेंगे। केवल उसे तो नहीं लिख सकता ना? काश, कुछ ऐसी तकनीक होती कि मन जिससे कुछ कहना चाहता है, आवाज़ सिर्फ़ उसके मन तक पहुँच जातीं........।" तारीख थी पिछले पन्ने से एक महीने बाद की। पढ़ते-पढ़ते पत्नी की बूढ़ी आँखों में न जाने कितने चित्र बीते हुए दिनों के उभर आए और आँखें अनजाने ही छलक पड़ीं। आँसू डायरी के पन्ने पर गिरे, स्याही के साथ घुलकर बूँदें नीली हो गईं। डायरी के मुरझाए पन्ने कहीं पिघल न जाएँ, इसलिए पत्नी ने घबराकर जल्दी से डायरी बंद कर दी। फिर उठकर अपने पति के बिस्तर की ओर गई। (पति अलग खटोले पर सोते थे, क्योंकि उन्हें सामान्य पलंग पर सोने में दिक्कत होती थी।) पति को सोता हुआ देखकर, धीरे से उनके सिरहाने बैठी, उनका चेहरा निहारा, उनके बाल सहलाए और फिर वहाँ से उठकर अपने बिस्तर पर लौट आई। वह बत्ती बुझाकर पुरानी यादों में खोई हुई लेट गई, जल्दी ही उसे नींद आ गई।

सुबह होते ही उसने घर में बेटे और बहू का शोर सुना। शोर की तरफ़ आशंकित-सी बढ़ी और पाया कि पति की आत्मा ने देह छोड़ दी है। वह फूट-फूटकर रोना चाहती थी, लेकिन न आँसू निकल रहे थे, न आवाज़। धीरे-धीरे आस-पड़ोस, नाते-रिश्तेदारों की भीड़ जुटने लगी। सब पत्नी को रुलाने का प्रयास कर रहे थे; उन्हें भय था कि कहीं वह गहरे सदमे में न चली जाएँ; रो लेने से मन का गुबार निकल जाएगा। लेकिन वह किसी से कुछ न बोल रही थी। शाम तक अंतिम-संस्कार हो गया। लोग अपने-अपने घर चले गए। पास में रह गए केवल बेटा, बहू और पोता, और हाँ, वह डायरी भी। समय बीत रहा था। आज पति को गुज़रे हुए पंद्रह दिन बीत गए थे, बीते परसों तेरहवीं का कार्यक्रम भी हो चला था। लेकिन पत्नी किसी से कुछ बोल नहीं रही थी, केवल उस डायरी पर अपने पति के हाथों सजाकर लिखे गए अपने नाम को निहारती रहती थी, चुप-चाप; उस डायरी को पहले दिन के बाद उन्होंने फिर कभी खोल कर भी न देखा था। उसे आगे पढ़ने की भावना उसके मन को कचोटती थी। बेटा, बहू और पोता तीनों लगातार प्रयास करते थे कि वह कुछ बोले, बात करे, ताकि उसका मन हल्का हो सके। अब बहू की जिज्ञासा उस डायरी के प्रति बढ़ने लगी थी। वह सोचती रहती थी कि आखिर ऐसा क्या है इस डायरी में कि अम्मा जी इसे अपने सीने से लगाकर रखती हैं, लेकिन उन्हें कभी इसे पढ़ते हुए भी नहीं देखा? बहू की जिज्ञासा तीव्रतर होती जा रही थी उस डायरी को देखने की। सास उसको एक पल के लिए भी अपने से अलग नहीं करती थी।

एक दिन घर में कोई न था, वह बूढ़ी औरत अकेली थी; बहू पास की दुकान तक घर का कुछ सामान लेने गई थी, बेटा नौकरी पर गया था, पोता स्कूल गया था। अचानक, वृद्धा पूजा वाले कमरे में जलते दिए की ओर बढ़ी और डायरी के पन्नों को एक-एक कर जलाने लगी। पन्ने सूखे पत्तों की भाँति तेज़ी के साथ धुआँ करते हुए जलते चले जा रहे थे। धीरे-धीरे पूरी डायरी आग के हवाले हो गई और सारा कमरा धुएँ से भर गया। जब तक बहू बाहर से लौटकर घर में आई, तब तक डायरी राख हो चुकी थी और पूरा पूजा-घर धुआँ-धुआँ हो गया था। बहू ने जल्दी से घबराकर खिड़कियाँ खोलीं, पंखा चलाया, और अपनी सास को उठाकर बाहर लाने की कोशिश की। लेकिन तब तक दम घुटने से वृद्धा

देह की साँसें थम चुकी थीं। बहू ने पड़ोसियों को आवाज़ दी, अपने पति को बुलाया। अंतिम संस्कार की तैयारियाँ होने लगीं। इस सारे घटनाक्रम के बीच बहू के मन में एक बात लगातार घूम रही थी कि आखिर उस डायरी का रहस्य क्या था? पूजा-घर की सफ़ाई करते समय जले हुए पन्नों से कुछ पता लगाने का प्रयास उसने किया, लेकिन वह असंभव प्रतीत हुआ। वह निराश हो गई, लेकिन फिर भी वह डायरी उसके दिमाग में घूमती रहती थी।

एक दिन अपनी सास के कमरे में झाड़ू लगाते समय एक पुराना कागज़ का एक टुकड़ा बहू के हाथ लगा। यह टुकड़ा किसी पुराने, पीले पड़े हुए पन्ने का आधा भाग था। बहू को समझ में आ गया कि यह कागज़ का टुकड़ा उसी डायरी से सरक कर गिर गया होगा। चूँकि, डायरी काफ़ी पुरानी थी, उसकी बाइंडिंग उधड़ चुकी थी, इसलिए पन्नों का अलग हो जाना स्वाभाविक ही था। बहू ने झट से उस टुकड़े को उठा लिया और उसे अपने कमरे में ले जाकर पढ़ने लगी। उस पर लिखा था, "हमारे खानदान की परंपरा के अनुसार, हमारे घर का पुरुष अपने पास एक डायरी रखता है, सबसे छुपाकर, खासकर अपनी पत्नी से, जिसमें वह पत्नी के प्रति अपने उन सारे कोमल मनोभावों, अनुभूतियों को व्यक्त करता है, जिसे वह पत्नी के सामने या और किसी के सामने संकोच-वश नहीं कह पाता। इस डायरी को 'खानदानी डायरी' कहते हैं। हालाँकि डायरी तो हर पुरुष के साथ बदल जाती है, लेकिन परंपरा यथावत रहती है, इसलिए हर डायरी नई होकर भी खानदानी होती है। यह पिछली पीढ़ी के पुरुषों का दायित्व होता है कि वे आगे आने वाली...।" आगे पढ़ने के लिए कुछ न था, क्योंकि वह पन्ने का आधा टुकड़ा था। तारीख भी कोई न थी। इस टुकड़े ने बहू के मन में नई जिज्ञासा खड़ी कर दी कि क्या 'ये' भी मेरे लिए कोई डायरी रखते होंगे, जिस पर सिर्फ़ मेरे बारे में ढेर सारी बातें लिखते होंगे? क्योंकि सामने से तो ये भी ज़्यादा कुछ बोलते नहीं; मुझे तो आज तक भरोसा नहीं हुआ कि ये मुझे प्यार भी करते हैं या नहीं। वह डायरी हाथ आए, तो पता चले जनाब के मन में क्या है? अब बहू अपने पति की अनुपस्थिति में समय निकालकर वह खानदानी डायरी ढूँढने का प्रयास करती रहती थी, यह सोचकर कि उसके पति कहीं-न-कहीं घर में ही उसे छुपाकर रखते होंगे। वह चाहती, तो अपने पति से पूछ भी सकती थी, लेकिन वह इस बात को ज़ाहिर नहीं होने देना चाहती थी कि वह ऐसे किसी रहस्य के बारे में जान चुकी है।

कई दिन बीत गए, बहू के हाथ अपने पति की वह खानदानी डायरी अब तक न लगी थी; लेकिन उसकी तलाश अभी भी जारी थी और अपनी प्रेरणा-स्वरूप उसने उस पुरानी डायरी के पन्ने का टुकड़ा संभालकर रखा था, बीच में उस टुकड़े को वह पढ़ भी लेती थी और उन अधूरी पंक्तियों को अपनी कल्पनाओं से पूरा करने का प्रयास करती रहती थी। उसके ससुर के पास किताबों की एक छोटी रेक थी, जिसमें गीता-रामायण आदि कुछ धार्मिक किताबें रखी हुई थीं, इनमें से कई तो बुरी तरह जर्जर हो चुकी थीं, कुछेक को दीमक चाट गए थे। एक दिन जब उसके पति दूसरे शहर अपने दफ़्तर के किसी काम से गए हुए थे, उसने अपने ससुर की पुरानी किताबों को छाँटने का मन बनाया कि इनमें से जो काम की होंगी, उन्हें रखकर बाकी को हटा दिया जाए। उन किताबों की छटनी करते समय एक नए रजिस्टर जैसा कुछ हाथ लगा। उसने पढ़ने के लिए उसे निकाला, तो उस पर बड़े करीने से सजाकर उसका नाम लिखा हुआ था। पत्नी की आँखें चमक उठीं, वह जान गई कि यही मेरे पति की 'खानदानी डायरी' है। वह डायरी को अभी खोलने ही जा रही थी कि उसका बेटा स्कूल से वापस आ गया और सीधे दौड़ता हुआ उसके पास

पहुँच गया। उसने डायरी अपने आँचल में छिपा ली और सोचा कि इसको अकेले में पढ़ के देखूँगी। फिर वह घर के कामों में लग गई, लेकिन उसका मन लगातार अकेले होने का मौका ही तलाश रहा था। आज देर रात उसके पति को वापस भी लौटना था। वह जानती थी कि जैसे ही पति को यह पता चलेगा कि बाबू जी की पुरानी किताबें खँगाली गई हैं, वे सबसे पहले अपनी इस खानदानी डायरी को ढूँढेंगे, इसलिए उनके घर वापस आने से पहले इस डायरी को वहीं पुरानी किताबों के बीच छुपाकर रख देना है। रात होते ही वह अपने बेटे को जल्दी-जल्दी खाना खिलाने में लग गई और उसके सो जाने के बाद वह डायरी को खोलकर पढ़ने बैठी, ताकि अपने पति के लौटने तक अधिक-से-अधिक पढ़ सके। उसने जल्दबाज़ी में बीच का कोई पन्ना खोला। उस पर लिखा था, "खूबसूरती वह नहीं होती है, जो बाहर से दिखती है। दरअसल, खूबसूरती को देखने के लिए जो आँखें चाहिए, वो हम सबके पास होती ही नहीं हैं। मैं शादी के कुछ दिनों बाद तक अफ़सोस करता रहता था कि मेरे लिए और भी ज़्यादा सुंदर और गोरी लड़कियों के रिश्ते आए थे, लेकिन मैंने क्यों घर वालों के दबाव में आकर इस स्त्री के लिए हाँ कर दी थी। लेकिन आज समझ में आता है कि इस स्त्री से ज़्यादा सुंदर दूसरी स्त्री मेरे लिए हो ही नहीं सकती है, क्योंकि इसने अपनी सुंदरता से ही तो मेरे आस-पास सब कुछ सुंदर बना रखा है।" तारीख थी उन दोनों के विवाह से लगभग दो वर्ष बाद की। पत्नी भावुक हो उठी, आवेश में उसने दूसरा पन्ना पलटा; तभी दरवाज़े पर पति के पुकारने की आवाज़ आई। घबराकर डायरी उसने अलमारी में अपने कपड़ों के बीच छिपा दी, पुरानी डायरी से गिरा कागज़ का टुकड़ा भी उसी डायरी के बीच में रख दिया और दौड़कर दरवाज़ा खोलने गई। उसके मन में चल रहा था कि रात में पति के सोने के बाद उस डायरी को अपनी जगह पर रख देगी और सुबह पति और बेटे के बाहर चले जाने के बाद आराम से पढ़ेगी। दो-चार दिन इस बात का ज़िक्र पति से नहीं करेगी कि उसने बाबू जी की किताबों वाली रेक साफ़ की थी। पति को उसने खाना परोसा, अपना भी खाया। उसका दिल ज़ोरों से धड़क रहा था। पति ने पूछा भी कि तबियत ठीक नहीं है क्या? तो उसने हँसकर जवाब दिया, "सब ठीक है, आप थक गए होंगे, सो जाइए।" पति ने कहा, "हाँ, थका तो हूँ, लेकिन कल दफ़्तर में देने के लिए एक फ़ाइल तैयार करनी है, सुबह जल्दी उठकर करना मुश्किल है, इसलिए अभी निपटाकर सोऊँगा।" पत्नी ने ज़ोर दिया कि ये सब काम सुबह करें, लेकिन पति माना नहीं। पत्नी लेटकर प्रतीक्षा करने लगी कि जैसे ही पति सोए, तो वह डायरी को लेकर उसकी जगह पर रखने जाए। प्रतीक्षा करते-करते पत्नी को नींद आ गई।

नींद खुली भोर में। वह घबराकर उठी। देखा कि पति सो रहे हैं। वह दबे पाँव बिस्तर से उतरी, अलमारी में से खानदानी डायरी निकाली और उसे लेकर ऊपरी मंज़िल पर किताबों वाली रेक की ओर धीमे-धीमे बढ़ी। रेक के पास पहुँचकर उसने पीछे मुड़कर सुनिश्चित किया कि कोई उसे यहाँ आते देख नहीं पाया। फिर जैसे ही वह रेक पर डायरी रखने के लिए झुकी, उसकी नज़र नीचे फ़र्श पर गिरे कागज़ के टुकड़े पर पड़ी। उसे लगा जैसे यह वही बाबू जी की डायरी से निकला कागज़ का टुकड़ा है, जो उसे अम्मा जी के कमरे में मिला था। शायद, इस डायरी से सरककर गिर गया हो? उसकी नज़र डायरी की ओर गई। वह कागज़ का टुकड़ा तो डायरी में से झाँक रहा था। उसने उस टुकड़े को झटपट डायरी से निकालकर देखा और ये विचार बिजली की तरह उसके दिमाग में कौंध गए कि कहीं नीचे गिरा कागज़ का टुकड़ा इसी आधे टुकड़े का दूसरा हिस्सा तो नहीं, जो पहले इस डायरी को यहाँ से निकालते समय गिरा हो; या

फिर अम्मा जी इधर आईं हों और बाबू जी वाली डायरी से सरक कर यह निकल गया हो? विचारों की इसी आपा-धापी में उसने तेज़ी से झुककर उस टुकड़े को उठा लिया और देखने लगी। उस पर लिखा था, "...पीढ़ी के पुरुषों को सांकेतिक रूप में इस परंपरा का भान कराएँ, ताकि अगली पीढ़ी इस 'खानदानी डायरी' के रिवाज़ को कायम रख सके। क्योंकि जीवन में बहुत-सी ऐसी कोमल संवेदनाएँ हैं, जो कही नहीं जाती हैं। उन्हें कह देने से उनका अस्तित्व समाप्त हो जाता है और हृदय दरिद्र हो जाता है। लेकिन, न कह पाने का भारीपन भी तो सताता है, इसके लिए है यह डायरी कि इस डायरी पर मन की वे भावनाएँ उकेरकर स्वयं को सहज भी कर लिया जाए और भीतर के खज़ाने कहीं बाहर न लुटाकर मन को कंगाल होने से भी बचा लिया जाए। हाँ, यहाँ एक बात बहुत ध्यान रखने की है कि यह खानदानी डायरी अभिशप्त है; इस खानदानी डायरी को यह शाप है कि अगर कोई इसको पढ़ लेता है, तो विपत्ति आ सकती है और अगर इसे पत्नी पढ़ लेती है, तब तो पति अगले दिन का सूरज नहीं देख पाएगा, उसकी मृत्यु हो जाएगी।" यह पढ़ते ही पत्नी घबरा गई, वह रजिस्टर वहीं फेंककर, कागज़ के दोनों टुकड़ों को मुट्ठी में बाँधे हुए नीचे अपने कमरे की ओर दौड़ी। पसीने से लथपथ जैसे ही वह अपने पति के पास पहुँची, उसने देखा कि पति के मुँह से झाग निकल रही है। उसने रोते हुए, चिल्लाते हुए अपने पति को झकझोड़ा, बार-बार हिलाया; पति के प्राण-पखेरू उड़ चुके थे। पत्नी पति के सीने से लिपटी दहाड़ें मार रही थी। पत्नी की हथेली के पसीने में खानदानी डायरी के पन्ने के वे दोनों टुकड़े घुलते जा रहे थे, हथेली कागज़ से छूटती स्याही से कुछ नीली हो चली थी। बेटा वहाँ अवाक् खड़ा सब कुछ देख रहा था, लेकिन कुछ भी समझ नहीं पा रहा था।

ashutoshdwivedi1982@gmail.com

लड़कियाँ

- श्री भरत चन्द्र शर्मा
राजस्थान, भारत

लड़कियाँ जन्म लेती हैं
अनचाहे मेहमानों की तरह
माँ के ज़ार-ज़ार आँसुओं में
तमाम अपशकुनों, अवरोधों के बीच
साबूत बच निकलती हैं
करमजली लड़कियाँ।
लड़कियाँ खेलती हैं
गुड्डे-गुड्डियों के खेल
सुनती हैं परी-कथाएँ
ताड़ लेती हैं दादी-नानी की उस दृष्टि को
जो किसी मकड़जाल में उलझकर
कथा के सूत्र खो बैठी है।
रस्सी कूदते-कूदते लम्बोतरी हो जाती हैं लड़कियाँ
बिना खाद-पानी के हरी-भरी हो जाती हैं लड़कियाँ।
यूँ तो लड़कियाँ खुल जाएँगी गठरियों की तरह
अनखुली रह जाएगी उनके पहले प्यार की गाँठ
जो साड़ी के पल्लू में नहीं बँधी है
बंद है मन की सात परतों के भीतर
जिसमें धरती का सबसे बड़ा भूकंप छिपा है।
लड़कियाँ जानती हैं
जहाँ वे रहती हैं पिता का घर है
जहाँ वे भेज दी जाएँगी पति का घर होगा
लड़कियाँ जानती हैं
उनका घर कहीं नहीं है।
लड़कियाँ बुनती हैं
सपने भविष्य के
जैसे कोई माँ बुन रही हो
गर्भ में पल रहे शिशु के मोज़े।
लड़कियों को विकल्प सुझाए गए
दड़बे की मुर्गियों के
सोने के अंडे देने वाली मुर्गियों के
लड़कियों को दाल बराबर वाले समीकरण पढ़ाए गए।
लड़कियाँ जो गूँज रही थीं
ऋचाओं की तरह
समिधाओं की जगह होम दी गईं।

bcsharma06@gmail.com

नमन

- **डॉ. मंजु पुरी**
शिमला, भारत

मृत्यु निश्चित है
जाना अटल है।
पर अपने जाने को भी
दूसरों को मकसद दे जाए।
उस आधुनिक भीष्म को शत-शत नमन है।।
तुम्हारा गमन तो सिर्फ़ आभास है
तुम जैसे भारती के वीरों का तो
धरा के कण-कण में निवास है
सच कहूँ
तो तुम्हारा संपूर्ण जीवन
खुली किताब
और

अटल इतिहास है।
शख्सियत थे तुम ऐसी
तभी तो राजनीति के संत कहलाए
राजनीति करते-करते भी तुम
सब दलों पर छाए
पक्ष हो या विपक्ष हो
सबके दिलों को तुम भाए
तुम्हारे अलौकिक व्यक्तित्व से
सब नतमस्तक हो आए।
दूसरों के प्रेरक
अपने कर्मों से इतिहास रचने वाले
आधुनिक भीष्म को शत-शत नमन है।
दिन दूर नहीं खंडित भारत को
पुनः अखंड बनाएँगे
गिलगित से गारो पर्वत तक
आज़ादी पर्व मनाएँगे
इस हूँकार से शत्रुओं को भयभीत करने वाले
हे अटल
तेरे सपनों में हर रंग हम लाएँगे।
माँ भारती को शिरोमणि बनाएँगे।
अंतिम यात्रा पर जाने वाले
भारत माँ के लाल
तेरे गीतों का, कायल हुआ सारा संसार
तुम्हें शत शत नमन
हे ईश के अवतार।।

hindi.manju@gmail.com

जी हाँ, मुझे कवि होने पर गर्व है

- श्री हलीम आईना
कोटा, भारत

जी हाँ -
मैं कविता बुनता हूँ
सामाजिक सरोकार के
ताने-बाने के साथ
सूर, तुलसी, कबीर... की मानिन्द।

जी हाँ -
मैं कविता चुनता हूँ
जगत रूपी समुन्द्र से
मोती निकालते
किसी कुशल गोताखोर के जैसे।

जी हाँ -
मैं कविता धुनता हूँ
प्रकृति रूपी सुन्दरी के हाथों
प्रेम से चलती कमची से
जीवन रूपी कपास की तरह।

जी हाँ -
मैं कविता रचता हूँ
चाक पर घूमती मिट्टी से
दीये, मटके, सुराही, खिलौने... बनाते
किसी अनुभवी कुम्हार के जैसे।

जी हाँ -
मैं कविता बोता हूँ
सम्पूर्ण मानवता के कल्याण हित
लहलहाती फ़सल को देख
किसी हर्षित किसान की तरह।

जी हाँ -
मैं कविता चुनता हूँ
अपने आस-पास बिखरे
कंकड़-पत्थर, फूल-पत्ती... से
बाग के माली की मानिन्द।

जी हाँ -
मैं अच्छी कविता सुनता हूँ
कवि-शायर से ससम्मान
सूफ़ी, सन्त, पैग़म्बर साहब... की तरह।

haleemaaina@gmail.com

तो देश होता है

- श्री विजयानंद विजय
बिहार, भारत

जब दुरभिसंधि में
बुरी तरह घिरा अभिनंदन
अपने प्रबल रण-कौशल से
दुश्मनों का चक्रव्यूह बेधकर
अपनी मातृभूमि को चूमता है
तो देश होता है।

जब परदेश में
नस्लभेदी प्रहार पर
खेल के मैदान में डटे
खिलाड़ी का जुनून
और आसमान छूता है
तो देश होता है।

जब जीत की खुशी में
आसमान में तिरंगा लहराता है
राष्ट्रधुन बजती है
और किसी सिराज की आँखों से
गर्व और खुशी के आँसू बरसते हैं
तो देश होता है।

हड्डियों तक को
गला देने वाली ठंड में
कांधे पर बंदूक टाँगे
सैनिक जब सरहदों पर
बर्फ़ीली हवाओं को झेल जाता है
तो देश होता है।

शीत-ताप-बारिश झेलकर
जब किसान
कुदाल की कलम से
खेतों में सृजन-गीत रचता है
और भूख-प्यास त्यागकर
अपने रक्त-स्वेद से सींच
मिट्टी से सोना उपजाता है
तो देश होता है।

जब पाँव में चुभते कंकड़ों पर
लहूलुहान पंजों से चलते हुए
पहाड़ का सीना चीरकर
श्रम-कौशल और उद्यम भरे हाथ
विकास की सड़क बनाते हैं
तो देश होता है।

जब दाँव पर हो इंसानियत
तब कोई अब्दुल
दोस्ती का फ़र्ज़ अदा करने
पिता बलराम बनकर
बेटी कुसुम की डोली विदा करता है
तो देश होता है।

जब सपनों के पंख लगाए
आसमान फ़तह करती कोई नीरजा
मुश्किल हालातों में
सैकड़ों जानों की हिफ़ाज़त को
अपनी जान पर भी खेल जाती है
तो देश होता है।

अपनी उम्मीदों का आसमाँ बनाने
जब कोई ज़ोया
बादलों का सीना चीर
बोईंग विमान उड़ाकर

दुश्मनों के दिल दहलाती है
तो देश होता है।

जब प्रचंड जयघोष के साथ
गाँव की गलियों से गुज़रती है
तिरंगे में लिपटी किसी शहीद की अर्थी
और पोते को फ़ौज में भेजने की
फ़ख्र से कसम खाते हैं पिता
तो देश होता है।

विरोधाभासों के दौर में भी
जब राष्ट्रीय अस्मिता के रक्षार्थ
कौम और मज़हब की दीवारें तोड़कर
एकजुटता की मिसाल बन
करोड़ों हाथ एक साथ मिल जाते हैं
तो देश होता है।

जब शान से लहराता है तिरंगा
और कोटि-कोटि कंठों से उच्चरित
जन-गण-मन के समवेत स्वर से
कदम जहाँ-के-तहाँ जाते हैं ठहर
तब देश होता है।

जब हवाएँ सुनाएँ
आज़ादी के तराने
और ज़र्रे-ज़र्रे में गूँजे -
''मेरा रंग दे बसंती चोला''
तो वतन पर मर-मिटने की चाहत में
रगों में उठती है खून की लहर
तो देश होता है।

vijayanandsingh62@gmail.com

पतंग

- श्री राजेन्द्र ओझा
रायपुर, भारत

धागों के सहारे उड़ती
दूर आसमान तक,
धागों के सहारे ही कटती,
काटती धागों के ही सहारे
पतंग दूसरी,
सहारे धागों के ही
पकड़ी जाती,
धागों के सहारे ही
उलझ जाती।

पतंग अकेली कुछ नहीं
पतंग धागों से ही।

छूती आसमान
तब भी खुश होते
बच्चे-बूढ़े,
कटती
तब भी होते खुश,
भीड़ बना नाच उठते।
गाते हो-हो का समूह गान
पकड़ने या लूटने
दौड़ पड़ते सब एक साथ।

पतंग किसी को कभी
नहीं मिलती पूरी
फट जाना ही उसका अभिष्ट है,

खुश है फिर भी वह,
अपने को कर नष्ट
उसने जन्म दिया एक समूह को,
कुछ न पाने पर भी
खुश होना
और उछलना
सिखाया उसने
उस समूह को।

ozarajendra30@gmail.com

प्रतिबिम्ब

- श्री देवेन्द्र मिश्रा
उत्तर प्रदेश, भारत

जगमगाती झालरों से सजी,
ये ऊँची इमारतें...
हज़ारों सितारों से रोशन
बारातों में,
चमकती साड़ियों और रेशमी कुर्तों के बीच...
मदमस्त नाचती खुशियों के किनारे...
इक जगमगाती रोशन रंगीन छतरी की छांव;
सम्हाले,
मैली-कुचैली-सी धोती में लिपटी,
मैले चेहरे पर छलकीं मजबूरी की बूँदें
पोंछती वो औरत...
उसकी सूखी छाती से चिपटे...
सूखे होंठ, भूखा पेट लिए,
दो नन्हीं टिमटिमातीं आँखों में,
ये जगमग रोशन झालरों की चकाचौंध,
प्रतिबिम्ब बनाती है,
दूध और गोल-गोल रोटी का...

dev00953@gmail.com

गंगा : स्वयं एक कविता

- सुश्री प्रज्ञा तिवारी
नोएडा, भारत

गंगोत्री की निर्मल धारा में
जो कल-कल छल-छल शब्द बहे
काशी की पावन लहरों में
पल-पल विश्वास का अर्थ मिले।
कहीं अतुकांत-सी बहती हो
कहीं छोर नहीं, कोई ओर नहीं
कहीं बहती हो हर तुक में तुम
हर शब्द, अर्थ का भाव लिए।

गंगा तुम स्वयं वो कविता हो
जिसमें कविता को अर्थ मिले।।

हर माझी की साझी हो तुम
हो हर किसान की उगी फ़सल
मन की गठरी बंजारों की
उत्सव की हो तुम चहल-पहल।
हर रूह समाई है तुममें
धारा तुम्हारी है स्वयं संत
हर जड़-चेतन की जननी तुम
हो तुम ही आदी, तुम हो अंत।

गंगा तुम स्वयं वो जीवन हो
जिसमें जीवन का अर्थ मिले॥

हर काया तुममें है मलंग
हर माया का तुम ही हो रंग
हर आँचल तुमपर फैला है
मन की हर मन्नत तुम्हारे संग।
निर्भय मन के निर्गुण ये तीर
कोमल मन-सा निर्मल ये नीर
तुम पर बहकर, खुलकर, बंधकर
रुख़ बदले भाव, मानो समीर।

गंगा तुम भावावली हो वो
जिसमें हर मन का भाव मिले॥

गंगा तुम वैसी सरगम हो
जीवन धुन का जो सृजन करे।
धरती के शब्द बहे जिसमें
गंगा तुम शब्दावली हो वो
जल, थल, नभ सबके पीर हरे
जो अविचल, निश्छल बही चले।

गंगा तुम स्वयं वो वसुधा हो
जिसमें वसुधा का अर्थ मिले॥

pragyatiwarywrites@gmail.com

बेदखल हो जाना

- श्री भूपेन्द्र कुमार त्रिपाठी
बलरामपुर, भारत

बड़ी देर तक
वक्त टांकता रहा
दिन के दरख़्त पर
तब दिन का घट जाना
ज़रूरी था...

भागती दुनिया की
तेज़ रौशनी से
आँखें चुभने लगीं
तब कहीं सो जाना
ज़रूरी था...

ज़िंदगी भर
इंसान बन के
सीझना मुश्किल रहा
तब पत्थर बन जाना
ज़रूरी था...

बड़े फ़र्क से
लोगों ने आँकी
हैसियत हमारी
तब बेदखल हो जाना
ज़रूरी था...

bhupgmltripathi@gmail.com

मज़दूर

- श्री राजीव मणि
पटना, भारत

हम बुड़बक-बकलोल हैं साहेब!
निठाह अनपढ़-गँवार
कुछ समझ ही नहीं सकते
और ना समझना चाहते हैं
बस मौन रह जाते हैं
तुम्हारे सवालों पर कि
कितने दिनों से भूखे हो?
कितने दिनों से पैदल चल रहे हो?
कहाँ जाना है तुम्हें?
और तुम कैमरा से
उतारते हो हमारी फ़ोटो
दिखाते हो पूरी दुनिया को
यह भी कभी पूछ लेते हो कि
कैसा लग रहा है तुम्हें?

पर क्या बताएँ साहेब,
उत्तर ही कहाँ होता है
हम अनपढ़-गँवार लोगों के पास।
बस मुँह देख लेता हूँ
अपनी पत्नी-बच्चों का
और वे हमारा मुँह ताकते हैं
फिर चल देते हैं अपने
गंतव्य की ओर
तुम से बिना कुछ कहे,
बिना कुछ माँगे,
बिना कुछ शिकायत किए।
तुम से क्या कहता साहेब?
तुम तो खुद ही खाते हो
हमारे फ़ोटो की रोटी!

तुमसे क्या माँगता साहेब?
तुम तो खुद ही ज़िन्दा हो
हमारे फ़ोटो की टी.आर.पी. पर!
ए.सी. कमरे में बैठ
चार लोग कर लिया करते हो चर्चा
और दिखाते हो लोगों को
कि तुम्हारे भरोसे ही हम
ज़िन्दा हैं!
कभी हमारी तरह भी रहकर देखो साहेब
मिल जाएगा तुम्हें
अपने सभी प्रश्नों के उत्तर
कभी पैदल भी चला करो,
कभी भूखे भी रहा करो,
फिर नहीं पूछना पड़ेगा कि
कैसा लग रहा है?
तुम बीमार हो साहेब,
हाँ, ज़्यादा ही बीमार
नहीं तो...
हमारी पीड़ा को देखकर ही
समझ लिए होते
हमारे चेहरे को देखकर ही
सब जान जाते
तुम्हारी पढ़ाई में यह
शामिल नहीं था क्या?
फिर तो ना पढ़कर हमने
अच्छा ही किया साहेब
किसी का दुख तो
कम-से-कम नहीं बढ़ाते
ऐसे सवाल पूछकर!
तुम्हें भी पता है
हम मज़दूरों की शक्ति,
नहीं चल सकता कोई देश
हमारे बिना।
हम जड़ हैं साहेब,
जो ज़मीन के अंदर धँसे हैं
लेकिन तुम्हें ज़िन्दा रखते हैं
फिर भी तुम सत्ता की हवा पाकर
इठलाते हो, इतराते हो!
हम मज़दूर हैं साहेब,
मजबूर नहीं
जहाँ भी रहते हैं
रचते हैं इतिहास।

navpallav2@gmail.com

विमुक्त घुमंतू

- श्री व्यंकट धारासुरे
हैदराबाद, भारत

दूर से आवाज़ आने पर
खड़े हो जाते हैं कान बेवजह
खून जम जाता है
भय के मारे,
यह डर स्थायी है
पूर्वजों की विरासत में
अकारण सताए जाने पर
अब भी धड़कनें होती हैं तेज़
भय के मारे।

vyankatdharasure@gmail.com

तुम गाँव ही बने रहना

- डॉ. योगेन्द्र अग्रवाल
जयपुर, भारत

जब मैं वापस लौटूँ शहर से थककर,
तुम थाम लेना मुझे अपनी बाँहों में
क्या खोया क्या पाया - यह हिसाब
मत माँगना,
बस कस कर गले लगा लेना मुझे,
और हो सके तो माफ़ कर देना,
क्योंकि, जब मुझे तुम्हारे पास होना था
मैं बाँध रहा था अपने भविष्य की नींव
तुम्हें कमतर समझ, छोड़ा था मैंने
पर, कमतर तुम नहीं मैं निकला
जीत नहीं पाया मैं, जो जीतना चाहता था
पर, तुम्हारी मिट्टी से बना यह जिस्म,
अभी हार मानने को तैयार नहीं है,
बहुत कुछ करने का तो
अब वक़्त नहीं रहा,
पर करने को अभी भी बहुत कुछ है
लेकिन वादा है मेरा तुमसे
मैं वापस आऊँगा,
सुना है, यह जिस्म जिस मिट्टी से बना है,
उसी में मिल जाए तो अच्छा होता है
इसलिए बस एक गुज़ारिश है तुमसे,
जब मैं वापस आऊँ सफ़र से
तुम मुझे समाहित कर मुझे अपने आप में
मेरी मिट्टी को अपनी मिट्टी में
जगह दे देना
और
जब मैं वापस लौटूँ शहर से थककर,
तुम गाँव ही बने रहना, शहर मत हो जाना।

yogendraagrawal21@gmail.com

प्रकृति जीवन दाता प्राण-वायु का दान किया करती है

- श्री गंगाधर शर्मा 'हिन्दुस्तान'
राजस्थान, भारत

प्रकृति जीवन दाता, प्राण-वायु का दान किया करती है।
वनस्पति सबको जीवन रस रक्त प्रदान किया करती है।
सत्य ही वृक्ष वासिनी है प्रकृति, करती वृक्ष में क्रीड़ाएँ।
कभी पुष्प में हास, कभी पक्षी में गान किया करती है।।
हम वृक्षों संग प्रेम करें, प्रकृति प्रेम करेगी हमसे।
हम वृक्षों संग नहीं लड़ें, प्रकृति नहीं लड़ेगी हमसे।
प्रकृति कभी किसी का ऋण नहीं रखती है।
जो व्यवहार करेंगे हम, प्रकृति वही करेगी हमसे।।
जब भी चले कुल्हाड़ी वृक्ष पर, हृदय विलाप करता है।
मानव अपने जीवन को स्वयं संतप्त करता है।
बेघर की छाया को हर कर पक्षी का नीड़ उजाड़।
अहा! निरीह वृक्ष की हत्या कर मानव महापाप करता है।।
शेष अभी भी जीवन है सीमित प्रताप के बल से।
कर पूजा अभिषेक वृक्ष निर्मल गंगाजल से।
कानन-कानन ही बना रहे, सभी जीव निर्भय विचरें।
मृत्यु अटल है, टल सकती है प्रायश्चित के बल से।
जब धरती पर पर्याप्त भाग वन का होगा।
सार्थक दिवस वही मानव जीवन का होगा।।

gdsharma1970@gmail.com

जंगल और मनुष्य

- डॉ. अमरनाथ प्रजापति
कर्नाटक, भारत

हे मानव!
पेड़-पौधे, जीव-जंतु, नदी, पहाड़, झरना
सब परिवार हैं मेरे
हम सब साथ रहते हैं मिल-जुलकर सदियों से
हँसते-मुस्कुराते, झूमते-गाते।

हे मानव!
तू मुझसे दूर हो गया धीरे-धीरे
अपने को सभ्य समझने लगा
मैंने भी हमेशा तेरा भला ही सोचा
आखिर तू मेरा ही परिवार था कभी
तेरे पूर्वज
खेलते थे हमारी ही गोद में
आज भी हैं वैसे ही थोड़े
जिन्हें तू असभ्य कहता है अब।

हे मानव!
तू दुश्मन बन गया मेरा धीरे-धीरे
हत्या करने लगा मेरे ही परिवार के सदस्यों का
कितने पेड़ काट दिए
कितने पशु-पक्षियों को मार दिए
हर मौत पर चुप रहा मैं
मैं सिमटता गया
माफ़ करता गया।

हे मानव!
तूने अलग जंगल बनाना शुरू किया
अपनी सुविधाओं का
ऊँची-ऊँची इमारतों, मशीनों, हथियारों को
अपना परिवार समझने लगा।

हे मानव!
तू मेरे विरुद्ध युद्ध करने लगा
मुझे कमज़ोर करने लगा
मेरे खिलाफ़ साज़िश रचने लगा।

हे मानव!
अब सहन नहीं होता तुम्हारी स्वार्थपरता
तुम मजबूर मत करो युद्ध के लिए मुझे
ध्यान रखो
यह युद्ध अपने ही परिवारों के बीच होगा
मारे जाएँगे अपने ही लोग
नष्ट हो जाएगा अपना परिवार, कुल, वंश
जैसे कि महाभारत में हुआ
अपने कुल का विनाश!

हे मानव!
विकास के अंधेपन में
इस सुन्दर दुनिया को नष्ट मत करो।

amar20ballia@gmail.com

नो मेन्स लैंड

- श्री संजय भारद्वाज
पुणे, भारत

मंटो का
टोबा टेकसिंह रहा हो;
अतीत के जर्मनी,
आज के कोरिया, सूडान
या फिर
सोवियत संघ के
विखंडन से जन्मे
चेचेन्या, जॉर्जिया
अज़रबैजान,
इन और इन जैसे
अनेक मुल्कों के बीच
घरों को खाली कर
तैयार होता है 'डेड एण्ड'
गाँव का नाम पोंछकर
खड़ी कर दी जाती है
'नो मेन्स लैंड'

सोचता हूँ -
जहाँ चलती थीं साँसें
जहाँ खिलती थीं फ़सलें
जहाँ तोरण चढ़ा था कोई
जहाँ बधाइयाँ गायी गईं कई,
जहाँ आँखें हुई थीं चार
जहाँ सजी थी पहली रात
जहाँ विलाप भी था साझा
अकाल में हर पेट रहा था आधा।

जहाँ घरवाली की कोख में
आई थी चाँद-सी बेटी और
मेरे कंधों से दुगने चौड़े
कंधोंवाला मेरा बेटा,
जहाँ भूरी गैया से बच्चे-बछड़े
पाते थे ममता साथ-साथ,
जहाँ नाली की काई से भी
था घर-जैसा अनुराग।

वे सुअर जो मंडराते थे
पंछी जो फड़फड़ाते थे
बुलबुल-सुग्गा जो गाते थे
परिचित थे, हमजोली थे,
पेड़-पौधे, पाहन, कंकर
डंडा-गिल्ली, कंचे-गिट्टे
दूब, घास, नदिया, बगिया
सारे साथी थे, टोली थे।

एक घर कंडा जलाने से
आँच लेती मोहल्ले भर की रसोई
अपना भले न होता
पराया न था कोई,
पंछी को दाना,
चींटी को आटा
प्यासे को पानी
पथिक को मिलती थी छाछ।

खटपट-कलह भी थी
मनमुटाव का भी था राज
तब भी एक साथ थी दीवाली
एक साथ मनता था फाग।

एक की बहू-बेटी
गाँव की बहू-बेटी थी
समृद्ध एकाध था पर

हर घर में रोटी थी,
ठाकुर जी सबके थे
'राम-राम' सबका था
बच्चे-बूढ़े सबके सब थे
आसीस-परनाम सबका था।

जहाँ की हवा में
आदमियत की खुशबू
आज भी बहा करती है,
भला बताओ -
वो जगह 'नो मेन्स लैंड'
कैसे हो सकती है?

writersanjay@gmail.com

अपने काँटों से लगे, और पराये फूल

- **प्रियंका सौरभ**
हरियाणा, भारत

हाथ मिलाते गैर से, अपनों से बेज़ार।
सौरभ रिश्ते हो गए, गिरगिट से मक्कार।।
अपनों से जिनकी नहीं, बनती सौरभ बात।
ढूँढ रहे वो आजकल, गैरों में औकात।।
उनका क्या विश्वास अब, उनसे क्या हो बात।
सौरभ अपने खून से, कर बैठे जो घात।।
चूहा हल्दी गाँठ पर, फुदक रहा दिन-रात।
आहट है ये मौत की, या कोई सौगात।।
टूट रहे परिवार हैं, बदल रहे मनभाव।
प्रेम जताते ग़ैर से, अपनों से अलगाव।।
गलती है ये खून की, या संस्कारी भूल।
अपने काँटों से लगे, और पराये फूल।।
ये भी कैसा प्यार है, ये कैसी है रीत।
खाए जिस थाली, करे छेद आज के मीत।।
सीखा मैंने देर से, सहकर लाखों चोट।
लोग कौन-से हैं खरे,और कहाँ है खोट।।
राय गैर की ले, रखे जो अपनों से बैर।
अपने हाथों काटते, वो खुद अपने पैर।।
ये भी कैसा दौर है, सौरभ के कैसे तौर।
अपनों से धोखा करें, गले लगाते और।।
अपनों की जड़ खोदते, होता नहीं मलाल।
हाथ मिलाकर गैर से, करते लोग कमाल।।
अपने अब अपने कहाँ, बन बैठे गद्दार।
मौका ढूँढ, कर रहे छुप-छुपकर वो वार।।
आज नहीं तो कल बनेगीं, उनकी राह दुश्वार।
जो रिश्तों का खून कर, करें गैर से प्यार।।

priyankasaurabh9416@gmail.com

गूँगी जहाज़

- श्री लक्ष्मीकांत मुकुल
बिहार, भारत

सर्दियों की सुबह में
जब साफ़ रहता था आसमान
हम कागज़ या पत्तों का जहाज़ बनाकर
उछालते थे हवा में
तभी दिखता था पश्चिमाकाश में
लोटा जैसा चमकता हुआ
कौतूहल जैसी दिखती थी वह गूँगी जहाज़

बचपन में खेलते हुए हम सोचा करते
कहाँ जाती है परदेशी चिड़िया इस तरह उड़ती हुई
किधर होगा बयान सरीखा उसका घोसला
क्या कबूतर की तरह कलाबाज़ियाँ करते
दाना चुगने उतरती होगी वह खेतों में
कि बाज की तरह झपट्टा मार फाँसती होगी शिकार

भोरहरिया का उजास पसरा है धरती पर
तो भी सूर्य की किरणें छू रही हैं उसे
उस चमकीले खिलौने को
जो बढ़ रहा है ठीक हमारे सिर के ऊपर
बनाता हुआ पतले बादलों की राह
उभरती घनी लकीरें बढ़ती जाती हैं
उसके साथ
जैसे मकड़ियाँ आगे बढ़ती हुई
छोड़ती जाती हैं धागे से जालीदार घेरा
शहतूत की पत्तियाँ चूसते कीट
अपनी लार ग्रंथियों से छोड़ते जाते हैं
रेशम के धागे
चमकते आकाशीय खिलौने की तरह
गूँगी जहाज़ पश्चिम के सिवान से यात्रा करती हुई
छिप जाती है पूरब बरगद की फुनगियों में
बेआवाज़ तय करती हुई अपनी यात्राएँ
पूरब से पश्चिम, उत्तर से दक्षिण निश्चित किनारों पर
पीछे-पीछे छोड़ती हुई
काले-उजले बादलों की अनगढ़ पगडंडियाँ

नोट *– हमारे भोजपुराँचल में ऊँचाई पर उड़ता बेआवाज़ व गूँगा जहाज़ को लोगों द्वारा स्त्रीवाचक सूचक शब्द "गूँगी जहाज़" कहा जाता है। इसलिए कवि ने पुलिंग के स्थान पर स्त्रीलिंग शब्द का प्रयोग किया है।*

tiwarimukul001@gmail.com

बेटियाँ

- स्मृति चौधरी
उत्तर प्रदेश, भारत

वेदों की ऋचाओं पुराणों-सी,
लोक गाथाओं की आधार हैं, बेटियाँ
मंदिर में गूँजते शंखों-सी पावन,
भोर रवि मुस्कान-सी किरण हैं, बेटियाँ

दीवाली की अमावस रात में ज्योतित,
दीप की फैलती आभा-सी हैं, बेटियाँ,
होली के उड़ते गुलाल-सी सुखद,
बुराई पर दशहरे में जीत हैं, बेटियाँ

कहीं भजन मीरा के, तो कहीं
हरिवंश की रुबाइयाँ हैं, बेटियाँ,
परिवारों की समृद्ध संस्कृति,
हमारे संस्कारों की पोषक हैं, बेटियाँ

इनके होने से होती है पूर्ण, जगत जननी
सृष्टि की निर्मात्री हैं, ये बेटियाँ
ईश्वर की अनमोल कृति,
प्रकृति की अलौकिक रचना हैं, बेटियाँ।।

वीरांगना

- श्रीमती रेखा यादव
नेपाल

जागो, उठो, बनो वीरांगना
हर पल हर राह में मिलेंगे दुश्मन
आँखें मूँदे बैठी है दुनिया
रोज़ होता है चीरहरण यहाँ।
क्या घर क्या समाज
उठो सबल बनो नारियो
छम-छम करती पायल की ज़ंजीर तोड़
आत्मनिर्भर स्वावलम्बी बनो नारियो।
गर होता समाज को परवाह यहाँ तो
बहू-बेटियों का बलात्कार होता कहाँ
दुशासन का साथ देने वाले हैं यहाँ
किसको फ़रक पड़ता है किसी की पीड़ा से यहाँ।
लोक लाज के नाम पर
खुद को न जलाओ नारियो
तेरे अधिकार तुझको पुकार रहे
रहम पर नहीं अहम से जीना सीखो नारियो।
कागज़ को शर्मिन्दा न कर
पकड़ लो कलम को
शब्द को अशब्द न होने दो
कुतर्क का तर्क करो नारियो।
पापी पाप करने मन्दिर को भी छोड़ता कहाँ
न्याय को मरने न दो, पापियों को करो नंगा
आगे बढ़ बन वीरांगना
जागो, उठो बनो वीरांगना।
जागो, उठो, बनो वीरांगना
हर पल हर राह में मिलेंगे दुश्मन
आँखें मूँदे बैठी है दुनिया
रोज़ होता है चीरहरण यहाँ।
आगे बढ़ बन वीरांगना
जागो, उठो, बनो वीरांगना।

सज़ा-ए-काला पानी

- श्री अरविंदसिंह नेकितसिंह
मेबर्ग, मॉरीशस

गिनते रहे,
खरोचते रहे दीवारों पर लकीरें
वो दिन आएगा आज़ादी का
जब दीनता छूटेगी मज़लूमों की।

पाया जितना सान्निध्य उससे
बनते गए पहाड़ लंबे उम्मीदों के
पर रिहाई आती जितना भी पास उसके
नसीबों के निर्धारणकर्ता
अंतिम रेखा कछुओं की
दूर उतना ही कर देते
एकलव्यों को क्योंकि
अर्जुनों की गद्दी पर
बैठते देखना
द्रोणों को रास नहीं आता।

सज़ा-ए-काला पानी चंद पलों की
रह गई नाममात्र की
क्योंकि
कारावास वो जिसे दुःस्वप्न समझ बैठा था
रूप धारण बन रहा जीवन का यथार्थ था।

विकल्प तो हाथ उनके ही था
पौरुष-रूपी अंगूठा काट अपना
सौंपना था
गुरु दक्षिणा रूप में
या फिर...

sameernekitsing@gmail.com

सच

- श्री वशिष्ठ कुमार झमन
बों आकेय, मॉरीशस

कभी आ जाता बिन मुखौटे का
तो उससे नज़रें चुरा लेता था
भीड़ में जाना हो तो उसको
मनचाहे कपड़े पहना देता था
जाने क्यों वो मन को
ढका हुआ ही रास आता था
साए-सा चिपके रहना था उसको
पर मुझे उससे दूर रहना भाता था
ज़्यादा तंग करता, तो उसको भगा भी देता था
देता था दरवाज़े पर दस्तक बार-बार
पर मुझे ही उससे रूबरू नहीं होना था
आदत छूट गई थी शायद
सच को नंगा देखने की

vkj3007@yahoo.com

बिछड़ना लाज़मी है

- **श्री सहलिल तोपासी**
फ़्लाक, मॉरीशस

ऐसे अनचाहे मोड़ पर आकर
कभी सोचा न था
कि ज़िन्दगी में तुझसे बिछड़ना भी होगा
बिछड़ना तुझसे न मेरी ज़िद है
न मेरी आखरी तरजीह
बस खुद से खुद की नज़रें मिल सके
इतना साहस बटोरूँ।
साथ रहकर
कुछ खट्टे, कुछ मीठे, कुछ कड़वे
तो कभी कुछ अनोखे पल बीते
पर आज हर पल
हर दिन
हर रात
संग तेरे बेस्वादी लग रही है।
देखकर थक गई हूँ अकसर
अपने आपको कठघरे में
सोचा कहीं गलती मेरी तो नहीं?
आखिर कब तक तेरे झूठ के
बोझों तले रेंगती रहती?
अब अकसर मुझे चलने,
दौड़ने तो कभी उड़ने का मन करता है।
कभी तनहाई में जब गौर से देखा
चेहरे की झुर्रियाँ सिलवटें बन गई हैं
और कुछ सफ़ेद बाल
कानों के पीछे शर्मा रहे हैं।
बोए थे जो फूल हमने प्यार से
अब उनके मुरझाने का डर लगा रहता है
ऐसे अनगिनत सफ़ेद झूठों से
घिन आती है
क्रोध आता है
तुम पर नहीं
अपने आप पर
बस आईने में
अपने आप का सामना कर सकूँ
अपना पुराना चेहरा ढूँढ रही हूँ,
फ़ैसला हमारा नहीं
मेरा है, मेरा अपना है!
तुम से कुछ अपेक्षाएँ भी नहीं
कुछ आस भी नहीं!
टूटकर बिखरना मेरी नियति नहीं
इसलिए बिछड़ना
ज़रूरी ही नहीं
लाज़मी है।

seh_topassy@yahoo.com

नींव की ईंट

- श्रीमती इंदु बारौठ
यू.के

मैं नींव की ईंट हूँ,
न ही मेरा कोई अस्तित्व है
न मेरा कोई सपना है।
हाँ, पर जो चमचमाते कंगूरे हैं,
वो सब मेरे ही अपने हैं।
मैं रहती हूँ खुद को रंग-रोग़न से पोतकर
सबकी कमियों को परत-दर-परत ओढ़कर।
मज़बूत बनाती हूँ सदा, खुद को काट-छाँट कर
पता है न, सबकी हस्ती है मुझ पर ही निर्भर।
मैं ही तो संबल हूँ
मेरे अचेतन अंतर में ही तो छिपे हैं, मेरे अपने।
मुझे तो हक भी नहीं टूट जाने का।
जानती हूँ गर जो टूट गई, तो बिखर जाएँगे,
सब ये मेरे अपने।
कंगूरा बनने को तैयार है सब यहाँ
मेरा समर्पण कोई नहीं देखता।
जो दिखता है वही बिकता है यहाँ
इसीलिए तो वाह-वाही बस कंगूरा ही बटोरता है।

indu.barot@yahoo.in

माँ

- सुश्री हिमाली संजीवनी कोनार
श्री लंका

बचपन से अपने जीवन का
हर सुख हर दुख जो भी बीता
अपने दिल की सारी बातें
बाँटी मैंने माँ के साथ

माँ वह उसने ऐसा बोला
माँ ये मुझको लाकर देना
याद है मेरा तुमसे कहना
माँ तुम मेरे पास ही रहना

कभी-कभी छोटी बातों से
लड़ते थे हम यारों जैसे
लेकिन तुमने ही आकर फिर से
मना लिया मुझे बड़े प्यार से

अब जब बिस्तर पर लेटी तुम
बात नहीं मुझसे करती तुम
क्यों मुझको तड़पाती हो माँ
चलो अभी उठ जाओ न तुम

सब कुछ तुमसे कहती थी मैं
अब तक तुम संग रहती थी मैं
तुम जो मुझको छोड़ जाओ तो
वह दुख किससे बोलूँगी मैं

जल्दी आँखें खोलो न माँ
मुझको गले लगा लो न माँ
यह जग तुम बिन सूना है माँ
चलो अभी उठ जाओ न माँ

sanjeewanihimali@gmail.com

कल रात फिर बात हुई

- श्रीमती सुनन्दा वर्मा
सिंगापुर

कल रात फिर बात हुई
दादा और पापा से,
इस बार दादा ने फ़ोन मिलाया था
पापा बड़ी कुर्सी पर मेज़ के पास बैठे थे,
वीडियो कॉल थी
हम सब साथ ही थे...

तब से अब तक,
क़रीब दो बार दिन में
घर बात होती है;
घर तो वहीं होता है न
जहाँ बचपन की सभी बातें,
हरी-पीली,
खट्टी-मीठी,
तीखी-कड़वी यादों पर
मन भरकर, दिल खोलकर
हँसा, रोया और बतियाया जा सकता है?

कल कहीं से बात आ गई
सरस्वती जी के जीभ पर बैठने की।
बुआ जी कहती थीं
"हमेशा शुभ बोलो,
सरस्वती जी दिन में एक बार
तुम्हारी जीभ पर आती हैं,
और जब वह आती हैं
तो जो तुमने कहा है वही सच हो जाता है।"

तब से अब तक लगता है
सरस्वती जी अपने पास ही रहती हैं,
चूक होते ही गलत समय न बैठ जाएँ
इसकी चिंता रहती है।

दादा का ध्यान हवा
की दिशा पर रहता था
अम्मा कहती थीं,
"अगर हवा चल गई
तो मुँह वैसा ही रह जाएगा
जैसा अभी बनाए हो।"
तरह-तरह के चेहरे बनाने,
लोगों की नकल उतारने के बीच
जैसे ही अम्मा हवा की याद दिलातीं,
दादा का मुँह झट सीधा हो जाता।

"रात में अगर पढ़ने के बाद
किताब खुली छोड़ दी,
क़ायदे से बंद करके नहीं रखी
तो उसे भूत पढ़ लेगा;
पढ़ी तुमने,
याद उसे सब हो जाएगा।"

ऐसी सभी बातों पर हम
हँसते, झुंझलाते, मज़ाक उड़ाते
कभी तर्क, कभी लिखित पुष्टि की माँग कर जाते।

लेकिन सच तो यह है
कि सरस्वती जी की बगल में उपस्थिति
रहती थी दिमाग में,
एक आँख दरवाज़े के बाहर
ऊँचे पेड़ों के पत्तों पर रहती थी -
उनकी हरकत हवा का संकेत देती थी
और काम खत्म करने पर
किताब जैसे रात में
अपने आप ही बंद हो जाती थी।

सब कुछ आँखों के सामने
जैसे एक फ़िल्म की तरह चला आता है।
कल रात भर यही फ़िल्म देखी,
पर ऐसा मोड़ इसमें अचानक क्यों आ गया?
यह कैसी फ़िल्म की स्क्रिप्ट हुई?
किसने लिखी?

पता नहीं अम्मा,
क्या सब के साथ ऐसा होता है
तुम्हारे जाने के बाद से
सब में बस तुम्हारा ही चेहरा दिखता है!

पापा जब कहते हैं
"अरे, तुम्हारे बाल बड़े सफ़ेद हो रहे हैं,"
और फिर ढूँढकर यूट्यूब से
पौष्टिक तेल बनाने के तरीके का लिंक भेजते हैं;
अपने मन को मज़बूत कर, हमारे लिए मुसकुराते हैं
तो अम्मा, तुम दिखती हो।

जब दादा सर पीछे कर के
किसी बात पर हँसते हैं;
पापा का मन बदलने के लिए
दफ़्तर से लौटते हुए
ताज़े, गर्म, ख़स्ता समोसे लाते हैं
तो अम्मा, तुम दिखती हो।

जब भाभी के साथ
पापा-दादा की बातों पर
खुल के बातें होती हैं
जब पति चौके में घंटों खड़े
नया कुछ पकाते हैं
तो अम्मा, तुम दिखती हो।

जब बेटा राग देस
की तान आलाप लेता है
जब बेटी खुद चुपचाप
हाथ से उपहार बनाती है
तो अम्मा, तुम दिखती हो।

बगीचे में तुम्हारी लगाई मीठी नीम में,
रात ओढ़ी दोहर में,
बिंदी के पत्ते पर लिखी चिट्ठी में,
गिलास के नीचे रखे कोस्टर में,
मेज़ पर बिछे मेज़पोश में,
तुम दिखती हो, अम्मा।

हर जगह, हर समय
तुम दिखती तो हो, अम्मा,
बस, तुम नहीं दिखती...

sunandaverma@yahoo.com

दोहे

- **मिति भारद्वाज**
अजमेर, भारत

प्रेम हृदय निज राखिए
प्रेमी हो हर कोय
माने जो ना प्रेम को
खुद ही खुद को खोय।

माया ऐसी प्रेम की
फैली चारों ओर
बैरी बैठे साथ में
विषधर सागे मोर।

धन की हारे हार ना
ना धन जीते जीत
होवे असली जीत जो
पावे साचो मीत।

मृगतृष्णा-सी प्रीत का
होवे कोई ना सार
प्रीति साची जो बने
मरू में जल की धार।

mitibhardwaj@gmail.com

हाइकु

कोरोना

- **श्रीमती कल्पना लालजी**
वाक्का, मॉरीशस

बन राक्षस
जाने कहाँ से आया
यह कोरोना।

लगवा लिया
कोरोना का टीका तो
मिली है शांति।

बच के रहो
फैलाती संक्रमण
दूषित हवा।

गाँव-शहर
हैं अमीर-गरीब
आज समान।

धरती रोती
डूबती मानवता
कोरोना राज।

कितने गए
गिनती न उनकी
कोरोना क्रांति।

समय बुरा
अपनों से भी दूरी
कौन अपना।

कोरोना आया
सुनसान पड़ा है।
सारा जहान।

हैं आजकल
भगवान डॉक्टर
भाग कोरोना।

राह कठिन
बिगड़े हैं हालात
बच के चलें।

डर मन का
हिला गया संसार
लगा ले मास्क।

घर में बंद
तड़प उठती हैं
घुटतीं साँसें।

नहीं सुनते
घूमते हैं स्वच्छंद
निडर सारे।

रौशनदान
कर दो बंद सारे
हवाएँ डरें।

घर में बंद
हों सारे कामकाज
कोरोना राज।

है कोलाहल
केस कितने बढ़े
फैला डर है।

हैं ज़हरीली
हवाएँ आज की
डरो उनसे।

हँस ले आज
कौन जाने कल की
रब के सिवा।

हैं जेलों जैसे
आज के घर-द्वार
राम-बचाए।

व्हाट्सएप्प
है बना संगी-साथी
दोस्त हैं एप्प।

खोज-खबर
लेते रहें सबकी
हालात बुरे।

अंधकार है
सन्नाटा मौत का सा
रोती है रात।

सुनसान हैं
गलियाँ सारी आज
कोरोना जो है।

बंदी मानव
घूमे चारदीवारी
झाँके बाहर।

खाली सड़कें
परिंदा न दिखता
सन्नाटा आज।

समझा करो
निकलो न बाहर
बैठा कोरोना।

बड़े तो बड़े
छोड़ा न बच्चों को भी
उसने आज।

डरपोक ने
मानव सारे आज
घर घुसने।

है प्रश्न बड़ा
सुलझाएँ ये कैसे
समझाओ तो।

खेलकूद भी
हो गए सारे बंद
करें अब क्या?

मिले जुले हाइकु

- श्रीमती अंजू घरभरन
कात्र बोर्न, मॉरीशस

जीवन में रंग
इमली की खटास
भर दे स्वाद।

पशु पक्षी हैं
सृष्टि के भिन्न अंग
स्वीकारो रंग।

बूंद जो गिरी
समायी सागर में
अस्तित्व कहाँ।

चाँद रात को
ले डूबा कुछ ऐसे
शाम शरमाई।

इंसान चल
दुनिया रंगमंच
भूमिका निभा।

पिया है दूर
कोयल की है कूक
आग लगाती।

लड़खड़ाता
बच्चा पिता संभाले
माँ बलिहारी।

अहम न दे
रास्ता व मंज़िल
भटके इंसान।

कदम बढ़ा
हौसले बुलंद तू
वीर देश का।

ज़मीन बाँटी
फ़लक को बाँटो तो
हिम्मत जानें।

है माँ का प्यार
दुआओं का भंडार
स्वार्थ कहाँ?

भाई बहन
रिश्ता है नाल का
टूटे न कभी।

साफ़ सफ़ाई
है दूरी अनिवार्य
कोरोना काल।

चरित्र होता
व्यक्ति का गहना
रखो संभाल।

व्हाट्सएप्प
ने जोड़ा दुनिया से
मेरा आँगन।

सूर कबीर
गए साहित्य छोड़
बिन लिखे।

हिंदी समृद्ध
है विपुल भंडार
गर्व अनूठा।

लक्ष्मी है धन
मिले परिश्रम से
व्यर्थ न गँवा।

पिया के संग
अनमोल हैं यादें
जीती उनमें।

तुलसी रचे
मानस कालजयी
समकालीन।

फूल व काँटे
सच्चाई जीवन की
दोनों स्वीकार।

मिलकर ही
खोजें क्षितिज नया
धरा आसमान।

पूर्वज आए
भाषा और संस्कार
साथ थे लाए।

हाथ की रेखा
कर्म बिन है व्यर्थ
समझ अर्थ।

संध्या कर तू
आत्मा हो पोषित
बनें संस्कारी।

टकराकर
चट्टानों से लहरें
लौटीं निराश।

खूबसूरती
लिए है खिसकता
दिन हौले से।

सीता समायी
धृति से थी जन्मी
काल का चक्र।

सरल मन
झुक पी ले गरल
सह तड़प।

कड़ी धूप में
हरि ॐ नाम तेरा
है घना साया।

anjumonga@hotmail.com

मुक्तक

हिंदी भाषा व साहित्य सेवी जर्मन विद्वानों पर मनहरण मुक्तक

- श्री सुरेश कुमार श्रीचंदानी
अजमेर, भारत

मैक्स मूलर
ऋग्वेद को कहा है धरा पे पुरातनतम,
इसी से ऋग्वेद का मान है अति उत्तम।
कई प्राच्य धार्मिक ग्रन्थों के रहे सम्पादक,
संस्कृत भाषा के इतिहास के थे लेखक।
भाषा विज्ञान व प्राच्य विद्या के रहे विद्वान,
मोक्ष मुल्ला नाम के रूप में पाई थी पहचान।

हेलमट हाफ़मन्न
भारतीय प्राचीन साहित्य के थे विशेषज्ञ,
बौद्ध दर्शन के भी बन गए महाप्रज्ञ।
धान्यकटक की मौलिकता पर किया शोधन,
काल चक्र के मूल मंत्र का किया लेखन।
पूर्व सैलिया अपरासैलिया चेटिका प्रथा,
धान्यकटक में पल्लवित हुए थे सर्वथा।

लोथर लुत्ज़े
हिंदी बंगाली ब्रज साहित्य के थे विशेषज्ञ,
तुलनात्मक साहित्य में भी रहे थे प्रज्ञ।
सुमित्रानन्दन की एक नज़्म पर दी टिप्पणी,
लगी वो गाटफ़्रीड बेन्न को मनहरणी।
पढ़ी अज्ञेय की सोनमछली नामक नज़्म,
माना उसे कला की पूर्ण दृष्टि का उद्यम।
प्रभाकर माचवे की पालतू है स्वांगपूर्ण,
कविता का चरम पाया था विद्वता पूर्ण।

विलहम राव
पाणिनी के व्याकरण में पा ली थी निपुणता,
वेदों के ज्ञान में भी प्राप्त की थी प्रवीणता।
वैदिक इन्द्र के क्या होते हैं विविध स्वरूप,
बीस कथाओं में खोजना चाहा था सुरभूप।
इन्द्र जन्म से लेके मेष बनने की कथाएँ,
कई संदर्भों में खुलतीं नाना अवस्थाएँ।

गुस्ताव रोथ
जैन बौद्ध धर्म हिंदी प्राकृत के थे विद्वान,
संस्कृत बंगाली शिल्पशास्त्र के थे सुजान।
श्वेताम्बर बताते चावल दानों की उपमा,
हिब्रू के मैथ्यु ल्यूक कथा का जैसा फरमा।
हिंद यूनान ईरान रहे हैं काफ़ी आसन्न,
तभी यहाँ साहित्य में सजा वैश्विकपन।

पॉल थीम
हिंद यूरोप के आदि तारीख़ पर दिए मत,
ऋग्वेद व व्याकरण में पाई महारत।
पाणिनी व वेद नामक रची एक किताब,
मित्र व अर्यमा पर रची कृति है नायाब।
ऋग्वेद के वरुण का किया चरित्र-चित्रण,
किया नभ सिंधु निशा शपथ में रमण।

हर्मन बर्जेर
पढ़ी बेरशस्की पढ़ी थी यायावरों की भाषा,
पूर्ण की संस्कृत के पठन की अभिलाषा।
जाना हिंद की भाषाओं का उद्गम व विकास,
प्रकट की हिंद हेतु सम्पर्क भाषा की आस।
आज़ादी के बाद हिंदी युग उज्ज्वल बताया,
अंग्रेज़ी-सा बनने को गलत ठहराया।

बर्नहार्ड कौलवर
जानी तारीख़ी भूगोल मेवाड़ी भाषा की तान,
धर्मशास्त्र भाषाशास्त्र का पाया खास ज्ञान।
कल्हण की राजतरंगिणी का किया पठन,
कश्मीरी शपथ उत्सवों का देखा योजन।
हिंद ईरानी काल की प्रथा को दोहराया,
रोम संस्कृति में भी ऐसा दृष्टांत पाया।

हैन्स पीटर स्मिथ
प्राचीन हिंद के इतिहास का क्या है साहित्य,
संस्कृत अवेस्ता संग जानते थे उसे नित्य।
ऋग्वेद साहित्य की करी गहन छानबीन,
वृहस्पति उद्भव की जाननी थी ज़मीन।
व्रर्त व तल मत का किया सूक्ष्म निरीक्षण,
सम यूनानी मतों ज्यों किया नय चित्रण।

क्लौस वागेल
जाने बौद्ध धर्म तिब्बत ज्ञान के तत्त्व सूक्ष्म,
जाना काव्य कोश आयुर्वेद का काल क्रम।
लेकर ऋतु वर्णन और चंद्रिका के भेद,
रेखांकित किए इनके तात्त्विक विच्छेद।
सत्य है कौन-सी कालिदास के जीवन कथा,
पढ़ प्रबंध चिंतामणि मिटाई वो व्यथा।

अलब्रक्ट वेजलर
हिंद का व्याकरण था विशेषज्ञता का क्षेत्र,
भारतीय दर्शन पर केन्द्रित किए नेत्र।
अष्टाध्यायी को कहा प्रसिद्ध अनुपम कृति,
देती विज्ञानाविज्ञानिक पदों की जुगति।
पाणिनी अपनाते जादुई धार्मिक विचार,
विश्लेषी व्याकरणविदों में होकर शुमार।

shrichandani3@gmail.com

गीत

आस के पंछी

- **श्री सूर्य प्रकाश मिश्र**
वाराणसी, भारत

अपनी ज़िद में वो मॉनसून हुए
खूब बरसे या फिर नहीं बरसे

उनका हँसकर हरा-भरा करना
चाहतों की हसीन फुलवारी
हसरतों की लता को रंग देना
अपनी आँखों में भर के पिचकारी

मन की बहकी उड़ान सहलाना
गीत में बस गए मधुर स्वर से

जब वो रूठे तो ज़िन्दगी की नदी
जो भरी थी उतार पर आई
मन में रोपी थी भावना की फ़सल
सूखने की कगार पर आई

थक गईं पथ निहार कर आँखें
कोई बादल नहीं चला घर से

झर गए शाख से हरे पत्ते
दाग हर घाव का उभर आया
गिर गए फूल उड़ गई खुशबू
दर्द अलगाव का नज़र आया

कब से प्यासे हैं आस के पंछी
नेह की एक बूँद को तरसे

surya.misra1958@gmail.com

ग़ज़ल

हम भूल जाते हैं

- **डॉ. भावना कुँअर**
ऑस्ट्रेलिया, सिडनी

सितम जो भी किए उसने सभी हम भूल जाते हैं।
जो गहरी चोट है दिल पर लगी हम भूल जाते हैं।

उसे उसके गुनाहों के लिए हम कुछ नहीं कहते।
जो उसने दी है आँखों में नमी हम भूल जाते हैं।

भले मस्जिद में, मंदिर में, कलीसे में वो रहता हो।
अगर वो साथ हो, तो तीरगी हम भूल जाते हैं।।

हमें फुरसत नहीं मिलती कि खुद से बात कर पाएँ।
कभी हम याद रखते हैं, कभी हम भूल जाते हैं।।

शिकायत करके भी हमको हुआ कुछ भी नहीं
हासिल।
जो उसने दी हैं सौगातें वही हम भूल जाते हैं।।

बरसते बादलों का ग़म समझता ही नहीं कोई।
हैं आँसू उसकी आँखों के यही हम भूल जाते हैं।।

bhawnak2002@gmail.com

बस... सिर्फ़ एक...

- श्री रमेश शाह
नवी मुम्बई, भारत

(उजड़े गाँव का दृश्य)
(बूढ़े व्यक्ति का प्रवेश)

बूढ़ा व्यक्ति : अरे... कहाँ आ गया मैं...?
आवाज़ : दादाजी... आप क्या ढूँढ रहे हैं...?
बूढ़ा व्यक्ति : यह आवाज़ कहाँ से आई...?
आवाज़ : यह आकाशवाणी है...
बूढ़ा व्यक्ति : पर आप हैं कौन...?
आवाज़ : सर्च इंजन... आप के सवाल... हमारे जवाब...!!!
बूढ़ा व्यक्ति : यहाँ एक गाँव था...
आवाज़ : रामपुर...!
बूढ़ा व्यक्ति : कई छोटे-छोटे घर थे...
आवाज़ : और कई पेड़ थे...
बूढ़ा व्यक्ति : हाँ...हाँ... हरा-भरा वातावरण था... वे सब...
आवाज़ : कितने सालों बाद आए हैं आप...!!!
बूढ़ा व्यक्ति : हाँ...पर...वे सब...
आवाज़ : सब पेड़-पौधे उजड़ गए...
बूढ़ा व्यक्ति : और वे सब लोग...?
आवाज़ : पूरा गाँव उजड़ गया...
बूढ़ा व्यक्ति : पूरा गाँव उजड़ गया...? पर कैसे...? कैसे...?
आवाज़ : ऐसे...

(गीत शुरू होता है, साथ में दृश्य बदलता है।)
(गाँव, पेड़, बस्ती)
गीत :
बुझ मेरा क्या नाम रे...
नदी किनारे गाँव रे...
कोयल बोले मोरे अँगना...
ठंडी-ठंडी छाँव रे...
(रंगमंच के मध्य में हरा-भरा फूलों से लदा पेड़)
(पहले व्यक्ति का बायीं ओर से प्रवेश)

पहला व्यक्ति : मैं एक फूल तोड़ लूँ...?
मुन्ना : *(जो एक पैर से विकलांग है)* फूल से तो फल बनेंगे... मत तोड़ो...
पहला व्यक्ति : एक से क्या फ़र्क पड़ता है... बस... सिर्फ़ एक...
मुन्ना : *(रोकने की कोशिश)* अरे ... रुको... रोको... *(फूल तोड़कर भागता है।)*
(तभी दूसरे व्यक्ति का दाहिनी ओर से प्रवेश)

दूसरा व्यक्ति : मैं एक फल तोड़ लूँ...?
मुन्ना : फल से तो बीज बनेंगे... मत तोड़ो...
दूसरा व्यक्ति : एक से क्या फ़र्क पड़ता है...? बस... सिर्फ़ एक ...
मुन्ना : *(रोकने की कोशिश)* सुनो... सुनो...
(फल तोड़कर भागता है)
(तीसरे व्यक्ति का बायीं ओर से प्रवेश)

तीसरा व्यक्ति : मैं एक पत्ता तोड़ लूँ...?
मुन्ना : पत्ते तोड़ोगे, तो पेड़ मर जाएगा...
तीसरा व्यक्ति : एक से क्या फ़र्क पड़ता है... बस... सिर्फ़ एक ...
मुन्ना : *(रोकने की कोशिश)* अरे... एक-एक करके तो... *(पत्ता तोड़कर भागता है)*
(चौथे व्यक्ति का दाहिनी ओर से प्रवेश)

चौथा व्यक्ति : मैं एक डाली काट लूँ...?

मुन्ना : इसमें जान है... नए पत्ते आएँगे... मत काटो...

चौथा व्यक्ति : एक से क्या फ़र्क पड़ता है... बस... सिर्फ़ एक ...

बूढ़ा व्यक्ति : एक-एक करके इन लोगों ने तो गाँव के सारे पेड़ काट दिए...

आवाज़ : न सिर्फ़ पेड़ काटे... पानी का भी दुरुपयोग किया... बिजली भी नहीं बचाई...

बूढ़ा व्यक्ति : फिर क्या हुआ....?

आवाज़ : पेड़-पौधे कटे... तो पंछी उड़ चले... जानवर भाग गए... खेत उजड़ने लगे... *(लोग बादलों को निहारने लगते हैं... बारिश की राह देखते हैं...)*

गीत : अल्लाह मेघ दे... पानी दे... पानी दे... गुड़धानी दे...

बूढ़ा व्यक्ति : प्रकृति के साथ खिलवाड़ करोगे तो... वो प्रकोप तो करेगी ही न...

आवाज़ : वही हुआ... बारिश नहीं हुई... सूखा पड़ा... पीने तक के लिए पानी नहीं रहा... लोग

गाँव छोड़कर जाने लगे...

गीत : चल उड़ जा रे पंछी कि अब ये देश हुआ बेगाना... चल उड़ जा रे पंछी........

आवाज़ : पूरा गाँव खाली हो गया... हरा-भरा गाँव रामपुर रेगिस्तान में बदल गया...

बूढ़ा व्यक्ति : पर मुन्ना... मुन्ना कहाँ गया...?

आवाज़ : भूखे-प्यासे मुन्ने के लिए यहाँ रहने का कोई मतलब ही नहीं था... धीरे-धीरे चलते-चलते

वह जा बसा बस्तीपुर में...

बूढ़ा व्यक्ति : बस्तीपुर... पर लोग तो सब जगह... मतलब...

आवाज़ : वहाँ ऐसा नहीं हुआ...

बूढ़ा व्यक्ति : पर कौवे तो सब जगह काले ही होते हैं न...!

आवाज़ : सभी जगह कौवे ही हों... ऐसा भी तो नहीं है न... हंस भी तो हो सकते हैं न....?

बूढ़ा आदमी : मतलब...?

आवाज़ : इस गाँव में पेड़ की पूजा होती है... देखो यहाँ के रीति-रिवाज़... *(पेड़ की पूजा हो रही है....)*

गीत :

पेड़ तेरी जय हो....
पत्तों की भी जय हो....
फूल की भी जय-जय हो...
जड़ की भी जय-जय हो...

बूढ़ा व्यक्ति : यहाँ के लोग फल... फूल...

आवाज़ : तोड़ते हैं... पर पेड़-पौधों का नुकसान करके नहीं...

बूढ़ा व्यक्ति : और लकड़ी....?

आवाज़ : सिर्फ़ सूखे पेड़ों की...

बूढ़ा व्यक्ति : पर कभी काटने की नौबत आ ही पड़ी तो...?

आवाज़ : तो दस पेड़ लगाने के बाद ही एक पेड़ काटते हैं...

बूढ़ा व्यक्ति : वाह... क्या बात है... पर मुन्ना....?

आवाज़ : वह देखो... वहाँ... वह रहा मुन्ना... यहीं आ रहा है... यहाँ आकर कितना खुश है मुन्ना...!!!!

(मुन्ना आ पहुँचता है)

मुन्ना : दादाजी आप... रामपुर से बस्तीपुर में...

बूढ़ा आदमी : हाँ... तुझे ढूँढते-ढूँढते... मुन्ना... यहाँ के लोग कितने अच्छे हैं... बेवजह पेड़-पौधे नहीं काटते...

मुन्ना : यह तो कुछ भी नहीं... यहाँ हर लड़की... अपने बचपन में ही... घर के आँगन में पेड़ लगाती है...

बूढ़ा आदमी : हाँ... यह तो देख रहा हूँ...

मुन्ना : जैसे-जैसे लड़की बड़ी होती है... पेड़ भी बड़ा होता है... फिर एक दिन उस लड़की की शादी होती है...

बूढ़ा आदमी : और लड़की पराए घर जाती है...

मुन्ना : पता है... विदाई के वक्त लड़की अपने परिजनों को अपने लगाए पेड़ के बारे में क्या कहती है....?

लड़की 1 : माँ... मैं ये घर छोड़कर जा रही हूँ...

लड़की 2 : और घर छोड़ने के दर्द को महसूस करती हूँ...

लड़की 3 : यही दर्द पंछियों का न हो...

लड़की 4 : यही दर्द जानवरों का न हो...

सभी लड़कियाँ (एक साथ) : इसलिए इस पेड़ की पूरी-पूरी हिफ़ाज़त करना...

गीत :

बाबुल तुम बगिया के तरुवर...
हम तरुवर की चिड़िया...
उड़ जाएँ तो लौट न आएँ...
ज्यों मोती की लड़ियाँ...

आवाज़ : पेड़ उस लड़की की पहचान है...

बूढ़ा आदमी : बिल्कुल... जैसे शरीर और आत्मा...

मुन्ना : शरीर जा रहा है... पर आत्मा यहीं है...

बूढ़ा व्यक्ति : वाह मुन्ना वाह...

आवाज़ : पेड़ तो एक प्रतीक है... यहाँ के लोग पानी बचाते हैं... ऊर्जा बचाते हैं...

पेड़ 1 : यही कारण है कि हम एक से दो हो गए...

पेड़ 2 : दो से चार...

पेड़ 1 : चार से आठ...

पेड़ 2 : प्रगति... हर पल प्रगति...

व्यक्ति 1 : क्योंकि यहाँ के लोग पर्यावरण की सुरक्षा करते हैं...

व्यक्ति 2 : मतलब कंज़र्वेशन ऑफ़ नेचर....

व्यक्ति 3 : इसके लिए वेस्ट मैनेजमेंट करते हैं...

व्यक्ति 4 : थ्री 'आर' फ़ॉर्मुला

सभी व्यक्ती : थ्री 'आर' फ़ॉर्मुला.....

व्यक्ति 1 : रीसाइकल.... जैसे इस्तेमाल किए हुए पेपर को गलाकर नया पेपर बनाना...

व्यक्ति 2 : रीयूज़.... जैसे इस्तेमाल की हुई चाय की पत्ती या फूल को खाद की तरह उपयोग में लाना....

व्यक्ति 3 : रीन्यू..... जैसे वाटर हार्वेस्टिंग कर पानी बचाना.... प्लांट्स लगाना...

सभी व्यक्ति : सेव वाटर.... सेव प्लांट्स.... इट इज़ ए साइकल.... गिफ़्टड बाय नेचर....
(तालियाँ)
(आवाज़ रंगमंच पर आकर....)

आवाज़ : बंद करो ये तालियाँ...
दो 'आर' अभी बाकी हैं....
थ्री आर नहीं... 5आर फ़ॉर्मुला.....

सभी लोग : 5आर फ़ॉर्मुला .....?????

पेड़ 1 : रीफ़्यूज़... मना करें....
जैसे प्लास्टिक और थर्मोकोल के लिए ज़ोर देकर मना करें....

सभी लोग : हर नॉन बायोडिग्रेडेबल चीज़ों को

मना करें....

पेड़ 2 : रीज्यूस..... हर कन्वेंशनल सॉर्स ऑफ़ ईनर्जी का प्रयोग कम करें.... जैसे... इलेक्ट्रिसिटी.... गैस....

सभी लोग : क्योंकि ये एक्ज़ोस्टिबल हैं... मतलब... धीरे-धीरे कम होते-होते खत्म हो जाएँगे....

पेड़ 4 : ...नॉन कन्वेंशनल सॉर्सस इस्तेमाल करें...

मुन्ना/दादा जी : जैसे सोलर ईनर्जी .... वाटर ईनर्जी.... विंड ईनर्जी....

बस... सिर्फ़ एक बार शुरुआत करनी है.....
बस... फिर क्या...
प्रकृति के साथ रहेंगे
प्रकृति से बात करेंगे
बस सिर्फ़ एक बार शुरुआत करनी है...
तो करेंगे... हाँ हाँ ...
अवश्य करेंगे

(समाप्त)

ramiya2205@gmail.com

कैंची और बंदूक

- डॉ. सुनील गुलाबसिंह जाधव
नांदेड़, भारत

दृश्य एक

(शहर नांदेड़ - एक सड़क के किनारे कटिंग सलून में दो कुर्सियाँ, एक रेडियो, टी.वी., एक टेबल, कैंची, कंघी, सामने आईना और कुछ सलून का सामान आईने के पास रखा हुआ है। मिलिट्री से रिटायर होने के बाद गोविंद सलून चलाता है। एक दिन एक ग्राहक के बाल कैंची से काट रहा है। रेडियो पर देशभक्ति का गीत चल रहा है। अचानक वह अपने-आप को सीमा पर दुश्मनों पर गोलियाँ चलाता हुआ पाता है। बम-गोलियों की आवाज़ें आ रही हैं। देशभक्ति का गीत धीमा चलने लगता है।)
(प्रकाश गोविंद पर धीरे-धीरे तीव्रतर होने लगता है।)

ग्राहक : गोविंद जी, कहाँ खो गए? *(चुटकी बजाकर सावधान करता है।)*

गोविंद : कहीं नहीं, बस ऐसे ही *(और कैंची से बाल काटने लगता है। कैंची की आवाज़ कच कच कच कच कच)*

ग्राहक : गोविंद जी, आप तो मेरे बाल ऐसे काट रहे हैं, जैसे कोई दुश्मनों की गर्दन उड़ाता है।

गोविंद : मुझे हर बाल सीमा पार देश के दुश्मन और गद्दार लगते हैं। इसीलिए मैं कैंची ऐसे चलाता हूँ कि जैसे कोई दुश्मनों पर गोलियाँ दाग रहा हो। हर कटकर गिरता हुआ बाल मुझे गिरते हुए दुश्मनों की याद दिलाता है।

ग्राहक : लगता है... आप में तो दुश्मनों के खिलाफ़ कूट-कूटकर गुस्सा भरा हुआ है।

गोविंद : हाँ.. सही कहा तुमने! मुझ में आज भी दुश्मनों के खिलाफ़ गुस्सा कूट-कूटकर भरा हुआ है।

कोई मेरे देश के खिलाफ़ बुरी नज़र उठाकर तो देखे, उखाड़ लूँगा उन आँखों को, खींच लूँगा ज़बान को। एक बार भारत के लाल को आज़मा के तो देखें। साहब, मैं देश के साथ समझौता नहीं कर सकता! कोई बुरी नज़र डाले, कोई बुरी बात करे, तो मेरी आँखें गुस्से से लाल हो जाती हैं।

(कैंची अपना काम, 'कच कच कच कच कच' की आवाज़ करती जा रही है।)

ग्राहक : गोविंद जी, ज़रा टी.वी. तो चला देना। सुबह की ताज़ा खबरें सुनते हैं।
(गोविंद टी.वी. चलाता है। समाचार में हेडलाइन दिखाया जा रहा है।
"सीमा पर आतंकवादियों का अचानक हमला हुआ और भारत के 18 जवान शहीद हुए।" समाचार देखकर गोविंद का गुस्सा सातवें आसमान पर चढ़ जाता है।)

गोविंद : मेरे हाथ में आज गन होती, तो अभी सीमा पर जाकर उन आतंकियों को नेस्तनाबूत कर देता। तुम कायर आतंकवादी, छिपकर वार करते हो। तुमने धोखे से हेमराज और सुधाकर को मार डाला। दम है तो मुझसे आकर लड़ो। मैं युद्ध के मैदान में तुम्हारा इंतज़ार कर रहा हूँ। आओ...!
(गोविंद की आँखें लाल सुर्ख हो गई थीं। उसकी कैंची ने अब और भी भयानक और रोद्र रूप धारण कर लिया था।
'कच कच कच कच कच कच कच कच कच कच'
उसका गुस्सा ग्राहक के बालों पर टूट पड़ा था। जब बालों की कटिंग हो चुकी, तो उसका गुस्सा कुछ कम हो गया। उसने अपनी कैंची टेबल पर रख दी। ग्राहक की आँखें लगातार उस कैंची को देख रही हैं। वह कैंची नहीं मशीन गन थी। जिसने सारे दुश्मन का खात्मा कर दिया था।)

ग्राहक : गोविंद जी, यह क्या कर रहे हैं? दुश्मनों का सारा गुस्सा मुझ पर क्यों निकाल रहे हैं? और यह कैंची.. इसे परे हटाओ... मुझे इससे अब डर लग रहा है। नहीं... अब मुझे और बाल नहीं कटवाने हैं। मैं तो चला..।

गोविंद : ओफ़्फ़ोह! मुझे माफ़ करना.. मैं भूल गया था कि मैं सीमा पर नहीं हूँ।

ग्राहक : मतलब... मैं समझा नहीं।

गोविंद : मैं असल में मिलिट्री में था। आज से 18 साल पहले की बात है। मैं जोशीला जवान था। मुझमें देशभक्ति कूट-कूटकर भरी हुई थी। जब भी दुश्मनों ने सीमा पर बुरी नज़र डाली, मैंने उनका नामो निशान मिटा दिया था। मेरी बंदूक से निकलने वाली हर गोली दुश्मन के सीने में जाकर ही दम लेती थी। गोलियाँ मेरा प्रत्येक आदेश सुनती थीं। ऐसा कभी नहीं हुआ कि मेरी गोली चली हो और खाली गई... ऐसा कभी नहीं हुआ। मैंने उस समय अनेकों सैनिकों को ढेर किया था। माफ़ करना मैंने अपना गुस्सा तुम्हारे बालों पर निकाल दिया।

ग्राहक : आप माफ़ी क्यों माँग रहे हैं? माफ़ी तो मुझे माँगनी चाहिए। देश के प्रत्येक

सिपाही का सम्मान करता हूँ। इन सिपाहियों के कारण ही तो हम इतने सुरक्षित हैं। खुले में साँस ले पा रहे हैं। वे हमें इस बात का अहसास तक नहीं होने देते कि हम कभी खतरे में थे या हैं। हम पर चलने वाली गोली को इस देश का सिपाही अपने सीने पर लेता है और हमारी रक्षा करता है। मैं तुम्हें सैल्यूट करता हूँ। *(सैल्यूट करता है।)*

गोविंद : धन्यवाद आप का! आप हमारी इतनी इज़्ज़त करते हैं। आप जैसों के कारण ही हमें बल मिलता है। सैनिक का आत्मविश्वास दुगना होता है। सैल्यूट तो मुझे करना चाहिए। *(सैल्यूट करता है।)* हम जितनी बार सीमा पर दुश्मनों का खात्मा करते हैं, वे बेशर्मों की भाँति उतनी ही बार अपना सर उठाते हुए दिखाई देते हैं। हमारे बाल भी तो ऐसे ही हैं। प्रत्येक बाल में मुझे देश का दुश्मन नज़र आता है। मैं सीमा पर तो नहीं जा सकता, पर अपना गुस्सा इन बालों पर निकाल लेता हूँ।

ग्राहक : गोविंद जी, अब पूरी बात मुझे समझ आ गई है। यह कैंची.. आम कैंची नहीं है। यह मशीन गन है। यह मशीन गन आपके हाथों में आकर बेकाबू हो जाती है। जब तक सारे बाल कट न जाएँ, शांत नहीं होती है।

गोविंद : *(कुछ गुनगुना रहा है।)* याद आ रही है। तेरी याद आ रही है।.. जान जा रही है।

ग्राहक : गोविंद जी, अचानक किसकी याद आ रही है आपको?

गोविंद : मुझे अपनी पत्नी की याद आ रही है। वह न होती, तो शायद मैं न होता। उसने हर पल मेरा विश्वास बढ़ाया। वह मेरा ग़ुरूर थी। जब मैं उसे पहली बार देखने गया था, तो उसने तुरंत हाँ कर दिया था। जब हमारा विवाह हुआ, मैंने उससे पूछा, मैं तो कोयले से भी काला हूँ और तुम चाँद-सी खूबसूरत, फिर भी तुमने मुझे ही पसंद क्यों किया? तुम मुझे इनकार भी तो कर सकती थीं। पर मुझे कैसे पसंद कर लिया? पता है तब उसने क्या कहा,... "मैंने तुम्हारा रंग नहीं देखा था। लोहे की तरह मज़बूत और चौड़ा... और मिलिट्री में हो। मेरे बचपन का सपना था कि मैं किसी मिलिट्री वाले देशभक्त के साथ विवाह करूँ। जो रात-दिन जागकर हमारे देश की रक्षा दुश्मनों से करते हैं और हम उनके बलबूते पर निश्चिंत और चैन की नींद सो पाते हैं। आप हमारे रक्षक हैं। मेरे लिए तुमसे बढ़कर और कौन सपनों का राजकुमार हो सकता है।"

ग्राहक : मैं आपकी राजकुमारी की पूरी कहानी सुनना चाहता हूँ। क्या आप मुझे सुनाएँगे?

गोविंद : हाँ, क्यों नहीं! यह एक लम्बी कहानी है। क्या तुम्हारे पास इतना समय है कि तुम मेरी पूरी कहानी सुन सको?

ग्राहक : हाँ.. है न! जब तक आपकी पूरी कहानी मैं सुन न लूँ मैं यहाँ से नहीं जाऊँगा। आप बताइये?

गोविंद : तो सुनो... हमारी पहली मुलाकात ... *(फ़्लैशबैक...)*

(संगीत के साथ दृश्य-परिवर्तन)

दृश्य दो

(1995 का कश्मीर, जवान एक सड़क किनारे खड़ा था। मिलिट्री बस कुछ फ़ासले पर खड़ी है। वे एल.ओ.सी. की ओर जा रहे हैं। कुछ समय के लिए रुके हुए हैं। टूरिस्ट बस से टूरिस्ट उतर रहे हैं। उसी में से एक सुंदर लड़की उतरकर उस जवान की ओर बढ़ती है।)

मानसी : *(हाथ में गुलाब का फूल लिए)* जय हिंद सर!

सिपाही : जी, जय हिंद!

मानसी : क्या मैं आपको यह गुलाब का फूल दे सकती हूँ?

सिपाही : *(मुस्कुराते हुए)* हाँ, क्यों नहीं। दीजिए।

मानसी : *(फूल हाथ में देते हुए)* जी, धन्यवाद! मुझे आप पर गर्व है। आप मेरे हीरो हैं!

सिपाही : *(मुस्कुराते हुए)* मैं और हीरो, वह कैसे? मुझसे तो कोयला भी गोरा लगता है। और मैं फ़िल्मों में एक्टिंग भी नहीं करता, तो फिर मैं आपका हीरो कैसे हुआ? ज़रूर आपको कोई गलतफ़हमी हुई होगी। *(गुलाब का फूल लौटाते हुए)* यह गुलाब आप उसे दीजिए, जिसे आप ढूँढ रही हैं।

मानसी : *(सिपाही का हाथ पीछे धकेलती हुई, हँसती हुई)* मुझे कोई गलतफ़हमी नहीं हुई है। सच्ची आप ही मेरे हीरो हैं। और आप पर मुझे गर्व है।

सिपाही : समझा नहीं।

मानसी : आप मेरे ही नहीं, मेरे देश के हीरो हैं। आप देश के सिपाही हैं। रात-दिन जागकर देश की रक्षा करते हैं। तब ही हम जाकर चैन की नींद सो पाते हैं। आप नहीं होते तो पड़ोसी आतंकवादी देश को बर्बाद कर चुके होते। आप ही के कारण आज देश सुरक्षित है। देश में खुशियाँ हैं। आज जो बच्चों के चेहरों पर खुशी देख रहे हैं, आप ही के कारण है।

सिपाही : जी, धन्यवाद! क्या मैं आपका नाम जान सकता हूँ।

मानसी : मेरा नाम मानसी है।

सिपाही : धन्यवाद मानसी! और मेरा नाम गोविंद है। आज तक मुझे इस प्रकार से किसी ने गुलाब का फूल नहीं दिया। मैंने कभी सोचा भी नहीं कि... मैं भी किसी के गर्व का पात्र हो सकता हूँ.... किसी के लिए हीरो हो सकता हूँ। हीरो तो फ़िल्मों में होते हैं। गोरे और दिखने में एकदम स्मार्ट.... जिनकी एक झलक पाने के लिए लड़कियाँ मर मिट जाएँ। ऐसा हीरो तो मैं नहीं हूँ। पर देश का सच्चा सिपाही हूँ।

मानसी : सबके लिए अलग-अलग हीरो होते हैं। हाँ, कुछ लड़कियाँ फ़िल्मी हीरो की एक झलक पाने के लिए मर मिटती हैं। पर मैं वैसी नहीं हूँ। मुझे फ़िल्मों के पर्दों पर दुश्मनों से समाज की रक्षा करने वाले हीरो की बजाय... असली हीरो अधिक पसंद है। बचपन में जब मेरे ननिहाल में नक्सलवादी घुस आए थे..... तब सारे गाँव में भय से लोग काँप उठे थे। ऐसे में एक जानबाज़ सिपाही ने अकेले ही उनसे लोहा लिया। और देखते-ही-देखते सारे नक्सलियों को मार गिराया। उस दिन वह नहीं होता, तो गाँव के मुखिया और उनके साथ कई लोग मारे जाते। उसने हमारे लिए जान दे दी, पर गाँव

पर आँच तक नहीं आने दी। तब से मिलिट्री में, देश के सिपाही मेरे लिए हीरो थे... हैं... और हमेशा रहेंगे।

सिपाही : मैं पहली बार ऐसी लड़की देख रहा हूँ, जो मिलिट्री में, देश के सिपाही को अपना हीरो मानती है। लगता है, आप देश से बहुत प्रेम करती है। फिर से धन्यवाद!... मैं यह पूछना ही भूल गया कि आप कहाँ से हैं और यहाँ कैसे आईं?

मानसी : मैं महाराष्ट्र के नांदेड़ से हूँ। यहाँ कॉलिज ट्रिप में अपने दोस्तों के साथ आई हूँ। जैसे ही मैंने आपको बस में से देखा तो, मैं अपने आप को रोक नहीं पाई और दौड़ी चली आई।

सिपाही : क्या आप नांदेड़ से हैं?

मानसी : हाँ... नांदेड़ से हूँ। क्यों क्या हुआ?

सिपाही : कुछ नहीं। *(मुस्कुराते हुए)* तब तो हम एक ही गाँव से हैं।

मानसी : इसका मतलब आप भी नांदेड़ से हैं?

सिपाही : हाँ... *(गर्दन हिलाते हुए)* मैं भी नांदेड़ से ही हूँ।

मानसी : *(खुशी से हाथ मिलाने के लिए अपना हाथ आगे बढ़ाती है।)* मैं आपको नहीं बता सकती कि आपको यहाँ देखकर मैं कितनी खुश हो रही हूँ। मैं कितनी खुशनसीब हूँ कि अपने ही गाँव के सिपाही के सामने खड़ी हूँ और उनसे हाथ मिला रही हूँ। नांदेड़ में आप कहाँ रहते हैं?

सिपाही : मैं तहसिल भोकर का रहने वाला हूँ। और आप?

मानसी : और मैं तहसिल मुदखेड से हूँ। हम सिर्फ़ आधे घण्टे की दूरी पर रहते हैं। मैं आपके साथ एक तस्वीर खिंचवाना चाहती हूँ। *(मानसी ने अपनी सहेली को बुलाया और तस्वीर खिंचवायी।)* *(बस से आवाज़ आई - मानसी जल्दी चलो बस निकल रही है।)*

मानसी : अब मैं चलती हूँ। जब कभी नांदेड़ आएँगे तो मुझे ज़रूर बताएँ। मैं आपसे मिलने के लिए ज़रूर आऊँगी। *(अपना पता और टेलिफ़ोन नम्बर एक कागज़ पर लिखती है और सिपाही के हाथ में देते हुए कहती है)* नांदेड़ आने की खबर मुझे ज़रूर देना। चलती हूँ। फिर मिलते हैं।
(सिपाही खुशी-खुशी गीत गाता हुआ, मिलिट्री बस की ओर बढ़ता है -
कर चले हम फ़िदा जान-ओ-तन साथियों,
अब तुम्हारे हवाले वतन साथियों।
मिलिट्री बस चलने की आवाज़ आ रही है। दृश्य समाप्त होता है।)

दृश्य तीन

(स्थान-गोविंद के घर बेडरूम का दृश्य – नेपथ्य, पलंग, फूल मालाएँ, टीपॉट, ग्लास आदि।) (सिपाही गोविंद ने मानसी से विवाह कर लिया है। विवाह के बाद प्रथम रात्रि का समय। गोविंद अपने कमरे की कुण्डी लगाता हुआ भीतर आता है। पत्नी पलंग से उठकर अपने पति के चरण स्पर्श करती है।)

गोविंद : रुको मानसी, यह क्या कर रही हो! तुम्हें मेरे चरण स्पर्श करने की आवश्यकता नहीं है। तुम तो मेरी अर्धांगिनी हो।

मानसी : नहीं जी, ऐसा करने से आप मुझे मत रोकिए। यह मेरा अधिकार है। और हमारी यह संस्कृति भी है। पति देवता

के समान होता है और देवता का आशीर्वाद मेरे लिए आवश्यक है।

गोविंद : देवता...हा..हा..हा.. *(हँसता है)* यह क्या कह रही हो मानसी? मैं और देवता? यह कैसे हो सकता है? आज हम इक्कीसवीं सदी में जी रहे हैं। दुनिया ब्रह्माण्ड नाप रही है और तुम कौन-सी सदी में जी रही हो? न मैं देवता हूँ और न ही तुम देवी हो। हम सिर्फ़ मानव हैं। जो जन्म लेता है और मरता है और अपने कर्म से अपने नाम को सदा के लिए अमर करता है।

मानसी : मुझे माफ़ करना मैं कोई पुरानी सदी में नहीं जी रही हूँ। जी रही हूँ इक्कीसवीं सदी में ही। फिर भी मैं आपको देवता ही मानती हूँ और मानती रहूँगी। अभी आपने कहा, 'हम सिर्फ़ मानव हैं। जो जन्म लेता है और मरता है और अपने कर्म से अपने नाम को सदा के लिए अमर करता है।' मैं यही समझती हूँ। कर्म से ही मनुष्य देवत्व का स्थान प्राप्त करता है। और आप का देश के प्रति समर्पण भाव ही मेरी नज़रों में आपको देवता सिद्ध करता है। इसीलिए कहती हूँ, मुझे इस अधिकार से वंचित न करें।

गोविंद : *(मुस्कुराते हुए)* अच्छा बाबा ठीक है, तुम सही हो और मैं ही गलत हूँ। *(और मानसी के चरण स्पर्श करने के लिए झुकता है।)*

मानसी : *(झट से पीछे हटती हुई)* आप यह क्या कर रहे हैं जी? मुझसे ऐसे पाप न करवाओ।

गोविंद : पाप नहीं मानसी! तुम मुझे यदि देवता मानती हो, तो मैं भी तुम्हें देवी मानता हूँ। तुम मुझे देवता समझकर मेरे चरण स्पर्श करना अपना अधिकार समझती हो... तो मैं भी तुम्हें देवी मानकर चरणस्पर्श करना अपना अधिकार समझता हूँ।

मानसी : *(मानसी झट से ऊँचे टेबल पर चढ़ जाती है।)* ना जी.. मैं देवी नहीं हूँ। और आप ऐसा न करें। मुझे यह सब अच्छा नहीं लगता... और यह हमारी संस्कृति में भी नहीं है। आप ने कभी कहीं सुना कि भला पति देवता कभी पत्नी के भी पैर पड़ता है?

गोविंद : ना जी.. मैंने तो नहीं सुना... पर भविष्य में लोग ज़रूर हमारा उदाहरण देंगे। जैसे मेरे कर्म ने तुम्हारी नज़रों में मुझे देवता बना दिया है। वैसे ही मेरी नज़रों में भी तुम्हारे कर्मों ने तुम्हें देवी बना दिया है। तुम्हारे भीतर जो देशभक्ति, सद्‌कर्म, समाज-सेवा का भाव और देशभक्तों के प्रति जो प्रेम है, वही तुम्हें देवी बना जाता है। मनुष्य के भीतर का अहंकार जब समाप्त होता है। तब वह पूजनीय बन जाता है। तुम अहंकार से रहित हो, इसीलिए मेरी नज़रों में पूजनीय देवी बन गई हो। अब जल्दी से नीचे उतर आओ... मुझे तुम्हारे चरण स्पर्श करना है।

मानसी : नहीं.. मैं नहीं उतरूँगी। तुम चाहे जितने तर्क दो मैं मानने वाली नहीं हूँ। मुझसे ऐसा पाप न करवाओ। और हाँ.. जब तक तुम यह ज़िद नहीं छोड़ते, मैं नीचे उतरनेवाली नहीं हूँ।

गोविंद : *(गोविंद उसे खींचने का प्रयास करता है.. पर मानसी को पीछे सरकते देख वह भी अपनी ज़िद छोड़कर पीछे*

खिसक जाता है।) अच्छा ठीक है बाबा, तुम जीती, मैं हारा। अब तो नीचे उतर आओ।

मानसी : प्रोमिस..

गोविंद : प्रोमिस.. ऐसा नहीं करूँगा।

मानसी : तो ठीक है, मैं उतर रही हूँ। *(उतरने का प्रयास कर रही है, पर उतर नहीं पा रही है।)* मैं चढ़ तो गई हूँ, पर कैसे उतरूँ?

गोविंद : हा.. हा.. *(हँसता है)* आओ मैं तुम्हें उतार देता हूँ। *(गोविंद उसे ऊपर से नीचे उतारता है। और फिर से उसकी ओर झुकने का नाटक करता है।)*

मानसी : *(झट से पीछे हटती हुई)* तुमने प्रोमिस किया था। ऐसा नहीं करोगे।

गोविंद : हाँ बाबा.. हाँ.. प्रोमिस किया था। और मैं प्रोमिस कभी तोड़ता नहीं। मैं तो बस यूँ ही मज़ाक कर रहा था। आओ बैठो यहाँ पर..। मुझे तुमसे कुछ पूछना था?

मानसी : हाँ पूछो ना! क्या पूछना चाहते हो? मैं तो तुम्हारी ही हूँ।

गोविंद : मानसी, मेरे दिल में एक प्रश्न बार-बार उठता है कि तुम इतनी खूबसूरत हो और मैं इतना काला। फिर भी तुम मुझसे विवाह के लिए तैयार हो गई?

मानसी : बस इतनी-सी बात। मैंने तुम्हारे रंग को नहीं देखा था। मैंने तुम्हारे कर्म और भुजाओं को देखा था। तुम्हारा चौड़ा सीना, बलिष्ट भुजाएँ, ऊँचा कद, सम्पूर्ण शरीर का विकास देखा था। मेरा बचपन से एक सपना था कि मैं विवाह करूँगी, तो किसी मिलिट्री-मेन से। जो देश के लिए अपनी जान कुर्बान कर देते हैं। और हम उन्हीं के कारण चैन की नींद सो पाते हैं। वे रात दिन देश की सुरक्षा करते हैं। और उनका शरीर उनकी भुजाएँ वीर पुरुष को अभिव्यक्त करता है। मैंने मन में ठान लिया था कि जो देश के लिए अपने प्राण त्याग सकता है, वही मेरा पति हो सकता है।

गोविंद : धन्यवाद मानसी! तुम मेरे और हमारे जैसे मिलिट्री मेन, आर्मी, देश के सिपाही के बारे में ऐसा सोचती हो। सुनकर मुझे अच्छा लगा। मैं क्या,... तुम्हारे इस निर्णय पर.. सारे देश को गौरव होगा। तुम्हारा ऐसा सोचना हमारे मन में दुगुना-चौगुना साहस भर देगा। जब तुम और सारा देश हमारे साथ है, तब हमें और क्या चाहिए। तुम्हारी ये बातें मुझे हमेशा याद रहेंगी। मुझमें उत्साह का संचार करेंगी। फिर से धन्यवाद! *(हाथ पकड़ता है और चूमता है)*

मानसी : *(शरमा जाती है। बाएँ हाथ से मुँह छिपा लेती है।)*

गोविंद : शरमा गई.. आँखें खोलो मानसी। *(जब वह आँखें नहीं खोलती है, तब गोविंद गीत गाता है।)*
यशोमति मैया से, बोलो नन्दलाला,
राधा क्यों गोरी, मैं क्यों काला?

मानसी : *(आँखें खोलती हुई मुस्कुराती है।) (उत्तर में वह भी कोई गीत गाती है।) (दोनों हँसते हैं।)*

गोविंद : अच्छा मानसी, सब लोग विवाह होने के बाद हनीमून के लिए कहीं बाहर जाते हैं। तुम बताओ तुम्हें मैं कहाँ लेकर जाऊँ?

मानसी : अगर मुझे हनीमून ले जाना चाहते हो,

तो मैं तुम्हें जहाँ कहूँगी, क्या तुम मुझे वहाँ लेकर जाओगे?

गोविंद : क्यों नहीं, माँगकर तो देखो। जो न ले गया, तो फिर कहना।

मानसी : तो फिर मुझे अपने साथ सीमा पर ले जाओ हनीमून के लिए। जहाँ बम गिरते हैं और गोलियाँ चलती हैं। सैनिक जहाँ सिने पर गोलियों के मैडल प्राप्त करते हैं। बोलो मुझे वहाँ लेकर जाओगे?

गोविंद : हा..हा..हा *(हँसता है)..* अरे पगली! सीमा पर भी कोई हनीमून के लिए जाता है क्या?

मानसी : क्यों नहीं जा सकते? ऐसा कहीं लिखा है क्या? पति-पत्नी हनीमून के लिए सीमा पर नहीं जा सकते?

गोविंद : ऐसा कहीं लिखा तो नहीं, पर लोग क्या कहेंगे? और हाँ... सीमा पर आम सिविलियन का आना मना होता है। तो फिर मैं तुम्हें वहाँ कैसे ले जा सकता हूँ?

मानसी : तुमने ही कहा था कि मैं जहाँ चाहूँ वहाँ ले जाओगे। और अब...

गोविंद : हाँ.. मैंने कहा था कि... तुम्हें मैं हनीमून के लिए कहाँ लेकर जाऊँ? पर तुमने तो ऐसी जगह बताई जहाँ न मैं तुम्हें ले जा सकता हूँ और न ही मैं यह बात किसी से कह सकता हूँ।

मानसी : तो ठीक है, रहने दो। मुझे कहीं हनीमून-वनिमून के लिए नहीं जाना। यहीं होगी हनीमून।

गोविंद : मानसी.. तुम तो नाराज़ हो गई।

मानसी : नाराज़ होऊँ नहीं तो और क्या करूँ? ले जाना ही है, तो सीमा पर ही मुझे ले जाना। वरना नहीं। और तुमने अभी वादा किया था।

गोविंद : *(हँसते हुए)* क्यों नहीं, तुम मेरी अर्धांगिनी हो। तुम जो कहो। मैंने जो वादा किया है, वह मैं निभाऊँगा। पर दूर से ही...। चलो कल ही निकल चलते हैं। पर ठहरो! देवविधियाँ... आराध्य देव का आशीर्वाद प्राप्त करते हैं और फिर चलते हैं।

मानसी : देश की सीमा से बढ़कर और कौन-सा मंदिर हो सकता है। वहीं ईश्वर है। जहाँ हर रोज़ ईश्वर सैनिकों को अपना दर्शन दे जाते हैं और अपने साथ ले जाते हैं। चलो मुझे उसी ईश्वर के दर्शन करा देना। क्या तुम मुझे उस ईश्वर के दर्शन कराओगे?

गोविंद : क्यों नहीं... कल ही चलते हैं। चलो अपना सामान बाँध लें!

(गोविंद अपनी प्रिय पत्नी के साथ सीमा पर चला गया, जहाँ गोलियों आदि की आवाज़ नित गूँजा करती है। प्रत्येक गाँव पर वह ऐसे खुश होती, जैसे बालक खुश होता है। सच में ही गोविंद बड़ा भाग्यशाली था, जो उसे इतनी अच्छी पत्नी मिली थी। जब वे घर लौटकर आए, तब प्रिय पत्नी ने गोविंद के मस्तक को चूमा और इच्छा-पूर्ति के लिए धन्यवाद कहा।)

दृश्य चार

(स्थान-गोविंद का घर, झूला, रेडियो, कुछ खिलौने आदि।)

(गोविंद के घर एक नन्ही-सी परी का जन्म हुआ है। गोविंद उसे अपनी गोद में लिए खुशी के गीत गा रहा है।)

गोविंद : *(बालिका को गोद में लिए गीत गा रहा है।)*
"मेरे घर आई एक नन्ही परी।"
(किचन का काम निपटाकर मानसी साड़ी के पल्लू से अपने हाथ पोंछती हुई बाहर के कमरे में आती है।)

मानसी : हूँ... बाप-बेटी में खूब प्यार लुटाया जा रहा है।

गोविंद : प्यार नहीं लुटाऊँगा, तो और क्या करूँगा मानसी? मेरी बेटी जो इतनी खूबसूरत है। नन्ही-सी, प्यारी-सी गुड़िया!

मानसी : हाँ.. हाँ... ज़रा मुझे भी तो प्यार करने दो।

गोविंद : मुझे या गुड़िया को?

मानसी : धत्त... जाओ परे.. मैं तो गुड़िया के लिए कह रही थी।

गोविंद : तो फिर ठीक है।

मानसी : *(गोविंद के हाथों से गुड़िया को लेती है।)* हाँ... बेटा... माँ आ गई है। हूँ...। अपने बाबा से खूब बातें कर रही थी। कहीं तू मुझे भूल तो नहीं गई। हूँ... बोलो...। हूँ... मुझे पता है। तू मेरा ही इंतज़ार कर रही थी।

गोविंद : *(मानसी के पीछे से गुड़िया को देखता हुआ।)* थैंक यू मानसी!

मानसी : थैंक यू... किस लिए?

गोविंद : थैंक यू... इसलिए कि तुमने मुझे इतना सुंदर उपहार दिया है। इस उपहार के लिए मैं तुम्हारा आजीवन ऋणी रहूँगा। थैंक यू... वेरी मच...। *(गालों को चूमता है।)* मानसी-मानसी-मानसी... मैं तुम्हें नहीं बता सकता कि आज मैं कितना खुश हूँ। यह गुड़िया नहीं मेरा जीवन है। यह दुर्गा-लक्ष्मी सारी देवियों का रूप है। मैं कितना भाग्यवान हूँ कि भगवान ने गुड़िया जैसी सुंदर परी मेरे घर भेज दी।

मानसी : हाँ... पर इस गुड़िया का नाम भी तो कुछ रखोगे? या गुड़िया-परी कहकर ही इसे जीवन भर पुकारोगे?

गोविंद : नहीं मानसी। मैंने गुड़िया का नाम सोच लिया है। गुड़िया का नाम होगा भारती।

मानसी : भारती.. वाह!... कितना सुंदर नाम है। भारती.. भारत की पुत्री।

गोविंद : तुम्हें पसंद आया?... मुझे पता था, यह नाम तुम्हें अवश्य पसंद आएगा। लड़कियाँ देश का गौरव होती हैं। यही कारण है कि भारत को भारत माँ के रूप में पूजा जाता है। यह देश स्त्री, नारी का सम्मान करता है। *"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, तत्र...।"* स्त्री माँ, बहन, भाभी, लड़की, फूफी, चाची, मामी, नानी, दादी आदि कई रूपों में इस देश में निवास करती है। जहाँ भी स्त्री की मर्यादा का उलंघन किया गया, उस व्यक्ति, समाज को दंडित किया गया। यह उसी महान देश की भारती है।

मानसी : तुम्हारे इन्हीं उच्च विचारों एवं देश के प्रति समर्पण भाव के कारण ही आप मेरे लिए पूजनीय हैं। जहाँ समाज के एक तबके में लड़कियों के जन्म पर शोक मनाया जाता है, वहीं तुम्हारा इस तरह होना और लड़की के जन्म पर देश का गौरव मानना, मेरे लिए यह सबसे बड़ा उपहार है। मैं बहुत भाग्यशाली हूँ कि मुझे तुम्हारे जैसा पति मिला।

गोविंद : मानसी, भाग्य कुछ भी तय नहीं करता है! कर्म ही सब कुछ तय करता है। मेरे कर्मों से तुम मुझे मिली। इसीलिए मैं कहता हूँ कि भाग्य को कर्म तय नहीं करता, बल्कि कर्म ही भाग्य को तय करता है। और कर्म से प्राप्त तुम और भारती मेरा भाग्य हो।

मानसी : सही कह रहे हो तुम!... भारती अपने कर्म से जानी जाएगी। मैं इसे अपने जीवन में कर्म की प्रधानता समझाऊँगी।

गोविंद : उसी कर्म के बल पर मैं इसे बड़ा अधिकारी बनाऊँगा।

मानसी : अधिकारी नहीं। यह, तुम्हारे जैसे सेना में जाएगी। इसका जन्म एक देश भक्त के घर हुआ है, जो देश के लिए मर-मिटने के लिए हरदम तैयार रहता है। इसकी रगों में एक देश भक्त का खून दौड़ रहा है। इसीलिए यह अपने देश के लिए समर्पित, एक सच्ची देशभक्त बनेगी।

गोविंद : मानसी तुम्हारी बातें सुनकर मुझ में उत्साह का संचार हो रहा है। तुम और पतियों की पत्नियों जैसी नहीं हो, जो अपने पति का उत्साह कम कर देती हैं, जिस कारण पति अपने कर्म क्षेत्र में असफल हो जाते हैं। कहा जाता है कि प्रत्येक सफल पुरुष के पीछे एक स्त्री का हाथ होता है। वह मेरे लिए तुम हो। तुमने हर बार मेरा आत्मविश्वास बढ़ाया है। यदि तुम्हारी जैसी पत्नी सब पतियों को मिले, तो देश का भाग्य ही बदल जाए!

(कुछ समय के लिए पोज़... घड़ी की ओर देखता। "आठ बज गए समाचार का समय हो गया।" गोविंद टेबल पर रखा हुआ रेडियो चलाता है।)

रेडियो समाचार : मैं अपने बेटे, पोते किसी को भी आर्मी में नहीं जाने दूँगी। हम मध्यवर्ग के लड़कों को सिफ़ारिश और डोनेशन न होने के कारण नौकरी नहीं मिलती। आर्मी में जाते हैं, लेकिन उन्हें क्या सुविधा मिलती है? उनके पैरों में जूते तक नहीं होते। फटे कपड़े जिसके चीथड़े-चीथड़े हो गए हैं। क्या सलूक किया जाता है, उनके साथ? कई कैम्पों में ठीक से खाना नहीं मिलता। आवाज़ उठाओ तो आवाज़ दबा दी जाती है। या उसकी लाश को ठिकाने लगा दिया जाता है। तो कहीं आत्महत्या करार दिया जाता है। मैं एक स्कूल में चार सौ बच्चों को पढ़ाती हूँ। मैंने उन सब से कहा है, उसमें से कोई भी आर्मी में नहीं जाना चाहता है।" *(और रूँआसी हो जाती है। उसका बेटा शहीद हुआ था। जब पाया गया तो देखा कि न उसके पैरों में जूते थे और न ही शरीर पर कपड़े।)*

मानसी : मैं यह क्या सुन रही हूँ? क्या यह सच है?

गोविंद : मानसी सभी ऐसे नहीं होते। सरकार हमारा पूरा-पूरा ख्याल रखती है। हमें किसी भी बात की कमी नहीं होने देती। आर्मी, सैनिकों के साथ ऐसा व्यवहार मैं भी सुनता आया हूँ। कई स्थानों पर आर्मी के साथ ऐसा व्यवहार

होता है। मुझे यकीन है कि आनेवाले समय में सरकार इस दिशा में निश्चित ही कोई सही कदम उठाएगी।

(दरवाज़े पर बेल बजती है। मानसी बच्ची को गोविंद के हाथों में सोंपती हुई, दरवाज़ा खोलने के लिए जाती है।)

मानसी : माँ... तुम... इस तरह अचानक। *(गोविंद से)* माँ आई है।

माँ : क्यों मैं अचानक नहीं आ सकती? मैं तो अपनी पोती को देखने के लिए चली आई। मुझसे तनिक भी रहा नहीं गया। *(गोविंद और मानसी माँ के चरण स्पर्श करते हैं। माँ गुड़िया से बात कर रही है।)* "कैसी हो बिटिया... नानी आई है... मुझे पहचाना... मैं नानी हूँ...।"

(धीरे-धीरे मंच पर अँधेरा होता है।)

दृश्य पाँच

(मानसी और गोविंद की बेटी भारती तेरह साल की हो गई है। वह स्कूल से आते ही कपड़े-जूते उतारकर फेंक रही है।)

मानसी : अरे.. हा... हा.. भारती यह क्या कर रही है बेटा? ऐसे आते ही कपड़े-जूते उतारकर क्यों फेंक रही है?

भारती : 'माँ' जा... मुझे बात नहीं करनी...

मानसी : पर बेटा क्यों बात नहीं करनी, आखिर हुआ क्या? तू इतने गुस्से में क्यों है?

भारती : गुस्सा नहीं होऊँ तो क्या माँ... स्कूल में सब मुझसे पूछते हैं। तेरे पप्पा क्या करते हैं? तेरे पप्पा तुझसे मिलने स्कूल में क्यों नहीं आते?

मानसी : तो तू उन्हें क्या कहती है बेटा?.... कहती नहीं कि तेरी पप्पा मिलिट्री में हैं। वे साल में तीन-चार बार ही घर पर आते हैं।

भारती : कहती हूँ माँ! मेरे पप्पा देश-सेवा करने गए हैं... वे साल में तीन-चार बार ही घर आ पाते हैं। पर माँ सबके पप्पा स्कूल उनके बच्चों को लेने के लिए, कभी मिलने के लिए आते हैं। पर मेरे पप्पा नहीं आते। मुझे बहुत बुरा लगता है, माँ.. पप्पा नहीं आ सकते, तो तू मुझे पप्पा के पास ले जा। मैं उनसे पूछूँगी कि तुम मुझसे ज़्यादा देश से क्यों प्यार करते हो? तुम उसे छोड़कर मेरे पास आना नहीं चाहते। बोलो न माँ... हम कब जाएँगे?

मानसी : बेटा, पप्पा के पास जाने की कोई आवश्यकता नहीं, वे स्वयं ही आज घर लौट रहे हैं। आज ही उनके आने का खत मिला। जब तेरे पप्पा आ जाएँगे, तो उनसे जी भर कर शिकायत कर लेना.... ठीक है!

भारती : हाँ ठीक है माँ। अब की बार जब वे घर आएँगे, तो मैं उन्हें देश के पास नहीं जाने दूँगी।

मानसी : हाँ... ठीक है बेटा, ऐसा ही करना, पर तुझे पता है तेरे पप्पा देश-सेवा करने जाते हैं। वे यहाँ ज़्यादा रुक नहीं पाएँगे। उन्हें वापस लौटना ही पड़ेगा। मुझे भी उनकी बेहद याद आती है, पर मैं उन्हें रोकती नहीं। बेटा मुझसे और तुझसे बढ़कर.... उनके लिए... देश-सेवा है।

भारती : *(गर्दन हिलाती हुई)* माँ यह देश-सेवा क्या होता है?

मानसी : बेटा, जब कोई दुश्मन हमारे देश पर बुरी नज़र डालता है, खूनी मशीनों से गोलियाँ चलाता है, तब वे अपना सीना आगे करते हैं और हमारी रक्षा करते हैं। कई देश के जवान उन गोलियों से शहीद भी होते हैं। वह देश-सेवा है।

भारती : बुरी नज़र क्या होती है माँ?

मानसी : देश के दुश्मन जब पाप की भावना, गलत इरादे से हमारे देश में घुसते हैं और बेकसुर लोगों को बंदूक से, बम से उड़ा देते हैं। और यह सब करके उन्हें आनंद आता है। यही बुरी नज़र है। तेरे पापा देश को ऐसे लोगों से बचाते हैं।

भारती : यह देश क्या होता है माँ?

मानसी : देश... हम जहाँ रहते हैं, वह हमारा देश है। जहाँ हम जन्म लेते हैं, खेलते-कूदते हैं और पीढ़ियाँ बनती जाती हैं। जहाँ हमें जीवन जीने की सम्पूर्ण स्वतंत्रता है। हमें कोई रोक-टोक नहीं। वही हमारा देश है। इस देश को दुश्मन बरबाद करना चाहते हैं। हमारी ज़मीन हमसे छीनना चाहते हैं।

भारती : मैं अपनी ज़मीन छिनने नहीं दूँगी। मैं भी पापा जैसे इस देश की रक्षा दुश्मनों से करूँगी। माँ मैं बड़ी होकर पापा जैसी बनूँगी और देश-सेवा के लिए जाऊँगी।

मानसी : हाँ... बेटा.. क्यों नहीं। मेरी भी इच्छा है कि तू अपने पापा जैसे देश-सेवा करे। मैं देश-सेवा के लिए सरहद पर जाना चाहती थी, पर हमारे देश में महिलाओं को यह अधिकार नहीं दिया गया है। पर बेटा जब तक तू बड़ी होगी मुझे विश्वास है कि देश-सेवा का मौका लड़कियों को भी दिया जाएगा।

भारती : हाँ... माँ मैं अभी से तैयारी करती हूँ। *(वह भीतर के कमरे में चली जाती है। मानसी किचन में गई है। मंच पर अँधेरा होता है और फिर कुछ पल बाद धीमे-धीमे उजाला होता है। दरवाज़े पर बेल बजती है।)*

भारती : कौन है? *(दरवाज़ा खोलती है।)* पापा तुम..! *(गोविंद के एक हाथ में कोई खिलौना है। भारती उछलकर गोविंद की गोद में चली जाती है। गोविंद भारती के भाल को चूमता है। नीचे उतारकर एकाएक)* जाओ मैं तुमसे बात नहीं करती। हमारी कट्टी है।

गोविंद : मुझे पता है बेटा... तुम मुझसे क्यों नाराज़ हो। पर मैं खास.. तुम्हारे लिए छुट्टी लेकर आया हूँ। अब की बार मैं तुम्हारे सारे शिकवे-गिले दूर करूँगा। *(खिलौना देता है और जेब से चोकलेट निकालकर देता है)* देखो मैं तुम्हारे लिए क्या लाया हूँ!

भारती : *(खिलौना और चोकलेट देखते ही खुश हो जाती है।)* थैंक यू पप्पा...!

गोविंद : बेटा आपकी मम्मी कहाँ है? कहीं दिखायी नहीं दे रही है। हर बार वह मेरा इंतज़ार करती दरवाज़े पर खड़ी रहती है।

भारती : मम्मी... वह पलंग पर सोई हुई है।

(मंच पर धीरे-धीरे अँधेरा होता है और फिर धीरे-धीरे प्रकाश होता है। गोविंद की पत्नी वहीं लेटी मुस्करा रही

है। गोविंद उसके करीब जाता है और पलंग पर बैठता है।)

गोविंद : कैसी हो? अब की बार मेरे स्वागत के लिए तुम दरवाज़े पर खड़ी नहीं थीं। क्यों क्या हुआ? मैं छह महीने बाद घर लौट रहा हूँ, इसीलिए न? पर क्या करूँ तुम्हें तो पता ही है न, हमारी नौकरी कैसी होती है, पर अब की बार पूरे एक माह की छुट्टी लेकर आया हूँ और हाँ अपना सामान पैक कर लेना। हम घूमने चलते हैं। खूब मौज करेंगे। क्यों गुड़िया सही कहा न?

(मानसी सिर्फ़ मुस्करा रही है, कोई प्रतिक्रिया नहीं देती है। गोविंद इसे प्यार भरा गुस्सा समझकर फ़्रेश होने के लिए भीतर जाता है और फ़्रेश होकर बाहर आता है।)

गुड़िया की माँ तुम्हारे हाथ की बनी गरमा-गरम चाय मिल जाय तो थकान मिट जाए।

मानसी : तुम छह महीने बाद घर लौट रहे हो... इसीलिए मैं तुम से नाराज़ हूँ। आज मैं चाय नहीं बनाऊँगी। आज तुम ही मेरे लिए चाय बना लाना और हाँ... आज का खाना भी तुम ही बनाओगे समझे! *(प्यार भरी फटकार)*

गोविंद : जो हुक्म मेरे आका! मैं तुम्हारे लिए आज की चाय और खाना तो क्या.. सारी ज़िंदगी चाय और खाना बना सकता हूँ। बस थोड़ा इंतज़ार अभी ले आया फ़स्ट क्लास चाय और खाना... *(गोविंद भीतर किचन में चला जाता है।) (बैकग्राउंड में कोई पुराना गीत चल रहा है।)*

मानसी : भारती बेटा ज़रा यहाँ तो आना, मुझे बैठना है। *(भारती माँ को सहारा देती है। मानसी उठकर बैठती है। एक हाथ से कम्बल अपने शरीर पर लपेट लेती है। भारती पूर्ववत खेल में व्यस्त है।)*

गोविंद : *(चाय और भोजन की थाली हाथों में लेकर आता है।)* मोहतरमा... यह रही आपकी फ़स्ट क्लास चाय और स्वादिष्ट भोजन। एक बार खाओगी, तो उंगलियाँ चाटती रह जाओगी।

मानसी : तुम ही मुझे अपने हाथों से चाय पिलाओ और अपने हाथों से ही खिलाओ। मैं उठूँगी भी नहीं ऐसे ही लेटे-लेटे भोजन करूँगी।

गोविंद : जो हुक्म मेरे आका.... *(चाय पिलाता है और फिर भोजन करवाता है। भोजन होने के बाद गुलाब का फूल देने के लिए लाता है, पर पत्नी अब भी नाराज़ है। मनाने के लिए पुराना गीत गाता है। फिर भी नहीं मानती। वह जबरन उसका हाथ उठाता है और हाथ में गुलाब थमाता है। पर हाथ कोई प्रतिक्रिया देता नहीं।)*

मानसी अब हद हो गई। मैं कबसे तुम्हें मनाने की कोशिश कर रहा हूँ, पर तुम हो की मान ही नहीं रही हो। क्या मैं वापस लौट जाऊँ। एक मिनट कहीं तुम्हें लकवा ... हे भगवान ! तुमने.. आते ही मुझे क्यों नहीं बताया। *(उसे गले लगा लेता है।)*

भारती : पापा, मैं बताने वाली थी, पर माँ ने मुझे आपकी कसम दिलाई थी। दो दिन से माँ का एक हाथ और एक पैर

काम नहीं कर रहा है। *(भारती को भी गले लगा लेता है।) (मंच पर अँधेरा और फिर से उजाला होता है। पार्श्व में संगीत चल रहा है। गोविंद मानसी के हाथों की मालिश कर रहा है।)*

मानसी : अब रहने दो .. बस हुआ...।

गोविंद : मानसी... डॉक्टर ने कहा है कि हाथों और पैरों की रोज़ मालिश करूँगा, तो तुम्हारे हाथ और पैर फिर से ठीक हो जाएँगे। इसीलिए कहता हूँ मुझे रोकना मत। मुझे तुम्हारे हाथों की बनी खीर खानी है। तुम बनाओगी ना? तो मुझे मेरा काम करने दो।

मनासी : अच्छा ठीक है बाबा ... तुमसे बातों में मैं कैसे जीत सकती हूँ।

गोविंद : *(हाथों की मालिश करते हुए एकालाप। प्रकाश गोविंद पर केन्द्रित होता है।)* छुट्टियाँ अब खत्म होने को हैं। एक ओर नौकरी, तो दूसरी ओर पत्नी है। दोनों में से किसी एक का चयन मुझे करना है। मैं चला जाऊँगा, तो गुड़िया की माँ की देखभाल कौन करेगा? उसकी ओर ध्यान कौन देगा? भारती अभी छोटी है। वह कैसे कर पाएगी। *(एकालाप से बाहर आते हुए मानसी से)* मानसी ... मैंने सोच लिया है। सोलह साल मैंने देश की सेवा की है। अब जब तुम्हें मेरी ज़रूरत है, तो मुझे तुम्हारे लिए यहाँ रुकना ही पड़ेगा। मेरे वश में होता, तो मैं नौकरी के लिए चला जाता, पर अभी इस वक्त तुम्हें मेरी ज़रूरत है। मैं नौकरी छोड़ रहा हूँ।

मानसी : *(मानसी गुस्से में दूसरे हाथ से हाथ झटकती है।)* तुम मेरे लिए देश की सुरक्षा को त्याग रहे हो, मुझे यह बिल्कुल पसंद नहीं। इससे अच्छा होता कि मैं अपना शरीर त्याग दूँ। तुम इस शरीर के लिए यहाँ रुक रहे हो।

गोविंद : गुड़िया की माँ तुम ही बताओ, मैं तुम्हें इस हालत में छोड़कर कैसे जाऊँ? किसके सहारे तुम्हें छोड़कर जाऊँ? आज जब यहाँ मेरी ज़रूरत है, तब तुम कह रही हो कि "इससे अच्छा होता कि मैं अपना शरीर त्याग दूँ। तुम इस शरीर के लिए यहाँ रुक रहे हो।" मुझे यह बिल्कुल पसंद नहीं! आज तक मैं देश की सेवा पूरे तन-मन से कर रहा था। क्योंकि तुम मेरे पीछे खड़ी थीं। तुमने मेरा हौसला बुलंद किया था, तुम मेरी शक्ति हो... पर आज मैं तुम्हें इस हालत में छोड़कर नहीं जा सकता। मुझे माफ़ कर देना और हाँ किसने कहा देश की सेवा मात्र सीमा पर ही जाकर की जाती है। और भी कई मार्ग हैं देश-सेवा और सुरक्षा के। देश में स्वच्छता रखें, भ्रष्टाचार रोकें, कमज़ोरों की रक्षा आदि कई माध्यमों से मैं देश की सेवा कर सकता हूँ। *(मानसी के विरोध करने के बावजूद भी गोविंद जबरन नौकरी छोड़कर घर पर रुक जाता है। जीविका चलाने के लिए वह सलून खोलता है। दो साल खुशी से बीत जाते हैं।)*

मानसी : *(एक दिन पलंग पर मानसी लेटी है। नींद में कुछ बड़बड़ा रही है। पार्श्व में गोलियाँ चलने की आवाज़ें।)* भारती के पप्पा मैं जा रही हूँ। ईश्वर मेडल प्रदान

कर रहे हैं सैनिकों को... ये ले.. वह मर गया.. देश पर बुरी नज़र डालता है। एक गोली मुझे भी लगी। गोली नहीं मेडल मिला है। आह.. ईश्वर कितने सुंदर दिखते हैं। अलविदा भारती के पप्पा...

(धीरे-धीरे प्रकाश कम होता है।)

दृश्य छह

(भारती अब पूरे 19 साल की लड़की हो गई है। वह खूबसूरत है और कद ऊँचा है। भारती अभी-अभी कॉलिज से घर आई है।)

भारती : *(खुशी से झूमती हुई)* माँ... तू कहाँ है माँ...? देखो मुझे क्या मिला है!

मानसी : क्या मिला है बेटा? और तू इतनी खुश दिख रही है, ज़रूर कोई अच्छी बात है।

भारती : हाँ.. माँ एक खुशी की बात है। पहले तू आँखें बंद कर फिर मैं बताती हूँ।

मानसी : अच्छा बाबा बंद करती हूँ आँखें... *(आँखें बंद करने का नाटक करती है।)*

भारती : नहीं माँ तू चीटिंग कर रही है। आँखें पूरी तरह बंद कर।

मानसी : ठीक है, सच में बंद कर रही हूँ। बेटा, पर मैं... बंद आँखों से तू जो दिखा रही है, वह मैं नहीं देख सकती।

भारती : हाँ माँ मुझे पता है, बंद आँखों से कुछ दिखायी नहीं देता। पर सरप्राइज़ है। और सरप्राइज़ ऐसे ही थोड़े दिखाया जाता है। सरप्राइज़ की खुशी कुछ और होती है माँ ..

मानसी : ठीक है बेटा। पर बताओ आँखें कब खोलना है?

भारती : एक-दो-तीन अब आँखें खोलो माँ *(गोल्ड मेडल दिखाती हुई)* माँ मुझे बी.ए. में सबसे ज़्यादा अंक मिलने के कारण गोल्ड मेडल मिला है।

मानसी : वाह... *(मेडल हाथ में लेती हुई)* बेटा मुझे तुझ पर गर्व है। तूने मेरा सपना पूरा कर दिया। *(उसका माथा चूमती हुई)* बेटा, ऐसे ही आगे बढ़ती रहना और अपने मम्मी-पप्पा का नाम रोशन करना।

भारती : हाँ ... माँ... यह सब आपकी और पप्पा की सीख का ही नतीजा है। अगर तूने मुझमें समय-समय पर विश्वास नहीं भरा होता माँ... तो शायद यह गोल्ड मेडल... मैं नहीं पा सकती। तूने लड़की-लड़का भेद न करते हुए मुझे आज इस काबिल बनाया। इसका सारा श्रेय तुझे और पापा को जाता है माँ। माँ मैं चाहती हूँ कि तुम्हारे जैसे माँ और पापा हर लड़की को मिले और उनके सपनों को पूरा करते हुए लक्ष्य तक पहुँचाए।

मानसी : बेटा, तुझे मेरी कोख से जन्म देकर आज बेहद खुशी हो रही है। तुझे देखकर सभी लड़कियों के माता-पिता ऐसा ही निर्णय लेंगे। वे सभी तुम्हारी तरह अपनी बेटी को गोल्ड मेडल प्राप्त करते हुए देखेंगे।

भारती : माँ तुझे पता है, आज कॉलिज में सभी मेरी तारीफ़ कर रहे थे। प्रिंसिपल सर ने तो मुझे गुलदस्ता देते हुए कहा था, "भारती तुम हमारे महाविद्यालय की शान हो।" और मुझे स्टेज से अपना मनोगत व्यक्त करने के लिए भी कहा था।

मानसी : तो तूने मनोगत में क्या कहा बेटा?

भारती : माँ... मैंने सबके सामने आपका और पप्पा का नाम लिया और हमारे सर का नाम लेकर कहा था, "मुझे आज यह गोल्ड मेडल अपने मम्मी-पप्पा और मेरे गुरुओं के मार्गदर्शन और अच्छी पढ़ाई से मिला।" माँ सारे सभागार में तालियों की बौछार हो गई थी। पर एक बात ने मुझे निराश किया... नहीं गुस्सा आया।

मानसी : गुस्सा आया?... वह कौन-सी बात है बेटा?

भारती : माँ जब मुझसे पूछा गया कि तुम आगे चलकर क्या बनना चाहती हो?

मानसी : तब तूने क्या कहा?

भारती : मैंने कहा मैं सेना में भर्ती होकर देश-सेवा करना चाहती हूँ, तब कुछ लड़के और लड़कियाँ मुझ पर हँसने लगे। उन्हें लगता है कि मैं लड़की हूँ, सेना में नहीं जा सकती। मैंने जवाब दिया। देश-सेवा के लिए लड़की या लड़का होना ज़रूरी नहीं, बल्कि मन में देशप्रेम का जज़्बा होना ज़रूरी है। जब मैं कॉलिज से लौट रही थी, तब कुछ लड़के मुझे चिढ़ा रहे थे। तुमने कभी मच्छर मारा है, जो तुम सेना में जाना चाहती हो। वहाँ सरहद पर चौबीसों घंटे गोलियाँ चलती रहती हैं। कब कौन-सा दुश्मन किधर से घुस आए और तुम पर गोली चला दे। भारती, यह तुम्हारे बस की बात नहीं। चुपचाप किसी लड़के से शादी करके घर बसा लो और चूल्हा-चौकी सम्हाल लो। लड़की हो लड़की जैसी रहो। लड़का बनने की कोशिश मत करो। समझी... आई बड़ी सेना में जानेवाली!

मानसी : हा...कौन है वह? ज़रा उसका नाम तो बताना? कहता है,.. "लड़की हो लड़की बनी रहो।" अरे... मेरी बेटी लड़कों से क्या कम है। वह सब कुछ कर सकती है, जो लड़के कर सकते हैं।

भारती : माँ, मैं हैंडल कर लूँगी। तुझे मुझ पर विश्वास है ना? वैसे तू मुझे लड़कों से कम थोड़े न मानती है। जो मैं उनसे डर जाऊँ। माँ वे लड़के शायद भारती को भूलकर सिर्फ़ मुझे एक नाज़ुक लड़की के रूप में देख रहे हैं। उन्हें पता है कि मैं उनसे तेज़ दौड़ सकती हूँ, कूद सकती हूँ, तैर सकती हूँ, पढ़ाई में तेज़ हूँ। और एक बार जब मेरी सहेली को कुछ लड़के सता रहे थे, तब पाँच लड़कों को मैंने कराटे से पीट-पीटकर भगा दिया था। माँ ऐसे नहीं... मैं उनसे बदला लूँगी। पर अलग तरह से... सेना में भर्ती होकर। मैं दिखाऊँगी... मैं भी एक देशप्रेमी सैनिक की बेटी हूँ। मेरे रोम-रोम में देश-भक्ति के रक्त का संचार होता है। जय हिंद! जय मातृभूमि!

मानसी : बेटा मुझे भी तुझे एक खुशखबरी देनी है।

भारती : कौन-सी खुशखबरी माँ ... बताओ ना...?

मानसी : तेरी रात और दिन की मेहनत सफल हो गई बेटा!

भारती : ऐसे सस्पेंस मत रखो... जल्दी बताओ ना।

मानसी : बेटा तेरा सपना पूरा हो गया है। तूने

बी.ए. की पढ़ाई करते-करते सेना भर्ती की परीक्षा दी थी। आज उसका परीक्षा-फल भी आ गया। तेरा सेना में सिलेक्शन हो गया है। और कल ही जोइन करने के लिए कहा है। *(यह रहा तेरा सिलेक्शन लेटर)*

भारती : *(माँ के चरण छूती हुई खुशी से झूम उठती है।)* माँ आज मुझे दुगनी खुशी मिली है। आज मैं सारी दुनिया को चीख-चीखकर बताऊँगी कि लड़कियाँ भी किसी से कम नहीं होती हैं। माँ यह सिलेक्शन लेटर मेरी खुशी के साथ उनके गालों पर ज़ोरदार तमाचा है, जो लड़कियों को चूल्हा-चौकी के बराबर समझते हैं। जो लड़कियों को लड़की होने का अहसास दिलाते रहते हैं। ...छोड़ो इस बात को मैं भी क्या छोटी-सी बात को लेकर अपना गुस्सा निकाल रही हूँ। मुझे अपना गुस्सा बचाकर रखना है। देश के दुश्मनों के लिए।

मानसी : बेटा, जल्दी जा... यह खुशखबरी अपने पापा को जाकर सुना। वे बेहद खुश होंगे। उनका सपना था। जीते-जी तुझे सेना में देखे। आज उनका भी सपना पूरा हो गया है। *(मंच पर अँधेरा होता है।)*

दृश्य सात

(शहर नांदेड़ - उसी कटिंग सलून का दृश्य। गोविंद ग्राहक को अपनी कहानी सुना रहा है। ग्राहक पूरी तल्लीनता के साथ कहानी सुन रहा है।)

गोविंद : आजकल में मेरी बेटी का रिज़ल्ट आएगा। बी.ए. और सेना भर्ती का। अब वह पूरे 19 साल की हो गई है। अगले माह बीस की हो जाएगी। मेरा और मेरी पत्नी का सपना था कि वह सेना में जाए और देश के लिए अपना जीवन समर्पित करे।

ग्राहक : *(अब तक तल्लीनता से सुन रहे ग्राहक ने कहा)* गोविंद जी, आपकी कहानी सुनकर आप पर मुझे गर्व होता है। काश आप जैसा जज़्बा, आप जैसी सोच हर माता-पिता की होती। आपका सपना ज़रूर पूरा होगा, यह मेरा विश्वास है।

गोविंद : *(टी.वी. में समाचार चलता है।)* देखें तो आज क्या समाचार आता है। *(समाचार - आज सुबह तीन बजे भारतीय सेना ने सर्जिकल स्ट्राइक कर दुश्मनों के कैंप को बरबाद कर दिया।) (गोविंद खुशी से झूम उठा)* यह हुई न बात... दुश्मनों के घर में घुसकर दुश्मनों को धूल चटा दिया, हमारी सेना ने... सैल्यूट है भारतीय सेना को ...।

भारती : *(सलून में प्रवेश करती हुई।)* पापा, मुझे बी.ए. में गोल्ड मेडल मिला और मैं सेना में भर्ती हो गई। *(गोविंद भारती के भाल को चूमता है। उसकी खुशी दुगनी हो गई है।) (बैकग्राउंड में देशभक्ति का गीत चलता है। गोविंद महसूस करता है कि वह देश की सीमा पर खड़ा देश की रखवाली कर रहा है।)*

(समाप्त)

suniljadhavheronu10@gmail.com

एक हिंदी अध्यापक की व्यथा

- डॉ. सोमदत्त काशीनाथ
वाक्वा, मॉरीशस

पात्र :

सुरेश जी (तीस-पैंतीस वर्ष की आयु)	- हिंदी-अध्यापक
श्री गोरा जी (उम्र लगभग पचास साल)	- मुख्य-अध्यापक
रिया (नौ वर्ष की लड़की)	- चौथी कक्षा की एक छात्रा
जिया (नौ वर्ष की लड़की)	- रिया की जुड़वा बहन
श्रीमती सामबन (उम्र लगभग तीस साल)	- रिया और जिया की माँ
श्री सामबन (उम्र लगभग पचास साल)	- रिया और जिया के पिता
रेणुका जी (उम्र लगभग चालीस साल)	- स्कूल में काम करने वाली एक महिला चपरासी

मंच सज्जा :

स्थान : प्राथमिक स्कूल में, मुख्य-अध्यापक का दफ़्तर

वस्तु : दफ़्तर की बड़ी मेज़, चार-पाँच कुरसियाँ, एक अलमारी तथा दराज़ें। मेज़ पर रखा सुन्दर फूलदान, जिसमें कुछ गुलाब के फूल मुख्य-अध्यापक की खुशमिज़ाजी का अनुभव करा रहे हैं। एक छोर पर टेलीफ़ोन अपने एकाकीपन को मिटाने के लिए बार-बार बजने को तैयार, तो दूसरे छोर पर एक-के-ऊपर-एक रखी हुईं फ़ाइलें, मानो चिल्ला-चिल्लाकर कह रही हों - "पहले मेरा काम पूरा करो! पहले मुझपर हस्ताक्षर करो!" दीवाल से लगी हुई बड़ी घड़ी, समय को थामकर रखने का अहसास कराती। उसकी सुइयाँ थककर आराम कर रही हैं। पंखा मेज़ की दायीं ओर खड़े होकर गरमी में अपने महत्त्व का अनुभव करा रहा है। फिर भी अभी वह बन्द पड़ा है।

वेशभूषा :

मुख्य-अध्यापक हल्की नीली कमीज़ और काले रंग का पतलून पहने हुए हैं तथा गले में काले और मटियाले रंग की नेकटाई है। उनके बेशकीमती काले जूते में भी एक चमक-सी है।

हिंदी-अध्यापक भी हल्के रंग की कमीज़ और काला पतलून पहने हुए हैं। काले जूते पॉलीश किए हुए हैं, किन्तु उनमें उतनी चमक नहीं।

माता-पिता और दोनों लड़कियों ने सुन्दर-सुन्दर भड़कीले कपड़े पहने हुए हैं। माँ और लड़कियों ने गले में सोने की चेन, कानों में सुन्दर-सुन्दर सोने की बालियाँ और महंगी-महंगी घड़ियाँ पहनी हुई हैं। उन्हें देखकर लगता है कि वे या तो किसी की शादी में उपस्थिति देकर आ रहे हैं या फिर तैयार होकर वे अभी किसी विवाह-समारोह में जा रहे हैं। माँ के दाएँ कंधे पर कीमती हैंड-बैग तथा बाएँ हाथ में कीमती टच-स्क्रीन मोबाइल-फ़ोन है।

महिला चपरासी - साधारण पुराने कपड़ों में, उसके दाएँ हाथ में एक प्लैस्टिक का बक्सा है, जिसमें रोटियाँ भरकर कक्षाओं में बच्चों को दैनिक खुराक के रूप में वितरित की जाती हैं।

समय : लगभग ग्यारह बजे हैं।

प्रथम दृश्य

(मुख्य-अध्यापक अपने दफ़्तर में, कुरसी पर बैठे हैं। वे टेलीफ़ोन पर हँस-हँसकर बातें कर रहे हैं। दरवाज़ा बन्द है। अचानक दरवाज़े पर खटखटाने की आवाज़ आती है।)

मुख्य-अध्यापक : कौन है? अन्दर आ जाओ! *(मंच पर एक दंपति और दो हमउम्र लड़कियों का प्रवेश होता है। मुख्य-अध्यापक उन्हें देखकर कुछ सावधान हो जाते हैं। उनके चेहरे पर अचानक गम्भीरता आ जाती है और वे दूरभाष-यंत्र रखने के लिए उद्यत होते हैं, किन्तु थोड़ी देर के लिए ठहर जाते हैं। फिर एक लम्बी साँस लेकर अपने चेहरे की गम्भीरता को दूर करते हैं और उसपर एक हल्की-सी मुस्कुराहट लाते हैं।)*

मुख्य-अध्यापक : *(टेलीफ़ोन पर)* अच्छा मैं तुमसे बाद में बात करूँगा। अभी कुछ ज़रूरी काम है। ओके बाई! *(टेलीफ़ोन का चोंगा रखते हुए)* अरे मैडम और सर, आप दोनों ही यहाँ पधारे हैं। नमस्ते! बैठिए, कहिए मैं आपकी क्या मदद कर सकता हूँ? लग रहा है कि आप किसी ज़रूरी काम से आए हैं। क्या बात है? *(फिर उनकी दृष्टि पीछे खड़ीं जुड़वा लड़कियों पर पड़ती है।)* अरे जिया और रिया, तुम दोनों आज स्कूल नहीं आईं? अभी तो कक्षाओं में दूसरी अवधि की परीक्षाओं के लिए आवृत्ति हो रही है। व्यर्थ में स्कूल से अनुपस्थित होना अच्छी बात नहीं! *(सामने खड़े दंपति से, फिर से, बैठने का इशारा करते हुए)* कृपया आप लोग बैठ जाइए न!

(चारों मुख्य-अध्यापक की मेज़ के सामने रखी हुईं कुरसियाँ खींचकर बैठ जाते हैं। माँ एक तरफ़, पिता दूसरी तरफ़ और दोनों लड़कियाँ बीच में। जिया अपनी माँ के पास बैठी है। सभी मुख्य-अध्यापक के पीले पड़े चेहरे को देखने लगते हैं। उस सन्नाटे को भंग करती हुई रिया कहती है।)

रिया : गुड मॉर्निंग सर!

मुख्य-अध्यापक : *(चेहरे पर एक भीनी-सी मुस्कान लाते हुए)* गुड मॉर्निंग रिया!

जिया : *(कुछ हिचकिचाती हुई)* गुड मॉर्निंग सर!

मुख्य-अध्यापक : गुड मॉर्निंग जिया! तुम लोग ठीक हो न? *(लड़कियाँ कुछ कहना चाहती हैं, किन्तु वे चुप रह जाती हैं। अपनी बेटियों की हिचकिचाहट देखकर माँ बोलती है।)*

श्रीमती सामबन : गुड मॉर्निंग गोरा जी! *(बेझिझक बोलने लगती है)* दरअसल, आज शाम को

इनकी नानी का जन्मदिन है, इसीलिए हम कुछ खरीदारियाँ करने निकले हैं। वैसे पहले से, हमारा यहाँ आने का विचार नहीं था। फिर हम ने सोचा कि आज कुछ खाली हैं इसलिए...

श्रीमान सामबन : असल में, हमें आपसे कुछ बातें करनी थीं। इसीलिए आपसे मिलने आ गए।

मुख्य-अध्यापक : *(अपनी हल्की-सी मुस्कान को थोड़ा विस्तार देते हुए)* हाँ, मैं भी स्पोर्ट्स-डे के सिलसिले में आप लोगों से मिलने के बारे में सोच ही रहा था। अच्छा हुआ कि आप लोग स्वयं आ गए। हम अगले महीने स्पोर्ट्स-डे आयोजित करना चाहते हैं। इस विषय में आप लोगों से कुछ आवश्यक बातें करनी थीं। यदि आपके पास समय होगा, तो हम खुलकर स्पोर्ट्स-डे के आयोजन के विषय में भी बातें कर लेंगे। पहले आप लोग कहिए कि आप मुझे क्या बताना चाहते थे। *(कुछ देर प्रतीक्षा करके)* हाँ, कहिए कैसे आना हुआ?

श्रीमती सामबन : गोरा जी, हम स्पोर्ट्स-डे के विषय में किसी और दिन बात कर लेंगे। *(आवाज़ में एक अजीब-सी तिलमिलाहट है। बोलने की गति में और तीव्रता लाती हुई)* आज हम कुछ जल्दी में हैं। *(आँखों में उत्तेजना लाती हुई)* दरअसल, आज हम आपसे एक सीरियस इस्यू पर डिस्कस करने आए हैं।

मुख्य-अध्यापक : *(श्रीमती सामबन के मुख से गम्भीर मुद्दे का ज़िक्र सुनते ही श्री गोरा का खिला हुआ चेहरा मुर्झा जाता है। मुस्कान फीकी पड़ जाती है और चेहरे के साथ-साथ आवाज़ में भी गम्भीरता आ जाती है।)* ऐसी कौन-सी गम्भीर बात है, मैडम?

श्रीमती सामबन : *(भौंहें तानकर)* दरअसल, बात जिया और रिया के हिंदी अध्यापक की है।

मुख्य-अध्यापक : *(महिला की बात में विशेष रुचि दिखाने का अभिनय करते हुए)* हाँ, कहिए! क्या हुआ?

श्रीमती सामबन : *(अपनी आवाज़ में पुनः वही तीव्रता लाती हुई)* आपको याद है न, साल के आरम्भ में ही मैंने आपको फ़ोन किया था।

मुख्य-अध्यापक : *(स्वर की गम्भीरता आग्रह में परिवर्तित हो जाती है।)* हाँ, तो आप लोग मुझसे उसी सिलसिले में मिलने आए हैं। मैंने तो आपके कहने पर सुरेश जी से बात कर ली थी। *(सीना चौड़ा करने के भाव से, अपने आत्मविश्वास को उसकी पराकाष्ठा तक पहुँचाते हुए)* मैंने तो उनसे कह दिया

था; यदि बच्चे घर पर गृहकार्य नहीं करते हैं, तो वे बच्चों को कक्षा में उन कामों को पूरा करने का पर्याप्त समय दें। *(लड़कियों की ओर देखते हुए)* क्या गुरुजी तुम लोगों को फिर घर पर पूरा करने के लिए हिंदी के काम दे रहे हैं?

रिया : *(अपनी जीत का प्रदर्शन, अपने चेहरे की खिलखिलाहट से प्रकट करती हुई)* नहीं, सर! अब वे हमें सिर्फ़ कक्षा में पूरा करने के लिए काम देते हैं। उसी दिन से, आपके कहने के बाद, उन्होंने हमें गृहकार्य देना बिल्कुल बन्द कर दिया है।

मुख्य-अध्यापक : *(अपनी आवाज़ में आश्चर्ययुक्त उत्सुकता प्रदर्शित करते हुए)* क्या वे तुम लोगों को डाँटते हैं?

रिया : *(झट से)* नहीं, सर! वे तो बड़े प्यार से... *(माँ इशारा करती है और लड़की कहते-कहते बिल्कुल रुक जाती है।)*

श्रीमती सामबन : *(अपनी संतुष्टि का प्रदर्शन अपने चेहरे की खिलखिलाहट द्वारा करती हुई)* सर, मैं इस बात से बहुत खुश हूँ कि आपने सुरेश जी से बात की और उन्होंने मेरी बेटियों को हिंदी का गृहकार्य देना बन्द कर दिया। मेरी लड़कियाँ शाम को स्कूल से घर लौटने के तुरन्त बाद ट्यूशन के लिए निकल जाती हैं। उसके बाद हम ज़ूम्बा की कक्षा में जाते हैं। ज़ूम्बा की कक्षा समाप्त होने पर हम लगभग सात-साढ़े-सात बजे घर पहुँचते हैं। रात के भोजन के बाद घंटे-डेढ़-घंटे भर ये कार्टून देखती हैं। सोने से पहले ये अपने अंग्रेज़ी, फ्रेंच, गणित, विज्ञान और इतिहास विषयों से सम्बद्ध कामों को पूरा करती हैं। कामों को पूरा करने में लगभग दो घंटे लग ही जाते हैं। अब ऐसे में, ये बेचारी हिंदी के गृहकार्य को पूरा करने के लिए अतिरिक्त समय कहाँ से लाएँगी। इनके पास कोई जादुई शक्ति तो नहीं! *(अपने व्यंग्य पर स्वयं हँसती है। कुछ क्षणों के लिए रुककर)* हाँ, इन दिनों मेरी बच्चियाँ हिंदी के गृहकार्य के सम्बन्ध में कोई शिकायत नहीं कर रही हैं। *(आवाज़ में गम्भीरता लाती हुई)* परन्तु इस बार बात कुछ और है।

श्रीमती सामबन : श्रीमान गोरा! बात कुछ और है। पहले आप सुरेश जी को यहीं आने के लिए कहिए! मैं आपको बताती हूँ कि क्या हुआ है। *(इतना कहकर वह चुप हो जाती है। वह अपनी लड़कियों को भी चुप रहने के लिए संकेत करती है।)*

मुख्य-अध्यापक : ठीक है, मैं उन्हें बुलाता हूँ! *(वे*

अपनी जगह से उठकर खड़े हो जाते हैं और दरवाज़े के पास जाते हैं। एक चपरासी को इशारा करके बुलाते हैं।) रेणुका जी कृपया आप यहाँ आइए।

रेणुका जी : जी सर कहिए क्या बात है?

मुख्य-अध्यापक : रेणुका जी, कृपया आप सुरेश जी को दफ़्तर में आने के लिए कहिए! मुझे उनसे कुछ ज़रूरी बातें करनी हैं। उनसे कहना दफ़्तर में एक महत्त्वपूर्ण काम है।

रेणुका जी : ठीक है सर! मैं तीसरी कक्षा के बच्चों को रोटियाँ बाँटकर उन्हें बता दूँगी! *(इतना कहकर वे जाने लगती हैं।)*

मुख्य-अध्यापक : नहीं, रेणुका जी! पहले आप मेरा काम कीजिए, उसके बाद अपना काम कीजिएगा!

रेणुका जी : ओके सर! मैं अभी ही सुरेश जी को बुला देती हूँ। *(इस बार कुछ देर के लिए वे रुकीं। सोचा कि मुख्य-अध्यापक को और कुछ कहना होगा तो...)*

मुख्य-अध्यापक : ठीक है, रेणुका जी, धन्यवाद! *(रेणुका जी दाएँ हाथ में रोटी का बक्सा लेकर मंच से निकल जाती हैं। मुख्य-अध्यापक दरवाज़े के पास से निकलकर अपनी जगह पर चले जाते हैं और अपनी कुरसी पर बैठ जाते हैं। थोड़ी देर के लिए सभी शान्त बैठे रहते हैं।)*

मुख्य-अध्यापक : *(श्रीमती सामबन को सम्बोधित करते हुए, जिज्ञासा भरे स्वर में)* कहिए मैडम, क्या हुआ? *(सभी फ़्रीज़ हो जाते हैं और प्रकाश धीमा होकर मंच के मध्य में एक खाली स्थान पर जाकर केंद्रित हो जाता है। पर्दा गिरता है।)*

दूसरा दृश्य

(मुख्य-अध्यापक के दफ़्तर में दो लड़कियाँ और उनके माता-पिता विराजमान हैं। मुख्य-अध्यापक खड़े हैं और ध्यान से सुन रहे। श्रीमती सामबन मुख्य-अध्यापक से ऊँचे स्वर में कुछ बातें कर रही है और श्रीमान सामबन बच्चों को चुप रहने के लिए इशारा कर रहे हैं।)

श्रीमती सामबन : नहीं, गोरा जी! मैंने पिछली बार आपको बताया था कि यदि आवश्यकता पड़े, तो हम अपनी शिकायत शिक्षा मंत्रालय तक...
(दरवाज़ा खटखटाने की आवाज़ आती है। महिला चुप हो जाती है। कुछ क्षणों के लिए शान्ति छा जाती है। उस शान्ति को भंग करती हुई एक आवाज़ दरवाज़े की ओर से आती है।)

हिंदी अध्यापक : *(विनम्रता के साथ)* नमस्कार सर! क्या आपने मुझे बुलाया है, सर?

मुख्य-अध्यापक : *(अपनी आवाज़ में रूखेपन का सृजन करते हुए)* नमस्कार सुरेश जी! हाँ, मैं सुबह से दफ़्तर के कामों में फँसा हुआ

हूँ, इसीलिए रेणुका जी से कहा कि आपको बुला लाए। आपने आने में काफ़ी देर कर दी!

हिंदी अध्यापक : क्षमा कीजिए सर! छठी कक्षा के बच्चों को एक नया पाठ पढ़ा रहा था, इसीलिए बीच में पढ़ाई को रोकना ठीक नहीं समझा। अभी आने से पहले मैंने बच्चों को कुछ लिखित कार्य दे दिए हैं। यदि अधिक जल्दी न हो, तो क्या मैं कक्षा समाप्त होने के बाद आपसे मिलने आ सकता हूँ? *(मुख्य-अध्यापक के मुख के भाव को ध्यान से देखता है।)*

मुख्य-अध्यापक : *(चेहरे पर गम्भीरता के साथ आवाज़ में भारीपन लाते हुए)* सुरेश जी! कम-से-कम आपको इतना पता होना चाहिए कि जब कोई मुख्य-अध्यापक बुलाता है, तब अध्यापक को आने में देरी नहीं करनी चाहिए। *(आवेश में बहने के कारण उनकी आवाज़ स्वतः थोड़ी ऊँची हो जाती है।)* डॉन्ट यू नो, ज़िस इज़ ए साइन ऑफ़ इरेस्पॉन्सिबिलिटी?

हिंदी अध्यापक : *(मुख्य-अध्यापक के क्रोध से कुछ आश्चर्य में पड़ जाते हैं। फिर अपने-आपको सम्भालते हुए कहते हैं।)* नो सर, ज़िस शुड नॉट बी कॉल्ड इरेस्पॉन्सिबिलिटी! ज़िस इज़ ड्यूटी-कॉन्स्येन्स! मेरे छात्रों के प्रति मेरा उत्तरदायित्व सबसे पहले आता है। और फिर आपने यह बताया भी नहीं कि आपने मुझे क्यों बुलाया है!

मुख्य-अध्यापक : *(अभिभावकों की ओर इशारा करते हुए)* ये लोग आप ही से मिलना चाहते हैं। और आज ये आप ही से मिलने स्कूल आए हैं। *(रूखे स्वर में)* क्या आप इन लोगों को जानते हैं या मुझे इनका परिचय कराने की आवश्यकता है?

हिंदी अध्यापक : *(सुरेश जी ने अभी तक इस ओर ध्यान नहीं दिया था कि ऑफ़िस में कौन बैठा है। उन्हें देखते ही, वे धीरे से सिर हिलाकर अभिवादन करते हैं)* नमस्ते! *(फिर मुख्य-अध्यापक की ओर देखकर)* नहीं सर! मैंने तो इन्हें कभी नहीं देखा है!

मुख्य-अध्यापक : *(चेहरे पर क्रोध का भाव और आवाज़ में कर्कशता लाते हुए)* आप झूठ क्यों बोल रहे हैं सुरेश जी? ये दोनों रिया और जिया के माता-पिता हैं। इन दो लड़कियों से आप परिचित हैं न? ये दोनों आप ही से हिंदी पढ़ती हैं न?

हिंदी अध्यापक : *(आत्मविश्वास के साथ)* जी सर! ये दोनों जुड़वा बहनें मेरे साथ हिंदी पढ़ती हैं। इसमें किसी प्रकार का संदेह नहीं।

लेकिन... *(कुछ सोचते हुए)* लेकिन इनके माता-पिता से कभी नहीं मिला हूँ। हाँ, मैं इन्हें पहली बार देख रहा हूँ!

मुख्य-अध्यापक : *(थोड़ी ऊँची आवाज़ में)* आप फिर से झूठ बोल रहे हैं। इस साल की प्रथम अवधि के अन्त में जो ऑपन-डे आयोजित किया गया था, क्या आप उसमें उपस्थित नहीं थे? मुझे तो अच्छी तरह याद है कि ये दोनों अपनी बच्चियों के साथ मुझसे मिलने आए थे।

श्रीमती सामबन : *(इतनी देर तक चुप रहने के बाद सहसा अपना मौन-व्रत तोड़ती है।)* नहीं गोरा जी! उस दिन हम आए तो थे, किन्तु कुछ जल्दी में थे, इसीलिए रिया और जिया के हिंदी अध्यापक से मिलने का समय नहीं निकाल पाए थे। बाकी सभी अध्यापकों से हम मिले थे, इनसे नहीं!

मुख्य-अध्यापक : *(अपनी आवाज़ को कुछ धीमी करते हुए)* ओ आई सी! तो फिर जिस समस्या की चर्चा आपने की, ये महाशय उससे परिचित नहीं है।

श्रीमती सामबन : *(कुछ देर तक सोचने के बाद)* गोरा जी! हम ने पहले आपसे बात कर लेना अधिक श्रेयस्कर समझा।

हिंदी अध्यापक : *(आश्चर्य से महिला और मुख्य-अध्यापक की बातों को सुनते हैं, किन्तु उनमें छिपे हुए रहस्य को भाँप नहीं पाते हैं।)* सर, क्या मुझसे कोई भूल हुई है?

मुख्य-अध्यापक : सुरेश जी! आपके प्रति ये माता-पिता कई शिकायतें लेकर आए हैं। पहले भी इनकी ओर से कुछ शिकायतें आई थीं। मैंने स्थिति को संभालने के लिए आपको कुछ सुझाव भी दिए थे। लगता है कि आपने मेरी बातों की ओर ध्यान नहीं दिया।

हिंदी अध्यापक : *(चिन्ता भरे स्वर में, श्रीमती सामबन की ओर देखते हुए)* मैंने ऐसा क्या किया है, मैडम? मुझसे कौन-सा ऐसा गम्भीर अपराध हो गया है?

श्रीमती सामबन : *(जिया की ओर संकेत करती हुई)* मेरी बेटी, जिया रोज़ आपकी शिकायत करती है।

हिंदी अध्यापक : *(रूँधकंठ होकर)* कैसी शिकायतें, मैडम?

श्रीमती सामबन : *(अपनी आवाज़ में तीव्रता लाती हुई)* क्या आप नहीं जानते हैं? मेरी बेटी शुरू से ही हिंदी पढ़ना नहीं चाहती थी। जिया कहती है कि आपकी आवाज़ सुनकर ही वह सहम जाती है। हाँ, वह यह भी कहती है कि इसे आपसे डर भी लगता है।

हिंदी अध्यापक : लेकिन मैडम, यह क्या बात हुई? मैं तो आपकी बेटी को डराता नहीं हूँ। मैं अपने सभी बच्चों के साथ एक ही तरह

का व्यवहार करता हूँ। क्या आपको नहीं लगता है कि आप जो शिकायत लेकर आई हैं, वह बचकानी है? इसमें तर्क कहाँ है? सोचिए कक्षा में और भी बच्चे हैं! *(कुछ देर के लिए रुककर कुछ सोचते हैं और फिर बोलते हैं)* मैं तो सभी बच्चों के साथ एक ही ढंग से बातें करता हूँ। दूसरे बच्चों ने कभी मेरी आवाज़ की शिकायत नहीं की है। यह कैसा दोष है?

श्रीमती सामबन : देखिए सुरेश जी! मैं यह नहीं कहती हूँ कि इसमें आपका पूरा दोष है, किंतु आपसे पहले यहाँ जो अध्यापिका काम करती थी उसने कभी भी मेरी बेटी के साथ ऊँची आवाज़ में बात नहीं की। उसकी कभी हिम्मत भी नहीं हुई। *(रुक जाती है)*

हिंदी अध्यापक : *(जिया की ओर देखकर। आवाज़ में थोड़ी गम्भीरता लाते हुए)* जिया बेटी! क्या मैंने तुम्हें कभी अपनी कक्षा में या फिर कक्षा से बाहर डाँटा है? *(जिया गर्दन झुकाए फ़र्श की ओर देख रही होती है। शायद कुछ सोच रही है। सुरेश जी द्वारा सम्बोधित किए जाने पर वह चौंक जाती है, लेकिन वह अपने अध्यापक के प्रश्न का उत्तर नहीं देती है। सुरेश जी अपने प्रश्न को दोहराते हैं।)*

हिंदी अध्यापक : जिया बेटी! क्या मैंने तुम्हें कभी डाँटा है?

जिया : *(सिर उठाती है। सुरेश जी को देखती है और फिर से अपना सिर झुका लेती है। कुछ देर तक शान्त रहती है, फिर धीमी आवाज़ में कहती है)* नहीं, गुरुजी!

(जिया के बोलते ही उसकी माँ उसे अपने हाथ से छूती है। माँ के संकेत मिलने पर लड़की थोड़ा ठिठक जाती है। फिर वह अपनी माँ की ओर देखती है। माँ अपनी बिगड़ती हुई स्थिति को संभालने के लिए एक युक्ति सोचती है और तुरन्त उद्यत होती है।)

श्रीमती सामबन : नहीं! नहीं, सुरेश जी! आप मेरी बात का उलटा मतलब निकाल रहे हैं।

हिंदी अध्यापक : *(धैर्य खोते हुए, बोलने की गति में थोड़ी-सी तीव्रता लाते हैं।)* तो फिर मैडम, मुझे बिल्कुल भी समझ में नहीं आ रहा है कि आखिर आप कहना क्या चाहती है। थोड़ा स्पष्ट होकर कहिए न। कब से आप मुझसे पहेलियाँ बुझवा रही हैं। जो कुछ कहना चाहती हैं, कृपया स्पष्ट शब्दों में कहिए।

(महिला कुछ सोचने लगती है, तब तक उसका पति मोर्चा संभालने के लिए तैयार हो जाता है।)

श्रीमान सामबन : *(आवाज़ में थोड़ी गम्भीरता*

के साथ) सुरेश जी! बात यह है कि जिया हिंदी पढ़ना पसन्द नहीं करती है, फिर भी इसकी माँ चाहती है कि यह भी अपनी बहन रिया की तरह हिंदी पढ़े। रिया की ओर से कोई दिक्कत नहीं होती है। वह घर पर अपना सारा काम कर लेती है। किन्तु जिया हिंदी की पुस्तक देखना भी नहीं चाहती है। पहले तो यह चित्रों में रंग भर लेती थी पर अब यह... *(अपनी पत्नी के चेहरे के भाव को देखता है। उसका चेहरा गुस्से से भरा हुआ है। बोलते-बोलते रुक जाता है। फिर कुछ सोचकर कहता है)* आपके आने के बाद अब यह बिल्कुल भी हिंदी नहीं पढ़ना चाह रही है।

हिंदी अध्यापक : *(अपने ऊपर जिया की हिंदी की पढ़ाई के प्रति अन्यमनस्क होने का आरोप लगते महसूस करते हुए, रूँधकंठ से बोलता है)* क्यों सर? ऐसा क्या किया है, मैंने?

श्रीमान सामबन : वास्तव में, जिया की रुचि हिंदी में नहीं है। हमने कितनी बार इसे बहला-फुसलाकर हिंदी पढ़ने के लिए मनाया है। फिर भी... *(पुरुष कहते-कहते रुक जाता है।)*

हिंदी अध्यापक : *(विनम्र भाव के साथ)* यह तो अच्छी बात है, सर! लगता है कि आप लोगों के मन में हिंदी के प्रति श्रद्धा और सद्भावना है।

श्रीमान सामबन : जिया हिंदी में ही नहीं दूसरे विषयों में भी पढ़ने-लिखने में थोड़ा कमज़ोर है। यह बात हम जानते हैं। लेकिन... *(बोलते-बोलते एकाएक रुक जाता है।)*

हिंदी अध्यापक : लेकिन क्या सर? मैंने तो आपकी बेटी से कभी भी नहीं कहा कि वह अन्य बच्चों की अपेक्षा कमज़ोर या आलसी है। उससे पूछिए तो सही!

श्रीमान सामबन : *(अपनी पत्नी का चेहरा देखने के बाद बोले)* नहीं सुरेश जी! कल आपने सभी बच्चों से एक बात कही थी, जो हमें बिल्कुल अच्छी नहीं लगी।

हिंदी अध्यापक : *(थोड़े-से आत्मचिन्तन के बाद, आश्चर्य अभिव्यक्त करने वाले स्वर में पूछते हैं)* कौन-सी बात श्रीमान? मुझे तो किसी ऐसी बात का स्मरण नहीं हो रहा है, जिससे कि किसी छात्र या अभिभावक की भावनाओं को ठेस पहुँची हो।

(इस बार पिता और माता दोनों ही चिन्तन की मुद्रा को अपनाकर मौन हो जाते हैं। उन्हें कुछ देर तक चुप देखकर मुख्य-अध्यापक बोल उठते हैं।)

मुख्य-अध्यापक : *(स्थिति को अपने नियंत्रण में लेने की कोशिश करते हुए)* देखिए सुरेश जी! आप एक

सरकारी अध्यापक है और आपको यहाँ केवल हिंदी पढ़ाने के लिए भेजा गया है। आपको हमारे बच्चों को अपनी ओर से सुझाव देने का कोई अधिकार नहीं है। क्या आप इस बात से परिचित नहीं?

हिंदी अध्यापक : *(आश्चर्य और जिज्ञासा के स्वर में)* सर कब से यही जानने का प्रयास कर रहा हूँ कि मैंने ऐसा क्या किया है, जिससे आप लोग इतना क्रोधित हैं। *(अपनी आवाज़ में आत्मविश्वास का प्रदर्शन करते हुए)* मैंने कभी बच्चों के अहित के लिए कुछ नहीं कहा है। यदि आपको मेरी किसी बात में बच्चों का अहित दिखता हो, तो स्पष्ट बता दीजिए। मैं आगे से सावधान रहूँगा!

श्रीमती सामबन : *(अपनी चुप्पी भंग करती हुई)* क्या कल फिर से आपने बच्चों को अपने गाँव की किसी सायंकालीन हिंदी पाठशाला जॉइन करने के लिए नहीं कहा था?

हिंदी अध्यापक : *(अब भी बात की गुत्थी को न पकड़ पाने के भाव के साथ)* हाँ मैडम! मैंने तो सभी बच्चों से यह बात कही थी, क्योंकि इससे जो ज्ञान बच्चे यहाँ स्कूल में अर्जित करते हैं, सायंकालीन हिंदी पाठशाला में उसका सुदृढ़ीकरण होता रहता है। हिंदी भाषा के साथ उनका कुछ अधिक समय तक संपर्क भी रहेगा। जिन बच्चों के माँ-बाप को हिंदी नहीं आती है, उन्हें सायंकालीन पाठशालाओं में जाने से मदद मिलेगी। क्या मैंने इसमें कोई अनुचित बात कही है?

श्रीमती सामबन : *(अपनी भौहें चढ़ाती हुई)* इसका मतलब है कि आप हमारे बच्चों को हिंदी सिखाने में असमर्थ हैं?

हिंदी अध्यापक : *(आत्मविश्वास के साथ)* नहीं मैडम, मैंने बच्चों को इसलिए सुझाव दिया था, क्योंकि स्कूल में, वे एक दिन में अधिक-से-अधिक पचास मिनटों के लिए ही हिंदी पढ़ते-सीखते हैं। इसके अतिरिक्त बच्चों का हिंदी के साथ किसी प्रकार का सम्पर्क नहीं रहता है। सायंकालीन हिंदी पाठशालाओं में जाने से उन्हें हिंदी के साथ अधिक एक्सपोज़ियर मिलेगा। हिंदी भाषा के साथ सम्पर्क की अवधि बढ़ने से स्वतः बच्चों में रुचि और अभिव्यक्ति क्षमता का विकास होगा।

मुख्य अध्यापक : *(अपने वर्चस्व का प्रदर्शन करते हुए; आवाज़ में कड़वाहट का अनुभव होता है।)* क्या आपने कोई ऐसी

सूचना देने से पहले मुझसे अनुमति ली थी?

हिंदी अध्यापक : *(अपने आत्मविश्वास पर प्रहार होता हुआ महसूस करते हैं और उनके बोलने की गति भी मन्द हो जाती है।)* नहीं सर! मैंने तो बच्चों का हित समझकर उन्हें किसी स्वयंसेवी हिंदी पाठशाला में प्रवेश लेने का सुझाव दिया था। और वह सुझाव सभी बच्चों के लिए था। वहाँ किसी भी प्रकार का शुल्क भी नहीं देना पड़ता है। इससे बच्चों का ही लाभ होगा, क्योंकि इससे उनकी भाषा भी सुधर जाएगी। विशेषकर... *(सुरेश जी अपनी बात को पूरा नहीं कर पाते हैं और मुख्य-अध्यापक बीच में ही टोक देते हैं।)*

मुख्य-अध्यापक : *(अपने क्रोध को दबाने की कोशिश करते हैं। किन्तु आवाज़ में एक विचित्र उत्तेजना प्रकट हो जाती है।)* विशेषकर क्या, सुरेश जी?

हिंदी अध्यापक : *(अपनी बात को स्पष्ट करते हुए)* विशेषकर ऐसी स्थिति में जहाँ माता-पिता अपने बच्चों की सहायता करने में असमर्थ हों, वहाँ सायंकालीन हिंदी पाठशाला में जाने से बच्चों का अधिक लाभ होता है। बस मैंने इतनी-सी बात कही थी। आप ही कहिए इसमें मैंने क्या बुरा कहा?

मुख्य-अध्यापक : *(हिंदी अध्यापक के तर्क से पराजित होने की स्थिति में, वे विषय को बदलने की कोशिश करते हैं)* सुरेश जी, क्या आपको पता नहीं कि जिया और रिया के पिता, श्रीमान सामबन हमारे स्कूल के अभिभावक-अध्यापक संघ के प्रधान हैं?

हिंदी अध्यापक : *(मुख्य-अध्यापक के अभिप्राय को भाँपने में असमर्थ होकर)* नहीं सर! लेकिन उससे क्या फ़र्क पड़ता है?

मुख्य-अध्यापक : *(अचानक स्वर में परिवर्तन लाते हुए; धमकी देने के अन्दाज़ में)* सुरेश जी! आपकी नियुक्ति हमारे स्कूल में हिंदी पढ़ाने के लिए हुई है। हिंदी की स्थिति को सुधारने के लिए हिदायतें देना आपका काम नहीं है।

हिंदी अध्यापक : *(अपनी आवाज़ में पुनः विश्वास दर्शाते हुए)* सर, मुझे तो यह नहीं लगता कि मैंने कोई गलत काम किया है। आप ही बताइए इसमें क्या बुरा है?

मुख्य-अध्यापक : *(चेहरे पर क्रोध झलकता है, पर अपनी अभिव्यक्ति-शैली पर नियंत्रण रखने की कोशिश करते हुए)* मेरी बात सुनिए सुरेश जी! आपको कुछ ऐसा लगे या कुछ और लगे, इससे हमें कोई फ़र्क नहीं पड़ता है। हमें उसकी परवाह नहीं!

यह पाठशाला कुछ नियमों से चलती है। और आपको भी उन नियमों का पालन करना होगा। ये लोग शिक्षा मंत्रालय में आपकी शिकायत करने के लिए जाने वाले थे। मैंने इनको रोक लिया। आपको इनके प्रति आभारी होना चाहिए और मेरा धन्यवाद करना चाहिए।

हिंदी अध्यापक : *(मुख्य-अध्यापक के ऊँचे और तीखे स्वर के नीचे अपने आत्मविश्वास को दबते हुए महसूस करते हैं)* देखिए सर! एक हिंदी अध्यापक का लक्ष्य यथासंभव हिंदी भाषा का प्रचार करना भी होता है। मैंने तो सिर्फ़ एक ऐसी ही बात कही थी, जिससे हमारे बच्चों की भलाई हो...

श्रीमान सामबन : *(अपने असंतोष का प्रदर्शन करते हुए)* हमारे बच्चों की भलाई के बारे में सोचने वाले आप कौन होते हैं?

श्रीमती सामबन : *(जैसे कोई क्रोध का गुब्बारा अचानक फूटा हो। आवाज़ में तीक्ष्णता के साथ तीव्रता लाती हुई)* कृपया आप उतना ही काम करें, जितना कि आपसे कहा जाए। हमारी लड़कियाँ थोड़ी हिंदी बोल-समझ लेंगी, तो हमारे लिए उतना ही पर्याप्त होगा। हमें इन्हें हिंदी में बी. ए. और एम.ए. नहीं करवाने हैं!

श्रीमान सामबन : *(क्रोध भरे स्वर में)* हिंदी में बी.ए., एम.ए. कराके हमें अपने बच्चों को भीखमँगे नहीं बनाने हैं। आप उनकी चिन्ता न ही करें, तो बेहतर होगा।

मुख्य-अध्यापक : *(चेहरे पर एक हल्की-सी व्यंग्य भरी मुस्कान लाते हुए, जैसे कि वे यह घोषणा करने लगे हों कि इस विवाद में अन्ततः उनकी जीत हो ही गई। उनकी खिली हुईं बाँछें उनके चेहरे की चमक पर भी अपना प्रभाव छोड़ती हैं। क्रोध छँट जाता है और स्वतः सभी के चेहरे पर व्यंग्यपूर्ण मुस्कुराहट आ जाती है। उधर सुरेश जी के आत्मविश्वास का सूर्य डूब जाता है। अध्यापक की निराशा देखते हुए, वे अन्तिम कुठाराघात कर ही देते हैं।)* सुरेश जी! इस बार तो आपको जाने दे रहे हैं। अगली बार आपके खिलाफ़ कोई शिकायत आएगी, तो मैं खुद मिनिस्ट्री में आपकी कॉम्प्लेंट करूँगा। अच्छा अब जाइए! मुझे इनसे कुछ ज़रूरी बातें करनी हैं। *(सुरेश जी के मुँह से कोई शब्द भी नहीं निकल पाता है। वे स्तब्ध रहकर सोचने लगते हैं। उनकी दृष्टि ज़मीन पर गड़ी रहती है। प्रकाश धीमा होने लगता है और सुरेश जी पर आकर केंद्रित हो जाता है।)*

हिंदी अध्यापक : *(स्वगत)* हिंदी भाषा का सेवक जो बनना चाहे, क्या उन्हें अन्ततः सभी का दास बनकर रहना पड़ता है? क्या यही एक हिंदी अध्यापक की नियति है? हिंदी के प्रति आस्था आज एक हिंदी अध्यापक की व्यथा बन गई है।

(इस स्वगत-कथन के बाद प्रकाश सामान्य हो जाता है। सुरेश जी मंच से निकलने का अभिनय करते हैं। सेट पर सभी फ़्रीज़ हो जाते हैं और धीरे-धीरे रोशनी कम होने लगती है। रोशनी मंच के मध्य में आकर केंद्रित हो जाती है। अन्त में नेपथ्य से एक आवाज़ आती है)
(काव्य-पाठ होता है - दो या तीन आवाज़ों में)

हाय री मेरी हिंदी!

कितने ही अध्यापक
हिंदी की सेवा के लिए
तत्पर होकर रहते खड़े।
किन्तु अनुपयुक्त परिवेश से
ये आजीवन संघर्ष करके
कठिनाइयों से अकेले ही लड़े।

उनमें से कितने ही
निराश-हताश होकर
हिंदी से हैं मुख मोड़ रहे।
आइए समय रहते हम सोचें
हमारे अपने अनायास ही क्यों
हिंदी से नाता हैं तोड़ रहे?

(कुछ क्षणों के लिए शान्ति होती है। फिर उस शान्ति को भंग करती हुई एक रुआँसा-सी आवाज़ प्रतिगूँजित होती है - "हाय री मेरी हिंदी! हाय री मेरी हिंदी! हाय री मेरी हिंदी!" पर्दा गिरता है।)

(समाप्त)

mskashinath@gmail.com

पढ़ाई जारी है

- डॉ. कुसुम नैपसिक
अमेरिका

पात्र :
लीला - 42 साल - माँ
निर्मला - 13 साल - बेटी
कांता - 14 साल - निर्मला की सहेली

स्थान : उत्तर भारत का एक छोटा-सा गाँव टिनिच। दोपहर का समय है। घर की छत पर बिछी हुई एक खाट पर निर्मला और कांता धीरे-धीरे बातें कर रही हैं। निर्मला के हाथ में एक चिट्ठी है। पीछे से किसी फ़िल्मी गाने की आवाज़ आ रही है।

दृश्य एक

कांता : देख, तू किसी से चिट्ठी के बारे में मत बताना, नहीं तो पता नहीं क्या होगा।

निर्मला : मुझे बहुत डर लग रहा है। कहीं कुछ उलटा-सीधा हो गया, तो माँ मार ही डालेंगी। पता नहीं क्यों वह लड़का हमेशा मेरा ही पीछा करता है और आज तो यह चिट्ठी भी दे दी। उस छिछोरे लड़के को देखते ही मुझे दहशत होती है। वह कैसे घूर-घूरकर देखता रहता है। काश! हमारी कोई मदद कर सकता!

कांता : हमेशा वह दिन याद रखियो, जब हमें आमा गाँव के स्कूल में जाने दिया गया था। हमारे गाँव में तो कोई स्कूल है नहीं प्राइमेरी के बाद और न ही होने की कोई संभावना है। पता है न, कितनी मुश्किलों से हम दोनों को चार किलोमीटर दूर स्कूल में जाने दिया गया था।

निर्मला : हाँ, बहुत अच्छी तरह से याद है। बड़ा ही ऐतिहासिक दिन था। सब लोग हमारे पढ़ने की बात पर हँस रहे थे। हमारा स्कूल जाना किसी को पसंद नहीं था। चाचा ने तो यहाँ तक कहा था कि ये लड़कियाँ पढ़ने में कोई खास तो नहीं हैं कि पूरे गाँव में इनको ही आमा भेजा जाए। अरे! अगर लड़के होते तो कोई बात भी होती। लेकिन इन लड़कियों के साथ कोई ऊँच-नीच हो गई, तो हम कहीं के नहीं रह जाएँगे।

कांता : यह तो सच है। हम लोग पढ़ने में कुछ खास नहीं थीं। बस हर क्लास में पास हो जाती थीं, लेकिन इसका मतलब यह तो नहीं है न कि हम आगे नहीं पढ़ सकतीं। पता है न, सरोज बहनजी क्या कहती हैं? "पढ़ाई करके लड़कियाँ कुछ भी बन सकती हैं।"

निर्मला : बिलकुल ठीक कह रही है, लेकिन अब दो साल बाद ऐसा लग रहा है कि शायद हमें यह नहीं करना चाहिए था।

कांता : हाँ, आज उस लड़के ने रास्ते में चिट्ठी दी है, कल कुछ और करेगा। उसकी हिम्मत बढ़ती ही जा रही है।

निर्मला : पता नहीं किस गाँव का है? हम तो किसी से पूछ भी नहीं सकते। किसी

को पता भी चल गया, तो समझो सारी गलती हमारी ही ठहराई जाएगी।

(सीढ़ियों से ऊपर आने की आवाज़ आती है और दोनों चुप हो जाती हैं।)

लीला : तुम दोनों यहाँ कब तक बतियाती रहोगी? चलो सब्ज़ी काटो और रोटियाँ बनाओ।
कांता और निर्मला उठकर सीढ़ियों के अंधेरे में खो जाती हैं।

दृश्य दो

(वही जगह, बस इस बार दोनों एक चिट्ठी को बार-बार पढ़ रही हैं और बहुत चिंतित हैं।)

कांता : निर्मला! अब हमें किसी-न-किसी को बताना पड़ेगा। उसने दूसरी चिट्ठी में लिखा है कि वह तुझे उठाकर ले जाएगा।

निर्मला : किसको बताएँ?

कांता : भैया को बताते हैं।

निर्मला : कभी नहीं, वह वैसे भी यही कहता है कि मैं घर का काम नहीं करना चाहती हूँ, इसलिए स्कूल जाती हूँ। उसे एक भी मौका मिलेगा, तो वह सबसे पहले स्कूल बंद करवा देगा।

कांता : सोच ले। वैसे इसमें झूठ भी तो नहीं है। हम दोनों ही पूरे गाँव में स्कूल जाती हैं, बाकी सब लड़कियाँ खेत और घर में कितना काम करती हैं।

निर्मला : ठीक है। लेकिन घर का काम तो अब भी हम लोग करती ही हैं।

कांता : सवाल यह है, अगर चिट्ठी की बात किसी को नहीं बताई, तो कुछ हो भी सकता है। एक तो मुसीबत यह है कि लड़कियों का स्कूल सुबह लगता है और लड़कों का दोपहर को। अगर हम लोग भी दोपहर को जाते, तो कितने लोग साथ आने-जाने वाले हो सकते थे।

निर्मला : मुझे लगता है कि स्कूल की बहनजी को बता देती हैं? शायद वे ही कोई हल निकाल सकें।

कांता : ठीक है! शायद यही सबसे सही रास्ता होगा। लड़कियों की ज़िंदगी भी नरक होती है। हर कदम पर कोई नाग डसने को तैयार खड़ा रहता है।

माँ : *(माँ नीचे से आवाज़ लगाती हैं।)* "तुम लोग नीचे आओगी या वहीं बातें बनाती रहोगी। इतनी बड़ी हो गईं, कोई शउर नहीं है, इस उम्र में मेरा गौना हो चुका था। यहाँ इन लोगों को गपियाने से फ़ुर्सत नहीं मिलती। सारा दिन खेत में काम करो और घर आकर देखो, तो कुछ काम नहीं किया होता।" *(निर्मला और कांता गहरी साँस लेती हैं और नीचे उतर जाती हैं।)*

दृश्य तीन

(वही छत, गोधूली का समय। बाहर से पूजा करने की आवाज़ आ रही है। कांता और निर्मला बैठी बातें कर रही हैं।)

कांता : बहनजी से पूछा?

निर्मला : हाँ, यह सुनकर वे बहुत परेशान हो गई थीं। उन्होंने यही सलाह दी कि हमें अपने माँ-बाप को बता देना

चाहिए।

कांता : बेकार ही बहनजी से पूछा। अगर उन्होंने भैया या बाबूजी को बता दिया तो।

निर्मला : नहीं बताएँगी। मैंने उनसे वादा लिया है।

कांता : वह लड़का तो अब भी वहीं खड़ा रहता है और इशारे करता है। काश हम कुछ कर पातीं।

निर्मला : मैंने अपनी समाजविज्ञान की किताब में पढ़ा है कि कोई भी पुलिस की मदद ले सकता है।

कांता : पुलिस!!

निर्मला : हाँ, वह हमारी सहायता के लिए होती है।

कांता : सहायता? तब पुलिस कहाँ थी, जब कुंता दीदी को उनके ससुरालवालों ने ज़िंदा जला दिया था?

निर्मला : तू हमेशा उलटा ही क्यों सोचती है। हम पुलिस के पास नहीं जाएँगी। बस फ़ोन करेंगी।

कांता : फ़ोन कैसे करेंगी? फ़ोन कहाँ है हमारे पास?

निर्मला : आमा की एक दुकान में मैंने फ़ोन देखा है!

कांता : ठीक है। लेकिन हमें जल्दी ही करना होगा।

निर्मला : क्या तू फ़ोन करेगी?

कांता : ना बाबा! मैं फ़ोन नहीं करूँगी। मुझे तो पुलिस के नाम से ही डर लगता है।

निर्मला : मुझे भी बहुत डर लगता है। सबसे ज़्यादा यही डर लग रहा है कि कहीं वे हमारे घरवालों को न बता दें।

कांता : चिट्ठी तो तुझे लिखी है, तो फ़ोन भी तुझे ही करना चाहिए।

निर्मला : ठीक है। मैं ही फ़ोन करूँगी। क्यों न हम भैया के फ़ोन से करें।

कांता : अरे! अगर हम मोबाइल से फ़ोन करेंगे, तो सबको पता चल जाएगा। याद नहीं उसमें नम्बर हमेशा रहता है।

निर्मला : चल ठीक है। कल फ़ोन करेंगे।

दृश्य चार

(निर्मला और कांता छत की खाट पर धीरे-धीरे पैर हिला रही हैं और गुलगुले खा रही हैं।)

कांता : कमाल हो गया अब लगता है कि पुलिस भी है और काम भी करती है।

निर्मला : हाँ, मैंने सुबह ही तो फ़ोन किया था। मैंने तो अपनी आवाज़ थोड़ी मोटी भी बना दी थी। सौ नम्बर पर मिलाते ही दरोगा बाबू ने पूछा, "कौन बोल रहा है?" मैंने तो कह दिया। मैं अपना नाम नहीं बता सकती। लेकिन एक लड़का मेरा पीछा करता है और स्कूल के रास्ते पर ही खड़ा रहता है। मुझे चिट्ठी लिखता है और मुझे उठा ले जाने की धमकी भी दी है। अगर किसी को पता चल गया, तो हमारा स्कूल बंद हो जाएगा। तब दरोगा बाबू ने कहा कि डरने की कोई बात नहीं है, वह जगह बताओ जहाँ वह खड़ा रहता है और उसका हुलिया बताओ। हम उस मजनू को ठीक कर देंगे।

कांता : हाँ, सच! पुलिस की गाड़ी सचमुच वहाँ खड़ी थी और मैंने खुद उस मजनू को पुलिस वैन में देखा है।

निर्मला : थोड़ा डर भी लग रहा है। अब तक तो उसको पता चल गया होगा कि पुलिस को हमने बताया है। कहीं वह कुछ कर न दे!

कांता : क्या डरने का सारा ठेका हमने ही लिया है? अब जो होगा देखा जाएगा। डरने की बारी अब उस मजनू की है। ऐसे लफ़ंगों की वजह से ही लड़कियाँ पढ़ाई नहीं कर पाती हैं और बेमतलब बदनाम हो जाती हैं। लेकिन अब हम अपनी पढ़ाई जारी रखेंगी और कुछ बनकर दिखाएँगी।

(निर्मला हाथ आगे करके प्रतिज्ञावाली मुद्रा बनाती है।)

निर्मला : मैं प्रतिज्ञा लेती हूँ कि मैं आगे पढ़ती ही जाऊँगी।

कांता : तू भी फ़िल्मी होती जा रही है। चल, अब मेरे हाथ से गुलगुले खा।

(समाप्त)

kusumknapczyk@gmail.com

आधुनिक भारतीय साहित्य और औपनिवेशिकता

- डॉ. साकेत सहाय
पटना, भारत

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी अपने निबंध 'साहित्य की महत्ता' में कहते हैं - "ज्ञान-राशि के संचित कोष का ही नाम साहित्य है। सामाजिक शक्ति या सजीवता, सामाजिक अशक्ति या निर्जीवता और सामाजिक सभ्यता तथा असभ्यता का निर्णायक एकमात्र साहित्य है।" इन्हीं गुण-तत्त्वों के कारण भारतीय परंपरा एवं इतिहास में साहित्य को विशिष्ट स्थान प्राप्त है। हमारा इतिहास, ज्ञान-विज्ञान, कला, तर्क आदि सभी कुछ साहित्य का नाम है।

इतिहास और भारतीय साहित्य में घनिष्ठ अंतरसंबंध है। भारतीय वाङ्ग्मय में इतिहास एक प्रकार से साहित्य के रूप में ही उपस्थित है। प्रस्तुत आलेख 'आधुनिक भारतीय साहित्य और औपनिवेशिकता' पर विमर्श से पूर्व यह जानना आवश्यक है कि उपनिवेशवाद का अर्थ क्या है? सामान्य शब्दों में यदि देखें, तो उपनिवेश का अर्थ है - किसी समृद्ध अथवा शक्तिशाली राष्ट्र द्वारा अपने विभिन्न हितों की पूर्ति हेतु कमज़ोर, परंतु प्राकृतिक संसाधनों से परिपूर्ण राष्ट्र के विभिन्न संसाधनों का शक्ति या धोखे के बल पर उपभोग करना। उपनिवेशवाद का मूल अर्थ ही है - किसी विदेशी राष्ट्र द्वारा शासित एवं राजनीतिक सत्ता से दूर। अपने देश के संदर्भ में यदि इस परिभाषा पर नज़र दौड़ाएँ, तो स्पष्ट है कि भारत किसी-न-किसी रूप में, 14वीं शताब्दी से लेकर 20वीं शताब्दी तक उपनिवेशवाद का शिकार रहा। इस काल-खंड में अन्य क्षेत्रों के अतिरिक्त हमारी साहित्य-संस्कृति पर इसका व्यापक प्रभाव परिलक्षित हुआ। साथ ही विदेशी शासकों ने हमारी समृद्ध साहित्यिक-सांस्कृतिक संपदा को तहस-नहस करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। बतौर उदाहरण, बिहार का नालंदा विश्वविद्यालय, जहाँ दुनिया भर से 10 हज़ार से अधिक विद्यार्थी अध्ययन करते थे, यहाँ की समृद्ध संपदा को विदेशी आक्रांता बख्तियार खिलज़ी ने जलाकर राख कर दिया।

तदन्तर यह प्रक्रिया चलती रही। हमारे साहित्य एवं संस्कृति को हेय बताकर स्वयं की संस्कृति को ज़बरदस्ती श्रेष्ठ घोषित कर हमारे ऊपर उसे आरोपित करने की प्रक्रिया निरंतर चलती रही। इसी मानसिकता ने जातिवाद, प्रांतवाद, दलितवाद, स्त्री-हिंसा जैसी समस्याओं को जन्म दिया। सब कुछ सत्ता एवं राजनीति तक सीमित रहा। व्यक्ति एवं समाज इसके मोहरे बनते गए। जिसका व्यापक प्रभाव भारतीय भाषिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्र का सिमटना रहा। देश का विभाजन इसी ऐतिहासिक कटुता का परिणाम था। इस कटुता का प्रभाव आज भी कायम है, जिसे राजनीतिक और सत्तावाद हवा देते हैं। समाज में छूआ-छूत की ऐसी व्यूह-रचना रची गई कि इसके दुष्परिणामों से आज भी समाज प्रभावित है। ऐसा नहीं है कि पूर्व में सब कुछ सही था, पर विदेशी आक्रमणकारियों ने भारत की संपदा के प्रति आकर्षित होकर इसे लूटने या इसे कुप्रभावित, अशक्त करने की ही ज़्यादा सोची। इसी में उनकी भलाई भी थी। दुर्भाग्यवश इसका सबसे अधिक प्रभाव हमारे साहित्य एवं संस्कृति पर पड़ा।

भारतीय सभ्यता-संस्कृति के औपनिवेशिक प्रभावों पर हिंदी के 'सूर्य' महाप्राण निराला कहते हैं "भारतवर्ष अंग्रेज़ों की साम्राज्य लालसा का सर्वप्रथम ध्येय रहा है। यहाँ की सभ्यता और संस्कृति अंग्रेज़ों की सभ्यता और संस्कृति से बहुत कम मेल खाती

थी, पर सात समुन्दर पार से आकर इतने विस्तृत और इतने सभ्य देश पर राज करना जिन अंग्रेज़ों को अभीष्ट था, वे बिना अपनी कूटनीति का प्रयोग किए, कैसे रह सकते थे? अंग्रेज़ों की स्पष्ट नीति थी - भारत के इतिहास को विकृत कर दो और हो सके तो उसकी भाषा को मिटा दो। इस संदर्भ में चेष्टाएँ की जाने लगीं। भारतीय सभ्यता और संस्कृति, ब्रिटिश सभ्यता और संस्कृति की तुलना में नीची दिखाई जाने लगी। हमारी भाषाएँ गँवारू, असाहित्यिक और अविकसित बताई जाने लगीं। हमारा प्राचीन इतिहास अंधकार में डाल दिया गया। बाकायदा अंग्रेज़ी की पढ़ाई होने लगी। इस देश का शताब्दियों से अंधकार में पड़ा हुआ जनसमाज यह समझने लगा कि जो कुछ है, अंग्रेज़ी सभ्यता है और अंग्रेज़ है।" (सुधा, जून, 1930 से संपादित अंश - साभार वीणा, फ़रवरी, 2019 अंक)

इस उद्धरण से यह समझा जा सकता है कि भारत में औपनिवेशिक शासन व्यवस्था द्वारा बेहद सधी हुई कूटनीति के तहत ऐसी रणनीति रची गई कि हम अपने-आपको हेय समझें। हेयता के लिए यह ज़रूरी है कि उसके निवासियों को हीनता बोध से ग्रसित कर दो। उसकी धर्म-संस्कृति को नीचे गिराओ, उसे पिछड़ा साबित कर दो। इस कुनीति का हमारे देश पर कुप्रभाव यह पड़ा कि हम आत्महीनता के इस जकड़न से आज भी नहीं उबर पाए हैं। अंग्रेज़ों का तो सिद्धांत ही था 'फूट डालो, शासन करो'। शासन व्यवस्था द्वारा दीर्घकाल से उत्पन्न हेयता ने उनके शासन की बुनियाद मज़बूत करने में सहयोग किया, जिसका व्यापक प्रभाव हमारे साहित्य एवं संस्कृति पर पड़ा।

यह तथ्य है कि शब्द संस्कृति के आधार होते हैं। साहित्य में जान-बूझकर विदेशी सत्ता की शब्दावली रची गई, जिससे हमारी संस्कृति सबसे ज़्यादा दुष्प्रभावित हुई। ज्ञान, परंपरा, कर्तव्य, अध्यात्म, संस्कृति, संस्कार जैसे शब्द अछूत-से होते चले गए। व्यक्ति, परंपरा के साथ शब्द भी अछूत होने लगे। कथित साम्यवाद एवं प्रगतिवाद के नाम पर बहुत बड़ी आबादी को बरगलाया गया। जबकि समाज का विकास इन शब्दों से अधिक सत्ता के इर्द-गिर्द होते रहे।

भारतीय साहित्य एवं संस्कृति में औपनिवेशिक प्रभावों पर प्रसिद्ध निबंधकार गुलाब राय जी (गद्य सरोज, पृ. 123-124) कहते हैं -

''साहित्य हमारे अव्यक्त भावों को व्यक्त कर हमको प्रभावित करता है। हमारे ही विचार साहित्य के रूप में मूर्तिमान हो हमारा नेतृत्व करते हैं। साहित्य ही विचारों की गुप्त शक्ति को केंद्रस्थ कर उसे कार्यकारिणी बना देता है। साहित्य हमारे देश के भावों को जीवित रखकर हमारे व्यक्तित्व को स्थिर करता है। वर्तमान भारतवर्ष में जो परिवर्तन हुआ है और जो धर्म में अश्रद्धा उत्पन्न हुई है, वह अधिकांश रूप में विदेशी साहित्य का ही फल है, जो साहित्य द्वारा समाज में परिवर्तन से कहीं अधिक स्थायी होता है। आज हमारे सौंदर्य संबंधी विचार, हमारी कला का आदर्श, हमारा शिष्टाचार सब विदेशी साहित्य से प्रभावित हो रहे हैं। रोम ने यूनान पर राजनीतिक विजय प्राप्त की थी, किन्तु यूनान ने अपने साहित्य के द्वारा रोम पर मानसिक विजय प्राप्त कर सारे यूरोप पर अपने विचारों और संस्कृति की छाप डाल दी। प्राचीन यूनान का सामाजिक संस्थान वहाँ के तत्कालीन साहित्य के प्रभाव को ज्वलंत रूप से प्रमाणित करता है। यूरोप की जितनी कलाएँ हैं वे प्राय: यूनानी आदर्शों पर ही चल रही हैं। इन सब बातों के अतिरिक्त हमारा साहित्य हमारे सामने हमारे जीवन को उपस्थित कर हमारे जीवन को सुधारता है। हम एक आदर्श पर चलना सीखते हैं। साहित्य हमारा मनोविनोद कर हमारे जीवन का भार भी हल्का करता है। जहाँ साहित्य का अभाव है, वहाँ जीवन इतना रम्य नहीं रहता।'' (साभार - वीणा - जनवरी, 2020)

भारत में दीर्घ औपनिवेशिक शासन व्यवस्था ने सबसे अधिक किसी चीज़ को प्रभावित किया है, तो वह है भारत की आत्मा अर्थात् इसका साहित्य एवं संस्कृति। भारतीय वाङ्ग्मय में इतिहास एक प्रकार से पुराण की भाँति है। रामायण, महाभारत जैसे काव्य भारतीय वाङ्ग्मय में इतिहास माने गए हैं। राम-रावण युद्ध हो या महाभारत का महायुद्ध, दोनों का भारतीय साहित्य में वर्णन भले साहित्य में रूपक के रूप में हुआ हो या साहित्य का सच बनाकर प्रस्तुत किया गया हो, पर वास्तव में इसे बहुत बड़ी आबादी आज भी साहित्य से अधिक वास्तविक इतिहास का हिस्सा मानती है। यही भारतीय साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता है। भारतीय साहित्य के अधिकांश रचनाकारों ने रामायण, महाभारत को भारतीय संस्कृति, इतिहास एवं साहित्य का हिस्सा माना है। रामधारी सिंह 'दिनकर' अपनी काव्य-रचना 'कुरुक्षेत्र' में महाभारत को साहित्य के रूपक के माध्यम से प्रस्तुत करते हैं।

"वह कौन रोता है
वहाँ इतिहास के अध्याय पर
जिसमें लिखा है नवजवानों के लहू का मोल है
प्रत्यय (प्रमाण या विश्वास) किसी
बूढ़े कुटिल नीतिज्ञ के व्यवहार का (वाक्य या शब्दों का)
जो आप तो लड़ता नहीं, कटवा किशोरों को मगर
आश्वस्त होकर सोचता
शोणित बहा
लेकिन गई बच लाज सारे देश की!"

यहाँ इतिहास के सच को साहित्य के सच में रूपायित कर राष्ट्रकवि दिनकर ने 'कुरुक्षेत्र' काव्य में जिस मानवीय संवेदना को प्रकट किया है, वह युद्ध की निरर्थकता सिद्ध करता है। भले ही रामायण और महाभारत के अंतर लोक में प्रवेश किए बिना कुछ लोग इन्हें युद्ध एवं हिंसा का महाकाव्य कह देते हैं, लेकिन सूक्ष्म रूप से देखें, तो ये दोनों युद्ध मनुष्य में निहित उसके मनोविकारों के विरूद्ध युद्ध हैं। यही भारतीय साहित्य एवं संस्कृति की विशेषता है, जीवंतता है कि सब कुछ के बावजूद यह सीखने एवं सुधरने का अवसर देती है। एक प्रकार से इतिहास भी हमें संभलने का अवसर देता है।

भारतीय साहित्य में प्रारंभ से ही इतिहास लेखन की परंपरा साहित्य बोध के रूप में रही है। रामायण, महाभारत, पुराण, बौद्ध-जैन साहित्य और जातक कथाएँ इन तथ्यों का समर्थन करते हैं। कई बार ऐसा भी लगता है साहित्य का सच इतिहास के विरुद्ध है। पर यह भी सत्य है कि साहित्य इतिहास के सच को अधिक गरिमामय और लोकव्यापी बना देता है। साहित्य में इतिहास का सच आकर व्याख्यायित हो जाता है, सौंदर्य, संवेदना, विडंबना, व्यथा आदि अनेक रूप धारण कर लेता है। उदाहरण के लिए भारतीय इतिहास की घटनाओं को ही लें – रामायण-महाभारत काल, वैदिक युग, बौद्ध-जैन परंपरा, सम्राट अशोक का कलिंग युद्ध, पुलकेशिन द्वितीय के साथ हर्षवर्धन का युद्ध, पानीपत का युद्ध, पृथ्वीराज चौहान एवं महमूद गोरी के युद्ध, मुगल काल के विविध प्रसंग, तुलसीदास, कबीर, भक्ति काल, सूफ़ीवाद, सिक्ख गुरुओं का बहुत कुछ साहित्यिक रूपांतरण भी किया गया। इनके बारे में काफ़ी कुछ हम साहित्य के माध्यम से ही जान पाते हैं। भारत में आचार्य चाणक्य, महाराणा प्रताप, सिक्ख गुरुओं, महात्मा गांधी, महान् क्रांतिकारियों, सुभाष चंद्र बोस के घोर संघर्षों को हम साहित्य के इसी माध्यम से अधिक जानते-समझते हैं। साथ ही यह तथ्य भी कि समय बड़े-से-बड़े महाराजाओं का भी मुख बंद कर देता है।

दरअसल तुर्क और मुगल शासकों के समय

से कमज़ोर पड़ती भारतीय परंपरा को, ब्रिटिशों ने शासन करने के उद्देश्य से भारतीय, जो एक कौम के रूप में सांस्कृतिक रूप से एक थीं, उन्हें काफ़ी कुछ सामाजिक-सांस्कृतिक रूप से विभाजित करने का षड्यंत्र रचा। राज करने की महत्वाकांक्षा से भारत की अस्मिता और संस्कृति के विध्वंस की पटकथा भी लिखी गई, जिसे तुलसी, कबीर, जायसी, रसखान, मीराबाई, अलवार, गुरु नानक महाराज, गुरु तेगबहादुर, गुरु गोविंद सिंह महाराज, महात्मा गांधी, अशफ़ाक उल्ला खाँ, हसरत खाँ मोहानी, मौलाना आज़ाद, सीमाँत गांधी ने सींचित किया था। क्या यह षड्यंत्र नहीं है कि भारतीय इतिहास में भारत के महान् ग्रंथों, महान् विचारकों, ऋषियों, संत-महात्माओं, भक्ति आंदोलनों, साहित्य, काव्य, संस्कृति, कला, संगीत आदि के विकास और प्रसार को पाठ्यक्रम की किताबों में व्यापक स्तर पर नहीं पढ़ाया जाता है। भारत का ज़्यादातर इतिहास युद्ध या सम्राट, सेनापति, नायक आदि के हिंसक इतिहास से भरा पड़ा है।

यह सत्य है कि जैसा हम विचार रखते हैं, वैसे ही हम बनते हैं। भारत की बहुत बड़ी पीढ़ी युद्धों के इतिहास से, साम्राज्यवादी या सामंतवादी इतिहास की अतिरंजना पढ़कर बड़ी हुई है। इससे जो परंपरा बनी वह हमारे समाज के लिए घातक सिद्ध हो रही है। यह सच है कि हमने अपने पाठयक्रम में लोक जीवन, लोक कला, संस्कृति, भाषा, अपनी माटी का अभिमान बहुत कम रखा। यही कारण है कि बाद के दौर में लोक में प्रतिष्ठित साहित्य बहुत कम रचा गया, जिसमें अपने साहित्य और संस्कृति के प्रति स्वाभिमान का बोध हो।

डॉ. रामविलास शर्मा कहते हैं "जो लोग साहित्य में युग-परिवर्तन करना चाहते हैं, जो लकीर के फ़कीर नहीं हैं, जो रूढ़ियाँ तोड़कर क्रांतिकारी साहित्य रचना चाहते हैं, उनके लिए साहित्य की परंपरा का ज्ञान सबसे ज़्यादा आवश्यक है। वे आगे कहते हैं, जो लोग समाज में बुनियादी परिवर्तन करके वर्गहीन शोषणयुक्त समाज की रचना करना चाहते हैं, वे अपने सिद्धांतों को ऐतिहासिक भौतिकवाद के नाम से पुकारते हैं। क्या आप कल्पना कर सकते हैं कि इतिहास के ज्ञान के बिना ऐतिहासिक भौतिकवाद का ज्ञान संभव है? इतिहास के ज्ञान से ही ऐतिहासिक भौतिकवाद का विकास होता है, साहित्य की परंपरा के ज्ञान से ही प्रगतिशील आलोचना का विकास होता है।"

भारतीय साहित्य-संस्कृति पर औपनिवेशिकता का सबसे बड़ा कुप्रभाव यह पड़ा कि एक वर्ग की दृष्टि से प्राचीन सब कुछ श्रेष्ठ है, वहीं दूसरे की नज़र में प्राचीन सब पोंगा है और तीसरी दृष्टि अपनी बंद आँखों से ब्रिटिश पापों को क्षमा करती है और इसके कुप्रभावों को अनदेखा करती है। इस प्रकार की दृष्टि ने भारतीय समाज का बहुत बड़ा अहित किया है। डॉ. रामविलास शर्मा अपने निबंध 'परंपरा का मूल्यांकन' में कहते हैं "साहित्य की परंपरा का पूर्ण ज्ञान समाजवादी व्यवस्था में ही संभव है। समाजवादी संस्कृति पुरानी संस्कृति से नाता नहीं तोड़ती, वह उसे आत्मसात् करके आगे बढ़ती है। हमारे देश की बड़ी आबादी अपने मूल साहित्य के ज्ञान से वंचित है। उसे वही पता है जो उसे बताया जाता है अथवा उस पर थोपा जाता है। जिसमें तटस्थता का अभाव है। जब साहित्य-संस्कृति में भारतीयता का प्रभाव बढ़ेगा, तो साहित्य-संस्कृति की इस विशद धारा में भारतीय साहित्य की गौरवशाली परंपरा का नवीन योगदान होगा।

यह अकाट्य सत्य है कि साहित्य वही सफल होता है, जिसमें सच्चाई के साथ संवेदना हो, समाज के प्रति प्रेम हो, तटस्थता हो। यही तथ्य लेखक, कवि, इतिहासकार के ऊपर भी लागू होता है। साहित्य वही सफल होता है, जिसकी पृष्ठभूमि में मनुष्यता है, संवेदना है, सच्चाई है। निर्मल वर्मा कहते हैं – "साहित्य में और खासकर कहानी में

निर्भीक सत्य लिखा जा सकता है।" रामधारी सिंह दिनकर ने 'संस्कृति के चार अध्याय' में भारत का निर्भीक सांस्कृतिक इतिहास लिखा है। इसलिए यह पुस्तक साहित्य का हिस्सा होते हुए भी इतिहास के दर्शन कराती है और लोकव्यापी बनी है। एक साहित्यकार कालजयी होता है। तुलसीदास जी ने मर्यादा और कर्तव्य बोध को सबसे ऊपर रखा। कबीरदास जी ने सांस्कृतिक विरोधाभासों के दौर में कालजयी रचनाएँ रचीं। कबीरदास ने अपनी रचनाओं में मानवीय सत्य की प्रतिष्ठा को जाति और धर्म से ऊपर रखा। यहीं तुलसीदास और कबीरदास के साहित्य के स्थायी अमरता का तत्त्व बोध है।

आज की स्थिति को देखकर कई बार लगता है क्या यह 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का भाव देने वाला राष्ट्र है, क्या इसी देश में ऋषि-परंपरा, शैव दर्शन, सांख्य, वैष्णव, बुद्ध, महावीर, गुरुनानक, गुरु तेगबहादुर, स्वामी विवेकानंद, सूफ़ी, गांधी दर्शन की परंपरा पुष्पित-पल्लवित हुई? दिन-प्रतिदिन समाज में स्त्रियों के प्रति बढ़ती हिंसा, अपनी सभ्यता-संस्कृति को हीन मानना किस प्रकार की विचारधारा का प्रतीक हो सकता है? क्या समाज में इस प्रकार की सोच से स्वस्थ परंपरा प्रस्फुटित होगी?

समाज में दूसरों के लिए घटता स्पेस, नैतिकता का अवमूल्यन, प्रकृति से दूर जाना क्या संकेत करता है? आज की सामाजिक स्थिति को देखकर कई बार लगता है कि क्या यह ऋषि दाधीचि का राष्ट्र है, जिन्होंने समाज रक्षार्थ अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया था। जबकि आज हमारी शिक्षा व्यवस्था मनुष्य को केवल रोटी कमाने वाली मशीन बनाना चाहती है। इस व्यवस्था में संवेदनशीलता के लिए कोई जगह नहीं, केवल स्वार्थपरकता ही सब कुछ है।

अभी कोरोना काल के दौरान ही हमने समाज में मानवीय मूल्यों के व्यापक क्षरण को अनुभव किया। इस दौरान व्यवस्था और नागरिक का जो संघर्ष हम सभी के समक्ष दिखा, यह सब कहीं-न-कहीं हम सभी के भारतीय मूल्यों से दूर जाने के नकारात्मक प्रभाव को ही दिखाता है। साथ ही इस अव्यवस्था ने भारतीय व्यवस्था पर औपनिवेशिक व्यवस्था के कुप्रभाव को भी रेखांकित किया। जहाँ सब कुछ सत्ता, शक्ति और लालच है। सच्चा साहित्य समाज को दृष्टि देता है, पर हमारी यह कमज़ोरी रही कि हमने अपनी जीवन-शैली में से उस साहित्य और संस्कृति के मूल भाव को ही निकाल या कमतर कर दिया है, जिसका कुप्रभाव हमने विभिन्न अवसरों पर देखा और महसूस किया है। यह साहित्य और संस्कृति से दूर जाने का ही असर है कि राजनैतिक हिंसा, सामाजिक हिंसा, आतंक, असमानता, व्यक्तिवाद, उत्पीड़न, असुरक्षा का असीमित विस्तार हो गया है, जिससे भारतीय साहित्य और संस्कृति के समरस भाव का मूल तत्त्व निष्प्रभावी होता दिख रहा है।

महात्मा गांधी ने कभी लालच और भोग पर टिकी सभ्यता को 'शैतानी सभ्यता' की संज्ञा दी थी और कहा था कि यह सभ्यता एक दिन खुद को ही नष्ट कर लेगी। भारतीय साहित्य और व्यवस्था में औपनिवेशिकता के कुप्रभाव ने हमारी 10, 000 वर्ष की ऐतिहासिक परंपरा को नष्ट करने का कार्य किया है। यह हमारी औपनिवेशिक शासन-व्यवस्था से उत्पन्न सोच का ही असर है कि हमने बलात्कार-हिंसा जैसे घृणित अपराध को मात्र कानून व्यवस्था का विषय मानकर अपने-आपको सामाजिक-सांस्कृतिक कर्तव्यों से विमुख कर लिया है। जिसका प्रभाव है - समाज का कमज़ोर पड़ना। बलात्कार जैसे घृणित अपराध सामाजिक-सांस्कृतिक व्ययस्था के क्षरण के प्रतीक हैं, पर व्यवस्था इसे मात्र कानूनी उपायों के द्वारा दूर करना चाहती है। भारतीय साहित्य-संस्कृति में ऐसे

अनेक नैतिक आदर्श महापुरुषों को जगह दी गई है, जिनके कृतित्व को जानकर-समझकर भारतीय संस्कृति पुनः शीर्ष पर स्थापित होगी। आज आवश्यकता है रामायण के नायकों, श्रीकृष्ण, बुद्ध, महावीर, गुरु नानक, रविदास, चैतन्य, विवेकानंद, ध्रुव, नचिकेता जैसे नायकों के जीवन-मूल्यों से युवा पीढ़ी को परिचित कराने की।

पूर्व में भारतीय कभी प्रकृति को माँ का दर्जा देते थे। भारतीय साहित्य-संस्कृति में प्रकृति की महिमा का अपूर्व वर्णन है, पर आज का भारतीय समाज प्राकृतिक आपदाओं से भी सबक नहीं लेता दिखता, जिसका नतीजा हम सभी देख रहे हैं। यह भी साफ़ तौर पर दिखाई देता है कि जातिवाद, हीनतावाद, सामाजिक विभेद की भावना को समाज के बहुत बड़े तबके के मन में गहरे तक बैठा दिया गया है। दुर्भाग्यवश, समाज-राजनीति-प्रशासन से जुड़ा एक बड़ा तबका भारतीय संस्कृति के सनातन तत्त्वों को एक पंथ विशेष से जोड़कर देख रहा है, जिससे भारतीय संस्कृति का समरस भाव टूट रहा है। कहीं-न-कहीं यह सब भारतीय साहित्य एवं संस्कृति पर औपनिवेशिक प्रभाव का ही परिणाम है, जिसने पूर्व में भी देश को विभाजन की विभीषिका का तांडव देखने के लिए मजबूर किया था। ऐसे में आवश्यकता इस बात की है कि भारतीय साहित्य में भारतीय मूल्यों की प्रतिस्थापना हो। जहाँ समानता, न्याय और मूल्य की बात हो, न कि धर्म, जाति और विभेद की।

यह औपनिवेशिकता का ही प्रभाव है कि भारतीय शिक्षा-व्यवस्था में भाषा एवं साहित्य की स्थिति लगभग उपेक्षित है। अक्सर सुनते हैं 'साहित्य समाज का दर्पण है', पर जब शिक्षा-व्यवस्था एवं लोक जीवन में अपनी भाषा एवं साहित्य की स्थिति देखते हैं, तो बड़ा दुख होता है। ऐसे में किस प्रकार की स्थिति निर्मित होगी? भाषा के माध्यम से ही मनुष्य अभिव्यक्ति संपन्न होता है और साहित्य इस अभिव्यक्ति को आवाज़ देता है। हमारी संवेदना का संसार रचता है। ऐसे में यह प्रश्न प्रमुखता से उठता है कि हमारे नीति-निर्माताओं ने किस नीति के तहत एक पूरी पीढ़ी को साहित्य एवं संस्कृति से काटकर उसे उस माटी की संवेदना से दूर कर दिया, जहाँ से वह पनपा। साहित्य हर किसी के लिए रोज़ी-रोटी की आपूर्ति भले ही न करता हो, मगर यह हमें संस्कृति के उस प्रकाश से परिपूर्ण करता है, जो शायद ही किसी और तरीके से भरा जा सके।

यह सत्य है कि समानता-आधारित समाज बनाना हम सभी का लक्ष्य है। पर इसे केवल सत्ता, कानून एवं राजनीति के भरोसे नहीं हासिल किया जा सकता। राजनीति और कानून के भरोसे इस आदर्श स्थिति को हासिल करना कतई संभव नहीं। कोई भी सामाजिक बदलाव मात्र नियम-कानून के भरोसे नहीं आ सकता। इनसे सहयोग हो सकता है। ये सब बदलाव के सहायक अंग हैं। निःसंदेह दण्ड का डर आदमी को अंदर से रोकता है, मगर उसे अहिंसक नहीं बनाता। जब भी दण्ड का भय दूर होगा, आदमी अपनी मूल वृत्ति में वापस आएगा। मूल बात जड़-मूल से बदलने की है, पर इस हेतु सांस्कृतिक सशक्तता सबसे अधिक ज़रूरी है।

साहित्य हमें व्यापक दृष्टि देता है। ऐसे में यह ज़रूरी है कि हम ऐसे साहित्य का सृजन करें, जो सार्वकालिक हो, समदृष्टि रखे। हमारी संस्कृति को व्यापक दृष्टि प्रदान करता हो। भावी पीढ़ी को दिशा देने हेतु इस साहित्य का अनुसरण ज़रूरी है। विकास एवं तकनीक की अंधी दौड़ में हमने अपनी संस्कृति एवं इतिहास के अवसान की घोषणा स्वतः कर दी है। आज पुस्तक एवं पुस्तकालय संस्कृति गायब-सी है। ऐसे में यह प्रश्न उठता है कि हमारी संस्कृति का ध्वज वाहक कौन बनेगा? हमारे पुरखों ने तो कम-से-कम स्मृतियों, श्रुतियों के बहाने अपनी सांस्कृतिक गाथा को सुरक्षित रखा, पर

सांस्कृतिक चेतना के अभाव में भावी पीढ़ी का क्या होगा? क्योंकि हमने तो एक बहुत बड़ी पीढ़ी को औपनिवेशिक प्रभाव में अपने साहित्य एवं संस्कृति से दूर रखा। हमारा इतिहास भी तो इन्हीं में संरक्षित था।

वस्तुतः हमारे पुरखों ने इतिहास कभी लिखा ही नहीं, जो लिखा वह साहित्य था। इसीलिए हमारे यहाँ साहित्य को सर्वकालिक सत्य माना गया। पर अफ़सोस यह रहा कि आधुनिक भारतीय साहित्य के एक बहुत बड़े भाग में औपनिवेशिकता के प्रभाव के कारण सर्वकालिकता का अभाव देखा गया। इसे मैं अपनी कविता 'इतिहास' के माध्यम से स्पष्ट करना चाहूँगा -

इतिहास

"इतिहास
भारत की जहालत का
बदनामी का
संपन्नता का
विपन्नता का

कौन-सा
कुभाषा का
कुविचारों का
या अपने को हीन मानने का

सौहार्द की आड़ में
अपने को खोने का
विश्व-नागरिकता की चाह में
भारतीयता को खोने का

समरसता की आड़ में अपने को खोने का
इतिहास है क्या
सिकंदर को महान् बनाने का
या
समुद्रगुप्त से ज़्यादा नेपोलियन को
या
फिर स्वयं को खोकर
दूसरों को पाने का
या
दूसरों को रौंदकर अपनी पताका फहराने का

आधुनिकता की आड़ में
पुरातनता थोपने का
समाज सुधार आंदोलनों को
धार्मिक आंदोलन का नाम देने का
या
कौमियत को धर्म का नाम देने का

क्या धर्म को विचार का नाम देना आंदोलन है
या फिर
अंग्रेज़ी दासता को श्रेष्ठता का नाम देना
या फिर सूफ़ीवाद की आड़ में
भक्तिवाद को खोने का

या फिर
इतिहास है अतीत के पन्नों पर
खुद की इबारत ज़बरदस्ती लिखने का
या शक्तिशाली के वर्चस्व को स्थापित करने का

कहते हैं भारत सदियों से एक है
तो फिर जाति-धर्म के नाम पर
रोटी सेंकना क्या इतिहास है?
क्या देश की सांस्कृतिक पहचान नष्ट करना
इतिहास है?

यदि यह इतिहास है
तो ज़रूरत है इसे जानने-समझने की
इतिहास है तटस्थता का नाम

तो फिर यह एकरूपता क्यूँ
क्या इतिहास दूसरों के रंगों में रंगने का नाम है
या दूसरों की सत्ता स्थापित करने का?"

भारतीय साहित्य में औपनिवेशिकता के प्रभाव को इस कविता के माध्यम से भली-भाँति समझा जा सकता है। अपनी संस्कृति एवं भाषा को हेय समझने के पीछे यह एक बहुत बड़ी वजह है। अंत में, यह कहना ज़रूरी है कि साहित्यकारों, इतिहासकारों को यह जानने-समझने की ज़रूरत है कि इतिहास केवल सत्ता का घटनाक्रम नहीं होता, अपितु यह देश एवं संस्कृति को जानने-समझने का सशक्त मार्ग होता है। जिस मार्ग में संतुलन हो, समग्रता हो, सशक्तता हो, भावी पीढ़ी के जानने-समझने की सोच हो।

संदर्भ स्रोत :

1. इग्नू स्नातकोत्तर (हिंदी) की अध्ययन सामग्री- समालोचना से साक्षात्कार में प्रकाशित विविध लेख
2. वाणी मासिक पत्रिका के विविध अंक

hindisewi@gmail.com

एक दिन का परिवार

- श्री देवेंद्र मिश्रा
उत्तर प्रदेश, भारत

बात छह साल पहले की है। गर्मी की छुट्टियों में हमारा वैष्णो देवी और जम्मू जाने का प्लान बना। मैंने अपनी इंटरमीडिएट की परीक्षाएँ दे दी थीं, सो मेरी मौज थी। मेरे छोटे भाई आशीष की भी छुट्टियाँ हो गई थीं। एक हफ़्ते का प्लान था। हम सब बहुत खुश थे। 4 मई को हमने लखनऊ से ट्रेन पकड़ी। यात्रा शुरू हो गई। मैं पहली बार अपने राज्य की सीमा से बाहर जा रहा था, इसलिए और खुश था। रास्ते भर हमने खूब मौज की। ऊपर से खिड़की वाली सीट मेरे लिए सोने पे सुहागा था। रास्ते भर के खूबसूरत दृश्य अभी तक मेरी स्मृति में ताज़ा हैं। कहीं दूर-दूर तक फैले बड़े-बड़े खेत, कहीं नदियाँ, कहीं पुल, कहीं जंगल, नई-नई आकृतियों के घर और उनकी छतें, फ़ुटबॉल के आकार की पानी की टंकियाँ, पहाड़, ऐसे पेड़, जिनमें केवल फूल थे, पत्तियाँ नहीं और न जाने क्या-क्या।

अगले दिन शाम को हम जम्मू पहुँच गए थे। वहाँ से हम बस से कटरा पहुँचे। हम सब बुरी तरह से थके थे और बस चाहते थे कि एक बेड मिल जाए, जिसपर पड़कर हम सब सो जाएँ। माँ रास्ते भर सामान को लेकर न जाने कितनी बार हम दोनों को डाँट चुकी थी कि सामान का ध्यान रखना। सामान नीचे रखकर इधर-उधर देखने की वजह से थकान के बावजूद हमें फिर डाँट पड़ी। अंततः पापा ने एक हॉटल में कमरा लिया और हम थकान से परेशान कमरे में पहुँचे। वहाँ जाकर दो-तीन घंटे हम खूब सोये।

रात में 8 बजे के करीब मैं सोकर उठा। हाथ-मुँह धोकर कमरे से बाहर बालकनी में निकला। थकान की वजह से मैं कटरा को ठीक से निहार भी नहीं पाया था। शाम को लाइट वगैरह जल जाने के बाद बाज़ार बहुत सुन्दर दिख रहा था। सामने ही खूब बड़े-बड़े पहाड़ दिख रहे थे, जिनपर रास्तों के किनारे-किनारे लगी हुई लाइटें ऐसी लग रही थीं, मानो किसी ने पहाड़ों पर जगमग झालरें लपेट दी हों। ये सब मैं देख ही रहा था कि बगल वाले कमरे की बालकनी पर बहुत ही प्यारी-सी बच्ची निकली और बालकनी की रेलिंग को पकड़कर खड़ी हो गई। मेरी नज़र उसपर पड़ी। गुलाबी रंग की फ्रॉक में वह बहुत प्यारी लग रही थी। वह बाहर की ओर बड़ी उत्सुक नज़रों से देख रही थी। उसने मुझे देखा, तो चुप हो गई और परदे के पीछे छुप गई। मैंने बहुत स्नेह से उसको आँखों के इशारे से बुलाया। वह खिलखिलाकर हँस पड़ी। न जाने क्यों मुझे बारिश की बूंदों की याद आ गई।

रात का खाना खाकर हम वापस लौट रहे थे। कमरे के पास पहुँचे, तो देखा कि बगल वाले कमरे में रुका हुआ एक परिवार भी वही बाहर खड़ा था। लगभग मेरे ही कद के एक नौजवान, उनकी पत्नी और वही छोटी बच्ची, जिसे मैंने थोड़ी देर पहले देखा था। मुझे देखकर वह अपने पापा के पीछे छुप गई। मैंने हाथ से इशारा किया, तो फिर हँस पड़ी। मैं भी हँस पड़ा। मैंने उन दोनों को नमस्ते किया और बोला आपकी बच्ची बहुत प्यारी है। उन्होंने भी बहुत अच्छे-से बात की।

कमरे में आते ही माँ ने मुझे डाँटा। "अनजान शहर में अनजान लोगों से ज़्यादा मेलजोल नहीं बढ़ाना चाहिए। कितनी बार बताऊँ तुम लोगों को? क्या ज़रूरत थी उन लोगों से इतनी बातचीत करने की?"

मैं बोला, "माँ, बस उस बच्ची की वजह से, बस ऐसे ही थोड़ी बहुत बात कर ली, क्या हुआ उसमें?"

"नहीं, ज़्यादा मेलजोल न बढ़ाना अब। पता नहीं कैसे लोग हैं, कहाँ से आए हैं?" माँ कपड़े समेटती हुई बोली।

"महाराष्ट्र के किसी ज़िले से हैं माँ। कुछ नाम बता रहे थे। भूल गया। और खुद आर्मी में है। उनकी पत्नी सरकारी स्कूल में टीचर है।" मैंने बताया।

"हाँ हाँ, तुमको सब सही-सही बता देंगे। आजकल किसी का कोई भरोसा नहीं है। लोग औरत और बच्चे किराये पर लेकर परिवार बनकर लूट लेते हैं लोगों को। तुम लोगों को पता नहीं क्यों समझ नहीं आता ये सब?" माँ कमरे का लॉक चेक करते हुए बोलीं।

"अच्छा अब लाइट बंद होगी कमरे की? सुबह निकलना है। 14 किलोमीटर की पैदल यात्रा भी करनी है। सोया जाए अब?" पापा ने सम्पूर्ण वार्ता पर विराम लगा दिया।

सुबह 11 बजे हम सब नाश्ता वगैरह कर के यात्रा के लिए निकले। हॉटल वाले ने कहा था कि वह अपनी गाड़ी से हमें प्रवेश द्वार तक छोड़ने जाएगा। हम हॉटल के बाहर खड़े होकर उसी का इंतज़ार कर रहे थे, तभी बगल के कमरे वाले विनय अंकल और उनका परिवार आ गया। मैंने उन्हें गुड-मॉर्निंग कहा।

"आप भी चल रहे हैं क्या साथ में?" पापा ने पूछा।

"जी हाँ, हॉटल वाला बोला था हम लोगों से कि बाहर आ जाइये। अभी निकलना है। आप भी साथ चलेंगे?" विनय अंकल ने पूछा।

"अरे वाह! एक से भले दो। अच्छा हुआ। आप लोग भी साथ में रहेंगे, तो और मज़ा आएगा" मैं बोला।

उनकी बच्ची भी मुस्कुरा रही थी। अंकल-आंटी भी खुश थे। बस इन सब बातों से माँ ज़्यादा खुश नहीं दिख रही थी।

यात्रा शुरू हुई। गाड़ी में आते हुए हमने काफ़ी बातें कीं। पता चला कि अंकल की पोस्टिंग बंगाल में है। उनका घर महाराष्ट्र में है। आंटी वहीं महाराष्ट्र में एक सरकारी स्कूल में केमिस्ट्री की टीचर थी। उनकी बच्ची का नाम विदिशा था। बहुत प्यारी बच्ची थी। मेरी उससे ठीक-ठाक दोस्ती हो गई थी। पर वह अब भी मुझसे थोड़ा डरती थी। इन सब के बीच मैं और मेरा भाई बहुत खुश थे। हमारी यात्रा और मज़ेदार हो गई थी।

"दीदी, आप भी जॉब करती है क्या कहीं?" आंटी ने माँ से पूछा।

"जी नहीं", माँ ने बड़े अनमने स्वर में उत्तर दिया। मैंने उन दोनों को ज़्यादा बात नहीं करने दी और बात बदल दी।

हम प्रवेश द्वार पहुँचे। असली यात्रा अब शुरू हुई थी। मैं और मेरा भाई बहुत उत्साहित थे। विदिशा भी पापा की गोद में अपने आस-पास की चीज़ों को विस्मय से देख रही थी। मैंने अपने कैमरे से हम सबकी कुछ तस्वीरें खींची। पापा और अंकल कुछ काम से किसी काउंटर पर चले गए। मैं विदिशा के साथ खेल रहा था। माँ ने मुझे पास बुलाया। मैं समझ गया था कि डाँट पड़ने वाली है।

पास गया, तो माँ धीरे से बोली, "इतना ज़्यादा घुलना-मिलना ठीक नहीं है। साथ चल रहे हैं, तो चलें। पर थोड़ी दूरी बनाए रखो।" मैंने अनमने ढंग से सहमति में सिर हिलाया।

रास्ते में मैंने खूब तस्वीरें खींचीं। अंकल-आंटी शुरुआत में थोड़ा संकोच कर रहे थे। पर धीरे-धीरे वे भी बहुत अच्छे से घुल-मिल गए। हमने रास्ते में ढाबे पर रुककर खाना खाया। वहाँ आंटी ने बैग से एक डब्बा निकाला, जिसमें लड्डू थे। शिष्टाचारवश उन्होंने हमारी तरफ़ डब्बा पहले बढ़ाया। मैंने माँ की ओर देखा।

"ये लोग ज़्यादा मीठा नहीं खाते। आप लोग खाइए।" माँ ने बहुत अच्छे से कहा।

"अच्छा दीदी। कोई बात नहीं।" आंटी ने

डब्बा अंकल और विदिशा की ओर बढ़ा दिया। महाराष्ट्रियन लड्डू न खा पाने का सबसे ज़्यादा ग़म मुझे था।

वैष्णो देवी की चढ़ाई लगभग 14 किलोमीटर पैदल चलकर पूरी होती थी। माँ को घुटनों की समस्या पहले से थी, इसलिए उन्हें चढ़ने में थोड़ी कठिनाई हो रही थी। चूँकि अंकल सेना के जवान थे, तो विदिशा को गोद में लिए वे सरपट चढ़े जा रहे थे। आंटी भी कम उम्र की थी। इसलिए उन्हें कोई खासी समस्या नहीं हो रही थी। पर उन्होंने माँ के साथ धीरे-धीरे चलना ठीक समझा। रास्ते में माँ के पैरों में बाम भी लगाया। माँ का मन अब थोड़ा-थोड़ा उनके लिए शायद अच्छा हो रहा था। पापा भी माँ के साथ चल रहे थे। सूर्यास्त होने के बाद हमने काफ़ी रास्ता तय कर लिया था। अँधेरा होने पर लाइट्स के जगमगाते ही पूरा कटरा शहर ऊपर से ऐसा लग रहा था, जैसे पहाड़ की गोद में किसी ने सितारे बिछा दिए हों। बहुत ही सुन्दर क्षण था वह।

हम सब मुख्य द्वार पर पहुँच गए थे और बुरी तरह थके हुए थे। वहाँ की बहुत ही ज़्यादा लम्बी लाइन देखकर मेरे भी पसीने छूट गए।

"अरे बाप रे! इतनी लम्बी लाइन। यहाँ तो पूरी रात खड़े होना पड़ेगा।" आशीष बोला। मेरा उत्साह भी जवाब दे चुका था। माँ अब खड़े हो पाने में बुरी तरह असमर्थ थी। लेकिन अंकल के चेहरे पर बिल्कुल शिकन नहीं थी। वे खड़े मुस्कुरा रहे थे। विदिशा उनकी गोद में सो गई थी।

वे माँ के पास जाकर बोले, "भाभी, परेशान मत होइए। बस थोड़ी दूर और चलना है, पाँच मिनट। यहाँ हम आर्मी वालों को अलग से एंट्री दी जाती है। थोड़ी दूर पर आर्मी वालों का गेस्ट हाउस है। वहाँ चलकर बस सामान रख दें फिर चलते हैं।"

पापा बोले, "पर वे तो आप लोगों को जाने देंगे। हम लोगों को कहाँ जाने देंगे?"

"क्यों नहीं जाने देंगे? आप लोग परिवार हैं हमारा। परिवार को कोई क्यों रोकेगा?" अंकल की आवाज़ में बहुत अपनत्व था। हम सब के चेहरे पर मुस्कान आ गई।

"दीदी, परेशान मत होइए। बस आ गया। हम सब साथ हैं न।" इस बार माँ के चेहरे पर अपनेपन वाली मुस्कान थी।

हम सब अंकल के साथ आर्मी वाले गेस्ट हाउस गए। वहाँ अपना सामान रखा। 10 मिनट आराम किया। फिर दूसरे स्पेशल गेट से अन्दर गए। परिचय पूछने पर अंकल ने "वी आर फ़ैमिली" कहकर हम सबका परिचय दिया। बहुत ही जल्दी और आराम से हम मंदिर के गर्भ-गृह तक पहुँच गए। मंदिर के अन्दर पहुँचते ही हम सबकी थकान छूमंतर हो गई। दर्शन बहुत अच्छे से संपन्न हो गए।

बाहर निकलकर हम सब बहुत तरोताज़ा महसूस कर रहे थे। रात के 12 बज रहे थे। पहाड़ पर होने की वजह से ठंडी-ठंडी हवा चल रही थी, जिससे हलकी-सी सर्दी लग रही थी। पर न जाने क्यों अंकल थोड़ा-सा उदास हो गए थे। मैंने पापा से पूछा, "पापा, अब भैरो बाबा मंदिर भी तुरंत चलेंगे न?"

पापा ने कहा, "अगर हिम्मत बची हो, तो बिल्कुल चलो।"

अंकल उदासी भरे स्वर में बोले "भैया, भाभी, अर्जुन, आशीष बेटा, आप लोग जाओ। अब आगे हम लोग नहीं चल पाएँगे। मुझे सुबह की ट्रेन से बंगाल निकलना है। तुम्हारी आंटी और विदिशा को ट्रेन पर बिठाना है। हमें अब आज्ञा दीजिये। आप सबकी वजह से एक पल के लिए भी नहीं लगा कि हम कहीं बाहर अनजान जगह पर आए हैं। लगा जैसे परिवार के साथ ही हैं। अपने लोग हैं। बहुत अजीब लग रहा है ऐसे बीच रास्ते में आप सबको छोड़ जाने में, पर मजबूरी है। जाना पड़ेगा।"

मैं सबसे ज़्यादा उदास हो गया। लगा जैसे कोई

बहुत अपना अलग होता जा रहा है। माँ के चेहरे पर भी मैंने वही पीड़ा देखी, "भैया कल दिन में चले जाना। अब यहाँ तक आए ही हैं, तो भैरव बाबा भी हो लीजिये। वहाँ जाए बिना दर्शन पूरा नहीं माना जाता।" माँ की आवाज़ में निवेदन था।

"चलते भाभी, अगर जाना इतना अर्जेंट न होता। और कल सुबह की ट्रेन का रिज़र्वेशन भी है। अगर छूट गई, तो फिर दिक्कत होगी। मेरा भी मन है आप सब के साथ चलने का, पर मजबूरी है।" अंकल की आवाज़ थोड़ी भारी हो गई थी।

पापा ने अब बोलना ज़रूरी समझा, "कोई बात नहीं विनय जी। आप सब का साथ बहुत यादगार रहेगा। ज़रूरी काम मत रोकिये। आप जैसे लोग मिलना सौभाग्य की बात है। आपकी बहुत याद आएगी।"

यह सुनकर अंकल ने पापा को गले लगा लिया और उनके पैर छू लिए। फिर उन्होंने माँ के पैर भी छुए। आंटी ने भी आकर माँ को गले लगाया। माँ ने पूरे अपनत्व के साथ उन्हें गले लगाया।

"अच्छा दीदी, अब चलते हैं। न जाने फिर कभी मिलेंगे या नहीं। पर आप सब की बहुत याद आएगी। इस परिवार को हम कभी नहीं भूलेंगे।"

अंकल मेरे पास आए। मेरा उदास चेहरा पढ़ लिया था उन्होंने। "अर्जुन बेटा, कॉन्टेक्ट में रहोगे न? अपना नंबर और ईमेल दे दो। जो फ़ोटो खींचे हो, मुझे भी मेल कर देना।"

मैंने उन्हें अपने घर का नम्बर और अपना ईमेल दिया और उनसे भी लिया। उन्होंने बड़े प्यार से मुझे गले लगाया।

उन्हें जाते हुए हमने नहीं देखा। बड़ी तकलीफ़ हो रही थी। मुझसे भी ज़्यादा उदास माँ थी।

"कैसे सज्जन लोग थे। लग रहा है, जैसे परिवार अलग हो गया है। एक दिन का सही, पर परिवार बन गए थे ये लोग।" माँ पापा से बोली।

पापा ने चिढ़ाने के लिए कहा, "कहीं बहरूपिये हुए तो? तुम्हें तो विश्वास ही नहीं था?"

"अरे! उनकी बच्ची को देखकर भी ऐसे बोल रहे हैं आप? मुझे पूरा भरोसा है उनपर। कितनी मदद की बेचारे ने हम सब की। आपको तो इंसान की पहचान ही नहीं है।" पापा मुझे देखकर हँस पड़े और मैं भी हँस पड़ा। देर से ही सही पर अंकल-आंटी ने माँ का विश्वास जीत लिया था।

आज काफ़ी समय बाद विनय अंकल का फ़ोन आया था। उनसे खूब बातें हुईं। माँ ने भी बात की। विदिशा अब बड़ी हो गई थी। उनका एक बेटा भी हो गया था, अथर्व। अंकल ने अपने परिवार के फ़ोटो भी भेजे। वह परिवार, जो हमारा भी परिवार था, एक दिन का ही सही।

dev00953@gmail.com

हंगरी में हिंदी का परचम

- डॉ. विजया सती
दिल्ली, भारत

'हिंदी हैं हम, वतन है हिन्दोस्तां हमारा!'

सुनने में अच्छा लगता है और जब कहीं परदेश में अपने देश से अचानक मुलाकात हो जाए, तो दिल बाग-बाग ही होगा!

बिल्कुल ऐसा ही हुआ, जब मैं ऐल्ते विश्वविद्यालय, बुदापैश्त के भारत अध्ययन विभाग में हिंदी पढ़ाने पहुँची! विभाग में भूतल पर पहले कक्ष में प्रवेश करते ही लगा कि जैसे अपने ही देश में आ गए हों। दरवाज़े पर कलात्मक अल्पना और बंदनवार, दीवारों पर हिंदी तिथि सहित केलेण्डर,

कृष्ण-यशोदा की छवि समेटे बहुरंगी चित्र और पार्थसारथि के साथ पार्थ भी विद्यमान थे।

कक्ष की दीवार में एक स्थान पर लकड़ी से बना मंदिर जड़ा था, मंदिर में दीपक, माला, अगरबत्ती, मूर्तियाँ, शंख और घंटी भी विराज रहे थे। छात्र पीटर ने सुन्दर कैलीग्राफ़ी करते हुए कक्ष में यह उक्ति उकेर दी थी :

'कोस-कोस पर बदले पानी, चार कोस पर बानी!'

पहली मंज़िल पर विभाग की ओर ले जाने वाली सीढ़ियों में 'इन्क्रेडिबल भारत' के मोहक रंगीन पोस्टर लगे थे। विभाग के विभिन्न कक्षों में अठारह हज़ार हिंदी-संस्कृत ग्रन्थ सुव्यवस्थित रूप से रखे हुए थे। हिंदी के नवीनतम आलोचनात्मक और सर्जनात्मक साहित्य के साथ हिंदी से हंगेरियन भाषा में अनूदित पुस्तकें भी मौजूद थीं।

विभाग के विद्यार्थी भारतीय भोजन के अतिरिक्त यहाँ के नृत्य और संगीत में रुचि लेते हैं, भारतीय फ़िल्में भी इन्हें प्रिय हैं। दूतावास का सांस्कृतिक केन्द्र यदि लोकप्रिय हिंदी फ़िल्म 'जब वी मेट' या 'हम दिल दे चुके सनम' दिखाता, तो विभाग के विद्यार्थियों का 'कला फ़िल्म क्लब' सत्यजित रे की 'देवी', 'पथेर पांचाली' और 'शतरंज के खिलाड़ी' जैसी फ़िल्में न केवल दिखाता, बल्कि उन पर विमर्श भी करता।

यहाँ से मुझे ज्ञात हुआ कि विभाग से अब तक पचास से अधिक भारतविद् अध्ययन कर चुके हैं। इनमें से कई देश और विदेश में विभिन्न पदों पर कार्यरत हैं, जैसे अध्यापक, सांस्कृतिक केन्द्रों तथा संग्रहालयों में निदेशक, निजी और आधिकारिक रूप से हिंदी अनुवादक आदि।

यहाँ के छात्र कुछ समय के लिए भारत ज़रूर हो आना चाहते हैं, ताकि जो यहाँ पढ़ा, जैसा यहाँ जाना उसका साक्षात्कार कर सकें। भारत दर्शन में उनकी पहली पसंद बनारस यात्रा है, फिर ताजमहल और राजस्थान देखने की इच्छा!

हिंदी और भारत से जुड़े विशिष्ट अवसरों जैसे हिंदी दिवस, होली और दिवाली पर विद्यार्थी भारतीय परिधान में आने की कोशिश करते हैं। भारतीय नृत्य, गीत, नाटक और कविता भी प्रस्तुत करते हैं। रोज़गार के अवसर कम होने पर भी इनकी लगन और अभिरुचि देखकर प्रसन्नता होती है।

स्मृतियों के इंद्रधनुषी रंग

हंगरी से हिंदी की स्मृतियों के इंद्रधनुषी रंग मारिया जी के व्यक्तित्व से भी जुड़े हैं। डॉ. मारिया नैज्येशी बुदापैश्त में प्रतिष्ठित ऐल्ते विश्वविद्यालय के भारत अध्ययन विभाग की अनवरत अध्यक्षा हैं।

छात्र जीवन में विश्वविद्यालयीय स्तर पर वे प्राचीन यूनानी, लैटिन और संस्कृत भाषाएँ पढ़ रही थीं और अपने गुरु प्रोफ़ेसर चबा की प्रेरणा से वे भारत हिंदी पढ़ने गईं।

उन्होंने प्रेमचंद और मोरित्स जिग्मोंद के साहित्य पर शोध कर पी.एच.डी. की डिग्री भारत से हासिल की और जब से अपने देश में हिंदी पढ़ाना शुरू किया, तो फिर मुड़कर नहीं देखा।

जब वे हिंदी पढ़ने भारत आईं, तो यहाँ का जीवन उनके लिए बिल्कुल नया और अलग अनुभव लेकर आया। फिर भी भारत ने उन्हें प्रेरित किया।

मारिया जी मुक्त मन से कहती हैं कि मैं हिंदी की बदौलत विश्वभर में घूमी हूँ। उन्होंने हिंदी से हंगेरियन और हंगेरियन से हिंदी में कई अनुवाद किए हैं। वे बताती हैं कि विभाग में पहले हिंदी-शिक्षण सामग्री नहीं थी, पढ़ाना कठिन था। किन्तु अब भारतीय दूतावास और भारतीय सांस्कृतिक सम्बन्ध परिषद् के सहयोग से विभाग का समृद्ध पुस्तकालय है और हिंदी फ़िल्म देखने की व्यवस्था है।

मारिया जी भारतीय दूतावास के सहयोग से हिंदी की ओरिएन्टेशन कक्षाओं का संचालन भी

करती हैं। इसमें हंगरी के भारत प्रेमी हिंदी भाषा और भारतीय संस्कृति जानने के लिए आते हैं। इन कक्षाओं में सामान्य भाषा ज्ञान के अतिरिक्त आमंत्रित अतिथि विद्वानों के भाषण भी होते हैं, जिनमें भारतीय कला, साहित्य, समाज और संस्कृति संबंधी जानकारियाँ दी जाती हैं। होली, दीवाली और हिंदी दिवस मनाया जाता है।

भारत-हंगरी मैत्री संघ की अध्यक्ष के रूप में मारिया जी ने महत्त्वपूर्ण कार्य किए। वे कहती हैं कि हिंदी के लिए समर्पित भाव से काम करने की ज़रूरत है, इस भाषा में अपार संभावनाएँ हैं।

एक छोटी-सी मुलाकात

बुदापैश्त में हिंदी से जुड़ी एक छोटी-सी मुलाकात और भी स्मृति में है, भारत प्रेमी और हिंदी प्रेमी डॉ. एवा अरादि से।

उन्हें हंगरी में हिंदी की आरंभिक जानकार कहा जा सकता है। किसी समय जब वे आज के मुम्बई यानी बंबई में रहीं, तब उन्होंने भारतीय विद्या भवन में हिंदी भाषा सीखी। 1975 में वे छात्रा के रूप में नागपुर में पहले विश्व हिंदी सम्मलेन में भाग लेने आईं। यहीं से हिंदी लेखकों की गरिमामयी पीढ़ी महादेवी वर्मा, जैनेन्द्र कुमार, धर्मवीर भारती, कमलेश्वर, मन्नू भंडारी और राजेन्द्र यादव को सुनकर उनके लेखन के अनुवाद के प्रति डॉ. अरादि का रुझान हुआ।

विद्या भवन से अध्ययन पूरा कर स्वदेश लौटने पर लम्बे समय तक उन्होंने दो विश्वविद्यालयों में हिंदी अध्यापन किया। इसी समय उन्होंने प्रेमचंद साहित्य को पढ़ा और समझा, फिर उनके उपन्यास 'निर्मला' और दस कहानियों का हंगेरियन भाषा में अनुवाद किया। यह प्रयास प्रकाशित और प्रशंसित हुआ।

भारत से अपने जुड़ाव को वे आज भी ज्यों-का-त्यों महसूस करती हैं। वे कहती हैं कि हंगरी में स्वाभाविक रूप से भारत के प्रति लगाव है। यहाँ योग, भारतीय शास्त्रीय नृत्य और भोजन को बहुत पसंद किया जाता है। हिंदी न सीखने वाले भी भारत के बारे में बहुत कुछ जानते हैं और जानना चाहते हैं। वे गांधी और टैगोर का आदर करते हैं, पैसा जमा करके एक बार भारत जाना चाहते हैं।

डॉ. अरादि आज 82 वर्ष की हैं। ईश्वर में भरोसा रखती हैं, परिवार के साथ बुदापैश्त में रहती हैं। इन दिनों वे घर से एक महत्त्वपूर्ण काम कर रही हैं। वे 'भारत में हमारे प्राच्यविद्' (Our Orientalists in India) शीर्षक पुस्तक तैयार कर रही हैं। आने वाले समय में हंगेरियन भाषा में इसका प्रकाशन होगा।

दूर देश में भारत की याद और हिंदी पढ़ने वाले छात्रों, डॉ. मारिया नैज्येशी और डॉ. अरादि की यह सक्रियता हंगरी प्रवास में भरपूर उल्लास देती रही।

vijayasatijuly1@gmail.com

उर्दू लेखिका : सावित्री गोस्वामी

- रीता कौशल
ऑस्ट्रेलिया

कुछ रिश्ते नाम के होते हैं और कुछ रिश्तों के नाम नहीं होते। ऐसा ही अनाम रिश्ता था मेरा, उर्दू लेखिका, सावित्री गोस्वामी के साथ। उम्र में दो पीढ़ियों का अंतर, फिर भी उनके और मेरे बीच में एक अलग ही तरह की समझ थी। मुझे ही नहीं, किसी को भी अपना बना लेने का कुदरती हुनर था उनके पास।

वे मुझसे पहली बार मैंनिंग सेंटर में रूबरू

हुई थीं। ये सेंटर वेस्टर्न ऑस्ट्रेलिया के पर्थ शहर के मैंनिंग सबर्ब में, बुज़ुर्गों के आपस में मिलने-जुलने, कुछ कविता-कहानी, गपशप करने का स्थान है। इस सेंटर की प्लास्टरविहीन दीवारें, नीले फूल-पत्ती के डिज़ाइन वाले परदे, एक बड़ा-सा चाइना क्ले का भयंकर फूलदान और उसमें लगे बदरंग नक़ली पुष्प गुच्छ, जो कि बीस कदम की दूरी से अपनी नकलियत दिखाने में सक्षम हैं। मेरे मन का सच यह है कि यह सेंटर मुझे बेहद उबाऊ लगता है। मैं जब भी इस सेंटर में जाती हूँ या इसमें हुए किसी कार्यक्रम के फ़ोटो या वीडियो देखती हूँ, तो मेरा सारा मूड चौपट हो जाता है।

बहरहाल 'मैंनिंग सेंटर पुराण' एक भिन्न विषय है और भविष्य में इस पर पूरा एक ग्रंथ रचने का इरादा है। यह सेंटर इतना भी बुरा नहीं है। इसकी इतनी ज़्यादा निंदा भी ठीक नहीं, क्योंकि इसी सेंटर में सावित्री आंटी जैसी भली मानस से मेरी पहली मुलाकात हुई थी। वे एक ऐसी शख्सियत थीं, जो सिर्फ़ प्यार बाँटती थीं। मेरी उनके साथ जान-पहचान की अवधि बेहद छोटी रही, मात्र नौ महीने। इसमें भी आमने-सामने की मुलाकातों की गिनती तो एक हाथ की उंगलियों पर पूरी की जा सकती है। बाकी बातें-मुलाकातें दूरभाष पर ही होती थीं। नौ महीने की इस अल्प अवधि में भी वे मुझे अपने प्यार से सराबोर कर मेरे हृदय में अपनी अमिट स्नेहमयी छवि अंकित कर गईं।

मैं ऑफ़िस में अपने लंच टाइम के आधे घंटे का सदुपयोग, आसपास टहलने के लिए करती हूँ। सावित्री आंटी को मेरी इस आदत व लंच टाइम का पता था। अतः 12 बजते ही मुझे फ़ोन करतीं। मैं भी 12 बजे उनके फ़ोन का इंतज़ार करती और टहलते-टहलते उनसे फ़ोन पर गप्पे मारा करती। अगर किसी कारणवश उनका फ़ोन 12.05 बजे तक न आता, तो फिर मैं स्वयं उन्हें कॉल कर लेती।

अगर कभी मैं उनका कॉल नहीं ले पाती और बाद में वापस उनको फ़ोन करती, तो वे कहतीं, "अरे बेटा इतना भी परेशान न हुआ करो। मैं तो फ़ालतू हूँ, इसलिए फ़ोन करती रहती हूँ। तुम्हें तो सौ काम रहते हैं।" उन्हें न जाने क्यों ऐसा लगता था कि फ़ोन करने में मेरे पैसे खर्च हो रहे हैं, जबकि मेरी मोबाइल स्कीम में असीमित लोकल कॉल मुफ़्त में होते हैं। यह सोचकर वे मुझसे कहतीं, "ऐसा करो बेटा, तुम मुझे मत फ़ोन किया करो... अभी तो तुम्हारे आगे बहुत उम्र पड़ी है... तुम्हें तो अभी पैसे से बहुत काम करने हैं... मैं तुम्हें फ़ोन किया करूँगी... तुम्हारे अंकल मुझे कोई ऐसी-वैसी हालत में छोड़कर थोड़े ही गये हैं।" सार यह कि बस हर समय दूसरों के हित की चिंता करतीं और खुद को सबसे आखिर में रखतीं।

ज़िंदगी में काफ़ी लेट, करीब 60 साल की उम्र में उन्होंने कलम पकड़ी और कहानियाँ लिखनी शुरू कर दीं। जिस दिन उन्हें उत्तर प्रदेश की उर्दू एकेडमी से आवर्ड मिला, मुझे खबर देते हुए बोलीं, "बेटा मैं तुम्हें सबसे पहले फ़ोन कर रही हूँ। पहली बात तो यह कि मेरे आवर्ड की खबर तुम्हें यहाँ-वहाँ से मिलेगी, तो तुम्हें अच्छा नहीं लगेगा। सोचोगी अरे आंटी वैसे तो रोज़ फ़ोन करती हैं, पर आवर्ड मिला, तो मुझे बताया भी नहीं। दूसरी बात, तुम लेखिका होने के नाते मेरी खुशी का अंदाज़ा लगा सकती हो कि जब हमारी कलम को, हमारे विचारों को सम्मान मिलता है, उस मौके की खुशी क्या होती है। बेटा, मुझे लगता है कलमकारों के अलावा बाकी लोग इस लम्हे की खुशी को ठीक से समझ भी नहीं सकते।"

वे यहाँ पर्थ (वेस्टर्न ऑस्ट्रेलिया की राजधानी) में अपनी बड़ी बेटी के साथ रहती थीं। एक बार उन्होंने मुझे अपने घर बुलाया। बोलीं, "बेटा मेरे घर आओ तो मैं तुमको अपनी कहानियाँ पढ़कर सुनाऊँगी और तुम मुझे अपनी कहानियाँ पढ़कर सुनाना।"

हम दोनों एक-दूसरे को अपनी कहानियाँ पढ़कर ही सुना सकतीं थीं, एक-दूसरे की कहानियाँ पढ़ नहीं सकती थीं। कारण था कि आंटी उर्दू लिपि में लिखती थीं और मैं देवनागरी लिपि में। मुझे तो उर्दू लिपि का लेश मात्र भी ज्ञान नहीं है और आंटी के शब्दों में उन्हें हिंदी आती तो थी, मगर आने वाली नहीं आती थी। उनकी इस बात का अभिप्राय था कि वे हिंदी पढ़ तो लेती हैं, पर सुगमता के साथ नहीं। थोड़ा समय लगाकर पढ़ पाती थीं और कभी-कभी हिंदी के कठिन शब्दों के अर्थ समझना उनके लिए मुश्किल भी होता था।

आंटी के इस निमंत्रण पर मैंने कहा, "आंटी अभी तो मैं भारत जा रही हूँ। लौटकर आपके पास ज़रूर आऊँगी।" आंटी बोलीं, "ठीक है बेटा कोई बात नहीं। भारत होकर आओ। मैं तुम्हारा इंतज़ार करूँगी।" भारत से वापस आने के बाद मैंने उन्हें फिर कॉल किया। मैंने कहा आंटी मैं पर्थ वापस आ गयी हूँ और इस इतवार को आपसे मिलने आना चाहती हूँ। वे बोलीं, "बेटा इस इतवार को तो मेरी धेवती (बेटी की बेटी) हमारे घर से अपने घर में शिफ़्ट हो रही है, इसलिए हम सब उसके साथ व्यस्त होंगे। तुम ऐसा करो कि इससे अगले इतवार को आ जाओ।" दरअसल उनकी धेवती की अभी दो-एक महीने पहले ही शादी हुई थी और वह अपने पति के साथ अपने नये खरीदे हुए घर में जा रही थी।

"इससे अगले इतवार को तो मैं एक हफ़्ते के लिए सिंगापुर जा रही हूँ आंटी...अब तो मैं वहाँ से लौटकर ही किसी दिन आपके पास आ पाऊँगी।" मेरे मुख से ये शब्द सुनते ही वे तपाक से बोलीं, "नहीं-नहीं बेटा ऐसा मत करो। मैं वैसे ही पिच्यासी साल की हूँ। मेरे कल का क्या पता। मैं इतना इंतज़ार नहीं कर सकती... आ जाओ तुम तो... इसी इतवार को आ जाओ। मैं सचमुच ही तुम से मिलना चाहती हूँ... टालमटोल वाली तो कोई बात ही नहीं है। धेवती अपने घर में शिफ़्ट हो रही है, सो घर के दूसरे लोग उसकी मदद कर देंगे।"

आंटी मुहब्बत बाँटती थीं और मुहब्बत ही बटोरती थीं। घृणा, स्वार्थ, लालच को आसपास फटकने भी नहीं देती थीं। पूरे टाइम स्वेटर बुनतीं। अपने लिए नहीं, अपने परिवार के लिए भी नहीं, भारत में गरीबों व ज़रूरतमंदों को भेजने के लिए। मैंने कभी उनके हाथ से ऊन-सलाइयाँ गिरतीं नहीं देखीं। जब मैं उनके घर मिलने गई, तब भी मैं जितनी देर वहाँ बैठी उनकी उंगलियाँ ऊन के धागों-सलाइयों पर फिसलती रहीं और ज़ुबान-दिमाग मुझसे साहित्यिक चर्चा में मशगूल रहे। ऐसे जीवट वाली 85 वर्ष की कितनी महिलाएँ होती हैं? आँखों से बहुत अच्छी तरह दिखाई नहीं देता था, पर बुनने का अभ्यास और ज़रूरतमंदों की मदद का जज़्बा इतना गहरा था कि उनको बुनाई देखने की ज़रूरत नहीं पड़ती थी। वे बिना देखे ही कुशलतापूर्वक यह काम कर लेती थीं।

22 अगस्त, 2016, सोमवार को उनका आखिरी फ़ोन आया था मेरे पास। कहने लगीं, "मैं तुम्हें अपने साथ सभी जगह ले जाना चाहती हूँ। अपने सभी साहित्यिक मित्रों से मिलवाना चाहती हूँ... इस शुक्रवार को मेरे साथ चलोगी? समीना को जानती हो तुम? मैं उससे मिलवाना चाहती हूँ तुम्हें।" मैंने कहा, "आंटी मैं ज़्यादा कहीं आती-जाती नहीं, इसलिए किसी को जानती भी नहीं।" इस पर आंटी बोलीं, "एक बात बताऊँ बेटा... तुम किसी को जानो या न जानो, लोग तुम्हें जानते हैं।" इसी तरह की मनभावन बातें कर मेरे जैसे नौसिखिये का बड़ी उस्तादी से मनोबल बढ़ा देतीं।

दरअसल 26 अगस्त, 2016 को वे मुझे एक साहित्यिक कार्यक्रम में अपने साथ ले जाने वाली थीं। अपनी एक मुँहबोली बेटी से मिलवाने, जो कि एक पाकिस्तानी हैं और यूनिवर्सिटी ऑफ़ वेस्टर्न ऑस्ट्रेलिया में प्रोफ़ेसर होने के अलावा उर्दू अदब,

शेरो-शायरी में ख़ासी दख़ल रखती हैं। अफ़सोस, वह दिन कभी नहीं आया और एक दिन पहले ही 25 अगस्त, 2016, बृहस्पतिवार को आंटी ने दुनिया छोड़ दी।

दिल में एक अफ़सोस रह गया कि मैं सोचती ही क्यों रह गयी, क्यों बीच के दो दिनों में मैंने उनको कोई कॉल नहीं किया? उनकी मृत्यु के बाद मैंने उनकी उस मुँहबोली बेटी को ढूँढ निकाला। उनसे कहा कि आंटी मुझे आप से मिलवाना चाहती थीं। अब क्योंकि वे नहीं हैं, अतः हम दोनों आगे साथ-साथ काम करेंगी। दूसरी तरफ़ से अच्छी प्रतिक्रिया मिली, पर वह बात कहाँ, जो सावित्री आंटी में थी! वे सिर्फ़ रिश्ते बनाना ही नहीं, मुहब्बत की पक्की डोर से उन्हें जोड़े रखना भी जानती थीं।

एक क्रिश्चियन परिवार में उनका जन्म हुआ था। उनके पिता एक मिशनरी थे। पैदाइश के समय ही उनका नाम सावित्री रखा गया, जबकि उनके बाकी भाई-बहनों के नाम क्रिश्चियन नाम थे। वे उर्दू लिपि में लिखती थीं। उनका विवाह जो कि एक प्रेम-विवाह था, हिंदू ब्राह्मण परिवार में हुआ था। अनेकता में धड़कती एकता की चलती-फिरती मिसाल थीं वे। गंगा-जमुनी तहज़ीब की सरिता उनकी बातों तक ही सीमित न रह कर, उनके समूचे व्यक्तित्व व सोच में बहती थी। ऐसी दिव्यात्मा के सम्मान में जितना कहा जाए कम होगा। किसी से कोई द्वेष नहीं, कोई शिकवा नहीं। सब के हित में सोचना और जितना बन सके बिना कहे-सुने कर देना। यही उनके जीवन मूल्य थे, जो उन्होंने आखिरी साँस तक निभाए।

उनके इस दुनिया को अलविदा कहने के बाद मेरे भीतर भी बहुत कुछ बदल गया। मैं आज भी अपने लंच ब्रेक में टहलने जाती हूँ, किंतु उनकी मृत्यु के बाद से अपना मोबाइल अपनी डेस्क पर ही छोड़कर जाती हूँ, क्योंकि अब 12 बजे वह कॉल नहीं आता और कोई नहीं पूछता, "कैसी हो?" वह दिल अब इस दुनिया में नहीं धड़कता, जो मुझ पर आशीष बरसाते नहीं थकता था। वह ज़ुबान हमेशा के लिए शांत पड़ गई, जो मुझसे कहते नहीं थकती थी, "भगवान तुम्हारी झोली चाँद-सितारों से भर दे... दिन दूनी रात चौगुनी तरक्की करो... जहान भर में नाम कमाओ...।" अब ये शब्द कहीं खो गए हैं, पर दुआएँ मेरे साथ थीं और हमेशा रहेंगी। मैं स्वर्गीय सावित्री आंटी की दुआओं का मान रखने में अपना पूरा सामर्थ्य लगा दूँगी। ईश्वर मुझे इसकी क्षमता प्रदान करें और मेरी हर दिल अज़ीज़ आंटी की आत्मा को शांति।

rita210711@gmail.com

मॉरीशस की धरती पर बजा हिंदी का डंका

- श्री अंशुमन कुठियाला
शिमला, भारत

वर्ष 2018, 15 अगस्त को स्वतंत्रता दिवस मॉरीशस की धरती पर मनाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। अवसर था 'ग्यारहवाँ विश्व हिंदी सम्मेलन'। मॉरीशस की धरती पर हमारा गर्मजोशी से स्वागत हुआ। उल्लेखनीय है कि मॉरीशस में करीब 70% आबादी भारतवंशी है और उनके मन में हिंदी एवं हिंदुस्तान के प्रति अपार स्नेह एवं श्रद्धा है। उसका कारण है कि जब 'Agreement' के तहत भारत तथा भारतीय उपमहाद्वीप के विभिन्न भागों से आर्थिक एवं सामाजिक दृष्टी से सबसे पिछड़े तबके के कुछ मज़दूरों को छल एवं बल से जहाज़ों में लादकर मॉरीशस की भूमि पर उतारा गया, तो उनके पास अपनी बोली और अपने ईश्वर के सिवा कोई नहीं था, जो उनकी सुध ले सके। उसके सहारे ही अंग्रेज़ी हुकूमत के क्रूरतापूर्ण "The Great Experiment" को उन लोगों ने सहा और मॉरीशस की 'शस्य श्यामला धरा को उर्वरा' कर दिया। और ईश्वरीय विधान की बानगी देखिए कि अब उन्हीं 'गिरमिटिया' मज़दूरों के वंशज ही इस खूबसूरत देश पर राज कर रहे हैं।

हिंदी प्रचारिणी सभा ने हिंदी को मॉरीशस में ज़िंदा रखा तथा पीढ़ी-दर-पीढ़ी इसका प्रचार-प्रसार भी किया है। भारत ने भी वैश्विक स्तर पर हिंदी के विस्तार को ध्यान में रखते हुए और अपनी "Soft Power" का प्रदर्शन करते हुए मॉरीशस को न केवल कई बार "विश्व हिंदी सम्मेलनों" की मेज़बानी दी, बल्कि विश्व हिंदी सचिवालय की स्थापना भी यहाँ करके कूटनीतिक पहल भी की है।

अभी सम्मेलन की शुरुआत भी नहीं हुई थी कि 16 अगस्त को पूर्व प्रधान मंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी जी के देहावसान का दुखद समाचार प्राप्त हुआ। अटल जी के व्यक्तित्व, हिंदी और मॉरीशस के साथ उनके घनिष्ठ सम्बन्ध ने सभी को भावविभोर कर दिया और "काव्यांजलि" द्वारा विभिन्न कवियों ने अटल जी के प्रति अपने श्रद्धा-सुमन अर्पित किए। चार पंक्तियाँ उन्हें समर्पित -

"जो थे अटल उसे भी टालते रहे,
दीया-देह में प्राण तेल डालते रहे,
तिरंगा न झुके, इक दिन और रुके,
जाते-जाते भी सब सम्भालते रहे !"

इस प्रकार 11वें विश्व हिंदी सम्मेलन 'हिंदी विश्व और भारतीय संस्कृति' के उद्बोध से प्रारम्भ हुआ और 'हिंदी को राष्ट्रीय भाषा' एवं संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषा बनाने के संकल्प के साथ समापन की ओर बढ़ा।

anshuman.shimla@gmail.com

लेह लद्दाख मोटरसाइकिल यात्रा

- श्री योगेन्द्र सिंह
राजस्थान, भारत

इसमें कोई शक नहीं है कि लेह लद्दाख दुनिया-भर के उन लोगों के बीच पहला पसंदीदा गंतव्य है, जो एक साहसिक सैर पर जाना चाहते हैं। हिमालय की बर्फ़ीली चोटियाँ और नयनाभिराम दृश्य असंख्य भारतीय व विदेशी पर्यटकों को विभिन्न वाहनों से आने के लिए अपनी ओर आकर्षित करते हैं। मेरी

जून 2018 में की गई लेह लद्दाख मोटरसाइकिल यात्रा के लिए डेढ़ महीने की शारीरिक व मानसिक तैयारी के साथ-साथ वे सब चीज़ें खरीदीं, जो इस यात्रा में काम आतीं, जैसे कि तंबु, मोटरसाइकिल के हर छोटे-छोटे पुर्ज़े, दवाइयाँ, सुरक्षा का हर सामान, कपड़े, मानचित्र, दस्तावेज़ इत्यादि।

मेरे पिताजी 2 वर्ष पहले ही फ़ौज से सेवानिवृत्त हुए थे। उनकी तैनाती लेह लद्दाख में थी, तो उनकी काफ़ी चीज़ें और अनुभव मेरी इस यात्रा में बहुत काम आए। यात्रा से 1 दिन पूर्व मन इतना विचलित हो रहा था कि कहीं इस यात्रा में कुछ अनहोनी न हो जाए, क्योंकि काफ़ी लोग जुड़े थे इंटरनेट पर, जो साथ जाना चाहते थे, परंतु यूट्यूब चलचित्र और कश्मीर की हालत देखकर सब लोग पीछे हटते गए और अंत में केवल मैं अकेला बचा। जाना तो था ही बस खुद को हर मुसीबत, जो इस यात्रा में रोमांच को कई गुना बढ़ा देती है, में भी स्वयं को तैयार करना था। जब मैंने अप्रैल 2018 को 'रॉयल एनफ़ील्ड' मोटरसाइकिल खरीदी, तब ऐसा लगने लगा कि कोई मुझे और मेरी मोटरसाइकिल को बुला रहा है, जिसके लिए हम खुद को बिल्कुल नहीं रोक पा रहे हैं। मुझे बचपन से ही हर धर्म, स्थान और संस्कृति के बारे में जानने की इच्छा रही है और इस यात्रा से अच्छा विकल्प कोई और हो ही नहीं सकता था, यह अनुभव हासिल करने का।

जयपुर से मोटरसाइकिल पर 5 थैलों के साथ यात्रा शुरू की। चंडीगढ़ से ब्यास, रावी और तावी नदियों को पार करके जम्मू पहुँचा। रास्ते में इतने सुंदर व घनी फ़सलों वाले पंजाब के खेत और वनस्पति थे, जिन्होंने मेरे देश की धरती को आभूषण की तरह सजा रखा है। चेनानी-नाशरी सुरंग (पटनीटॉप) पहुँचा, जो भारत की सबसे लंबी सड़क सुरंग है, जिसकी लंबाई 9.28 किलोमीटर है। सुरंग पार करके चिनाब नदी के साथ-साथ आगे बढ़ते हुए बनिहाल पहुँचा, जहाँ के रेलवे स्टेशन के आसपास की घाटी में लगे चावल के खेतों ने मन मोह लिया। रास्ते में कई प्राकृतिक पर्वत जल-स्त्रोत आते हैं, जिन्हें उर्दू भाषा में 'चश्मा' और कश्मीरी में 'नाग' बोलते हैं, जो उस क्षेत्र में पानी की ज़रूरत पूरी करने में काफ़ी मददगार हैं। रास्ते में एक जगह कई बड़ी चट्टानें सड़क पर गिरी हुई थीं और दोनों ओर जाम लगा हुआ था। क्रेन से उन चट्टानों को नीचे गहरी खाइयों में गिराया जा रहा था, ताकि फिर से सड़क पर आवाजाही जारी किया जा सके। वहाँ 2 घंटे रुकना पड़ा और यही सोच रहा था कि अगर कुछ मिनट पहले पहुँचा होता, तो कुछ अनहोनी हो सकती थी। मुझे श्रीनगर की बजाय गुलमर्ग में रुकना था, लेकिन कहते हैं न, सब अच्छे के लिए ही होता है। मेरी मुलाकात एक समूह से हुई, जिसमें 5 लोग असम से आए हुए थे और फिर क्या था? हम लोग बातचीत करते हुए दोस्त बन गए और फिर एक साथ आगे बढ़ने लगे।

फिर हम पहुँचे जवाहर सुरंग, जो 2.85 किलोमीटर की है और 1956 से जम्मू और कश्मीर प्रांत को जोड़ती है। सुरंग एक लाइन की है और वहाँ 24 घंटे हमारे जवान दोनों और कड़ी सुरक्षा के साथ इसकी निगरानी करते हैं। वहाँ से निकलकर 'टाइटेनिक व्यू पोंइंट" पर पहुँचे, जहाँ से कश्मीर घाटी का अद्‌भुत नज़ारा देखने को मिलता है, जिससे सच में ऐसा प्रतीत होता है कि बस वही से जन्नत शुरू होता है। दूर-दूर तक ऊँची-ऊँची पहाड़ियाँ, हरे-भरे ऊँचे पेड़, जलेबी जैसे टेढ़े-मेढ़े चावल के खेत, वहाँ से जाती हुई झेलम नदी और सूर्य भी धीरे-धीरे अपनी किरणों को लेकर अस्त हो रहा था, बड़ा ही आकर्षक नज़ारा था वह। प्रकृति भी अपना देश-प्रेम तिरंगे के रूप में खुलकर प्रस्तुत कर रही थी, जिसमें केसरिया रंग ढलते हुए सूर्य की किरणों, सफ़ेद रंग-आसमान में धुंधले बादलों और हरा रंग हरे-भरे खेतों द्वारा प्रदर्शित किया जा रहा था। कश्मीर में हमारी सेना इतनी कठिन

प्राकृतिक और राजनीतिक परिस्थितियों में भी, जो सुरक्षा वहाँ के नागरिकों और देश को प्रदान कर रही है, वह काबिले तारीफ़ है। राजमार्ग पर एक बहुत बड़ा गति-अवरोध आया, जिसपर हम में से एक दोस्त आगे वाली मोटरसाइकिल से टकरा गया और मोटरसाइल ने तीन बार ज़ोर से पलटी खाई। परंतु दोस्त सुरक्षित था, बस मोटरसाइकिल थोड़ी टूट-फूट गई थी।

अगले दिन उठते ही मन में पहला ख़याल श्रीनगर में डल झील, 'शिकारा' यानी लकड़ी की नाव और 'हाउसबोट' यानी नाव वाला घर देखने का आया, जो कि एकदम हमारे हॉटल के सामने था। जब वहाँ तैयार होकर पहुँचे, तब डल झील का एक अद्‌भुत नज़ारा, पहाड़ियों की ऊँची-ऊँची चोटियों की गोद में बैठे हुए बन रहा था और शिकारा व हाउसबोट उसमें चार-चाँद लगा रहे थे। फिर हम करीबन 5 किलोमीटर डल झील के किनारे होते हुए लेह की तरफ़ चल दिए, परंतु अभी श्रीनगर द्वारा हमको और कुछ भी दिखाना बाकी था। आगे एक चौराहे पर काफ़ी भीड़ इकट्ठी हो रखी थी, जो नारेबाज़ी और पत्थरबाज़ी कर रही थी। पुलिस ने वहाँ से जाने के लिए कहा, तो हम दूसरे रास्ते से एक गाँव से होते हुए आगे बढ़ गए। हमने फिर 5-5 लिटर की दो बोतलें लीं, ताकि हमें पेट्रोल की कमी से न जूझना पड़े। मैंने शरीर पर हर जगह अंगरक्षक चीज़ें पहन रखी थीं और हेलमेट पर कैमरा लगा रखा था, जिससे इन सभी यादों को संजोए रख सकूँ। मोटरसाइकिल 'आरजे 14' जयपुर की थी, जिससे काफ़ी लोग साथ में फ़ोटो खिंचवाने व अभी तक का अनुभव पूछने आ रहे थे। फिर जो बालटाल और देवास के बीच 'ज़ोजी-ला दर्रा' आया, उसने रोंगटे खड़े कर दिए। सड़क पूरी टूटी हुई थी, एक तरफ़ ऊँचा पहाड़ था, जिसपर से कभी भी कोई पत्थर गिर सकता था, दूसरी तरफ़ हज़ारों फ़ीट गहरी खाई और वहाँ से जाती हुईं नदियाँ, सड़क पर बहता हुआ पानी, जो ऊपर से बर्फ़ पिघलने से सड़क पर फैला हुआ था और कीचड़ में तब्दील हो रहा था। एक छोटी-सी गलती भी मेरे बीमा की परिपक्वता तय कर सकती थी। कारगिल से निकलते ही दो नदियों का संगम होता है, जो आगे एलओसी पार करके पाकिस्तान में चली जाती है, एक है कारगिल से आती 'सुरू' और दूसरी 'दरास' (सिंगो) नदी। फिर पहुँचा 'कारगिल वॉर मेमोरियल' जो 'टोलोलिंग पहाड़ी' की तलहटी दरास में स्थित है। यह 'टाइगर हिल' के पार राष्ट्रीय राजमार्ग 1 डी पर स्थित है, जिसे हमारी सेना द्वारा वीर शहीदों की याद में बनाया गया है, जिन्होंने दुश्मन से लड़ते हुए 1999 की कारगिल की जंग में देश की रक्षा की और वीरगति को प्राप्त हुए। वहाँ एक बहुत ही सुंदर संदेश लिखा था, जो मैं इस लेख के माध्यम से सब तक पहुँचाना चाहता हूँ :

"जब तुम घर जाओ, उन्हें हमारे बारे में बताना और बोलना,

तुम्हारे आने वाले कल के लिए, हमने अपना आज दिया है।"

रात कारगिल में सेना की कैंप में कटी, जहाँ मेरे एक भाई तैनात थे। यहाँ से काफ़ी ठंड बढ़ गई थी और मुझे स्लीपिंग बैग में सोना पड़ा। सुबह कारगिल से ऐसी जगह जाने के लिए निकला, जिसे बेहद कम लोगों को देखने की इजाज़त मिल पाती है। वह थी हमारी पोस्ट-43, जो एलओसी पर पाकिस्तान की पोस्ट-44 के एकदम सामने थी। इस पोस्ट को भारत ने 1971 की जंग में पाकिस्तान से जीता था। वहाँ से पाकिस्तानी पोस्ट, गाँव और मस्जिद काफ़ी करीब से दिखाई देते हैं। वहाँ पहुँचकर बहुत गर्व महसूस हो रहा था। सुरक्षा कारणों से मैं इस जगह के बारे में ज़्यादा नहीं लिखूँगा, क्योंकि देश हमेशा पहले होता है, जो मैंने अपने बचपन से मिले फ़ौजी माहौल से सीखा है। सड़कों को इतनी विपरीत व कठिन परिस्थितियों में भी इतने अच्छे से बनाने व

उनकी देखभाल करने का श्रेय हमारे देश के 'सीमा सड़क संगठन (बीआरओ)' को जाता है। रास्ते में इस संगठन ने इतने अच्छे संदेश गाड़ियों के लिए प्रदर्शित कर रखे हैं कि उनको पढ़कर कोई भी गाड़ी चलाने में और ज़्यादा सावधानी बरतने लगता है। मैंने रास्ते में इस संगठन के मिलने वाले हर कर्मचारी को हाथ उठाकर धन्यवाद दिया। इस यात्रा की एक अनोखी बात यह भी थी कि जितने भी रास्ते में मोटरसाइकिल वाले मिलते वे एक-दूसरे को हाथ उठाकर आगे की यात्रा की शुभकामना देते। मैंने तिरंगा अपनी मोटरसाइकिल पर लगा लिया था। आगे के सफ़र में बौद्ध धर्म के प्रसिद्ध प्राचीन मठ, संस्कृति और तिब्बती हस्तशिल्प कला दर्शनीय आकर्षण बने हुए थे। फिर मैं 'नामिक ला' (12198 फ़ीट ऊँचाई), श्रीनगर व लेह-लाद्दाख का दूसरा सबसे ऊँचा दर्रा और 'फोटू ला' (13459 फ़ीट ऊँचाई) इस मार्ग का सबसे ऊँचा दर्रा से, जो हिमालय की जास्कर शृंखला पर राजमार्ग क्रमांक 1 पर है, से होते हुए 'लामायुरु' पहुँचा। लामायुरु में स्थित एक तिब्त्ती बौद्ध मठ (गोम्पा) के दर्शन किए, जिसमें बेहद सुंदर चित्रकारी की हुई थी। वहाँ से निकलते ही 'मनू लैंड' नामक एक परिदृश्य था, जो चंद्रमा जैसा दिखता है और रात में चमकता भी है। शाम होते-होते 'निमू' पहुँचा, जहाँ जास्कर व सिंधु नदी का संगम होता है। यहाँ मेरे पिताजी सेना में 2 साल तक पदस्थापित थे और रात को मैं लेह में रुका।

आज का दिन लेह घूमने के लिए था। परमिट लेने का काम हॉटल के कर्मचारी को दे दिया था और वह शाम तक मिलने वाला था। फिर पत्थर साहिब गुरुद्वारा पहुँचा, जिसका सेना द्वारा रख-रखाव किया जाता है। इस गुरुद्वारे की कहानी काफ़ी रोचक है और वहाँ एक पत्थर रखा है, जिसमें सिक्खों के प्रथम गुरु, गुरु नानक जी के शरीर का हुबहू आकार बना हुआ है। वहाँ माथा टेका, प्रसाद लिया और सेवा की। आगे 'मैग्नेटिक हिल' यानी चुंबकीय पहाड़ी गया, जहाँ गुरुत्वाकर्षण का नियम फ़ेल हो जाता है, क्योंकि यहाँ ढलान में गाड़ी लुढ़कती नहीं है, बल्कि ऊपर की ओर चलती है, जो एक अद्भुत व जिज्ञासा पूर्ण करने वाला अनुभव था। वहाँ से फिर मैं स्पितुक गोम्पा (मठ) और 9 मंज़िला प्राचीन लेह महल भी गया, जहाँ से लेह हवाई अड्डा और पूरा शहर अच्छे से दिख रहा था। रात तक लेह में घूमा और वहाँ से मेवे लिए व कुछ तिब्बती हस्तशिल्प वस्तुएँ खरीदीं, जो काफ़ी आकर्षण का केंद्र बनी हुई थीं।

अगले दिन बर्फ़ से ढकी सड़कें व ऊँची पहाड़ियाँ शुरू हो गई थीं। काफ़ी ऊँचाई पर आ गए थे, तो साँस लेने में भी काफ़ी दिक्कत हो रही थी। ठंडी हवाएँ चल रही थीं, जो दोनों दस्तानों के बीच से भी हाथ को छू रही थीं। बर्फ़ से ढकी सड़क भी आई, जिसपर मोटरसाइकिल काफ़ी फिसल रही थी। इसको पार करते हुए हम पहुँचे विश्व की सबसे ऊँची वाहन योग्य सड़क 'खरदुंगला दर्रा', जो 18380 फ़ीट ऊँचाई पर है। मैं अपनी मोटरसाइकिल के साथ आज दुनिया की इस ऊँचाई पर पहुँचकर अपने हृदय में रक्त-परिसंचरण की बढ़ती गति को साफ़ महसूस कर पा रहा था। वहाँ काफ़ी बर्फ़ गिर रही थी और ऑक्सीजन काफ़ी कम था। एक काफ़ी अजीब बात हुई, मेरे दोनों कैमरों की बैटरियाँ एकदम से खत्म हो गई थीं, जो बाद में वहाँ से जाने पर फिर से पूरी भर गईं। थोड़ी दूर चले ही थे कि एक साथी को उल्टी शुरू हो गई और हम बाकी सबों के सिर दर्द होने लगे। ऑक्सीजन की कमी के कारण यह सब होना आम बात है। कुछ देर रास्ते में ही पहाड़ियों के बीच नींद लेकर 'श्योक' नदी के साथ-साथ ऊँची पहाड़ियों की सड़कों पर से नुब्रा घाटी पहुँचे। यहाँ एक ऐसा दृश्य बन रहा था, मानो हम किसी दूसरे ही ग्रह पर आ गए हों। नीले आसमान में बादल, जिनमें से

बचकर निकलतीं सूर्य की किरणें, धरती पर श्योक व नुब्रा नदियों का संगम था व दूर पहाड़ियों में धुंधला प्रकाश था। आगे 350 साल पुराने दिस्कित मठ गए, जहाँ 'मैत्रेय' बुद्ध की 106 फ़ीट ऊँची मूर्ति है। फिर रात में रुकने के लिए पहुँचे 'हुंडर', जहाँ काफ़ी रेत के टीले थे। मैं भारत के गर्म रेगिस्तान (राजस्थान) से ठंडे रेगिस्तान में आने का उत्साह महसूस कर रहा था। इस जगह का मुख्य आकर्षण यहाँ पाए जाने वाले 'बैक्टीरियन' ऊंट हैं, जिनके दो कूबड़ यानी पीठ होती हैं। हम वहाँ से 135 किलोमीटर लम्बी 'पैंगोंग झील' पहुँचे, जो सर्दियों में पूरी तरह जम जाती है। इसका दो तिहाई हिस्सा चीन में है। 'थ्री इडियट्स', 'जब तक है जान' आदि फ़िल्मों में झील के दृश्य यहीं के हैं।

फिर समय के अभाव के कारण आई वह परिस्थिति, जो इस यात्रा की सबसे जोखिम भरी व जानलेवा थी। हमें 75 किलोमीटर दूर कारू पहुँचना था। शाम के 7.00 बज गए थे, तो हमने सोचा 2-3 घंटे में तय कर लेंगे। लेकिन हम गलत थे, क्योंकि हमें 6 घंटे लगे। हम पहुँचे 'चांगला दर्रा' (17585 फ़ीट), जो दुनिया में दूसरी सबसे ऊंची वाहन योग्य सड़क है। वहाँ से नीचे उतरते हुए कच्ची और बड़े-बड़े पत्थरों व बर्फ़ वाली सड़कें, ऑक्सीजन की कमी, साँस लेने में काफ़ी दिक्कत, गिरती हुई बर्फ़, काफ़ी ठंडी तेज़ हवा वाली परिस्थितियों में कोहनी तक खून जम गया था, क्योंकि तापमान - 6° सेल्सियस था, उंगलियों ने काम करना बंद कर दिया था। यह भूस्खलन संवेदनशील क्षेत्र भी था, मोटरसाइकिल दूसरे गियर में करते ही फिसल रही थी, तो पहले गियर में करीबन 30 किलोमीटर तय करना था, गहरी खाइयाँ, अंधेरी व सुनसान रात थी। मानो दुनिया की सारी विपरीत परिस्थितियाँ इसी समय मुझ पर हावी हो रही थीं, परंतु खुद को हौसला और साहस देते हुए कारू पहुँचा। 3 दिन से नेटवर्क न होने के कारण किसी से बात नहीं हुई थी। 2 घंटों तक मैं सुन्न था, क्योंकि पता नहीं चल पा रहा था कि मैं वहाँ से ज़िंदा लौट आया या नहीं। आज भी जब वह पल याद आ जाता है, तो रात को नींद नहीं आती।

'सरचु' आते हुए 'टांगलांग ला दर्रा' (17582 फ़ीट), 'लाचुलुंग ला दर्रा' (16613 फ़ीट) और 'गाता लूप' आए, जहाँ 21 जलेबी जैसे टेढ़े-मेढ़े घुमावदार मोड़ थे। रास्ते में काफ़ी झरने वाली सड़कें भी आईं। अगले दिन 'बारालाचा ला दर्रा' (16042 फ़ीट) व 'रोहतांग दर्रा' (13044 फ़ीट) पार करके मनाली से होते हुए कई दिनों बाद पहाड़ियों की गोद में से ज़मीन पर आए और चंडीगढ़ से बाकी लोग अलग हो गए। मैं जब कुल 3600 किलोमीटर दूरी और एक दिन में 17 घंटे मोटरसाइकिल पर तय करके जयपुर घर पहुँचा, तो ऐसा लगा कि एक ज़िंदगी पूरी जी कर लौटा हूँ। फिर से घर व परिवार को देखकर बहुत खुशी हो रही थी।

इस यात्रा से न केवल मेरा आत्मविश्वास और ऊँचे स्तर पर आया, बल्कि ज़िन्दगी को अलग ढंग से देखने और जीने की प्रेरणा भी मिली। रास्ते पर काफ़ी दुर्घटनाएँ देखीं और ऐसी जगहें भी देखीं, जहाँ हम 10 मिनट भी नहीं रह सकते, परंतु वहीं हमारी सेना के जवान देश की रक्षा कर रहे हैं। मन विचलित भी हुआ, परंतु एक जुनून और अपनों का आशीर्वाद ही था, जिससे मैंने इस यात्रा की जंग पर विजय प्राप्त की।

yogendras1@yahoo.co.in

अविस्मरणीय यात्रा - भोपाल से श्री मल्लिकार्जुन

- श्री आकाश आर्यनायक
न्यू ग्रोव, मॉरीशस

श्री मल्लिकार्जुन ज्योतिर्लिंग मंदिर परिसर

यात्राएँ उद्देश्यपरक होती हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं, लेकिन यादगार यात्राएँ तो वे ही कहलाती हैं, जिनकी इन्द्रधनुषी स्मृतियाँ लम्बे समय तक मन को आलोकित करती रहती हैं। रेल और हवाई यात्राएँ चाहे कितनी ही सुगम, सुविधाजनक और सुलभ क्यों न हों, पर सड़क-यात्राएँ नैसर्गिक सौंदर्य के रसास्वादन का वास्तविक माध्यम होती हैं। अतः हमने अपने 'लोंग वीकेण्ड टूर' के लिए सड़क मार्ग को ही श्रेयस्कर समझा। उद्देश्य भी यही था। रोमांच की पराकाष्ठा की अनुभूति और विशुद्ध देशज संस्कृति की सौंधी गंध को महसूसना। देश के वैभवशाली ऐतिहासिक, समृद्ध सांस्कृतिक और अलौकिक आध्यामित्क परिवेश के सुरम्य साझा स्वरूप से सीधे साक्षात्कार के लिए पवित्र द्वादश ज्योतिर्लिंगों और सिद्ध शक्तिपीठों की यात्रा का कार्यक्रम बना। शुरुआत में दक्षिण के तेलंगाना प्रदेश स्थित प्रतिष्ठित श्री मल्लिकार्जुन ज्योतिर्लिंग और सिद्ध शक्ति पीठ भ्रमराम्बा देवी के दर्शन की अभिलाषा के कारण हैदराबाद की ओर रूख करने की योजना बनी। मध्यप्रदेश की राजधानी भोपाल से 850 किलोमीटर का फ़ासला तय कर हैदराबाद पहुँच कर रात्रि-विश्राम का फ़ैसला लिया गया। अनेक धर्मग्रन्थों में इस स्थान की महिमा बताई गई है।

मेरी यात्रा की शुरुआत

भोपाल से हैदराबाद का सफ़र : होशंगाबाद, बैतूल, हैदराबाद का हाईवे

सुबह पौने आठ बजे ऑडी कार द्वारा हमने सफ़र की शुरुआत की। हाईवे से ओबेदुल्लागंज, इटारसी होते हुए होशंगाबाद पहुँचने का लगभग 70 कि.मी. का सफ़र सिंगल लेन होने के कारण ट्रेफ़िक जाम से सामना करते हुए ही बीता। फ़िलहाल दुरुस्ती की बाट जोहने लगे। होशंगाबाद से बैतूल तक सघन वन सम्पदा के बीच से गुज़रते हुए यात्रा गड्ढों के कारण कष्टप्रद रही। यहाँ तक कि होशंगाबाद में नर्मदा नदी पर बना बाँध भी बदहाल दिखाई दिया। इसके गड्ढों को पूरने और टूटी रेलिंग को मरम्मत की दरकार है। इसके आगे बैतूल नागपुर हाईवे फ़ोर लेन है। लगभग 180 कि.मी. का यह रास्ता गाड़ी की गति बढ़ाने के लिए मुनासिब है। हालाँकि हमारे राष्ट्रीय राजमार्गों पर महिला मुसाफ़िरों के लिए दी जाने वाली सुविधाओं का नितान्त अभाव है। घरेलू पर्यटन को बढ़ावा देने के वास्ते सरकारों को इस ओर अवश्य ध्यान देना चाहिए।

बहरहाल अब तक 351 किलोमीटर की यात्रा कर लेने के बाद स्वल्पाहार लेने के लिए नागपुर स्थित हल्दीराम रेस्तराँ हमें उपयुक्त लगा। नेवीगेशन के आधुनिक संसाधन ने रास्ता खोजने का काम आसान कर दिया। आगे 500 किलोमीटर का सफ़र और तय करना बाकी था, इसलिए हल्का-फुल्का खाने में ही भलाई थी। नागपुर से हैदराबाद का हाईवे बेहतर है, लेकिन तेलंगाना में प्रविष्टी के साथ ही यह हाईवे पूर्ण विकसित और अधिक विस्तारित हो जाता है। उत्तर-दक्षिण श्रीनगर से शुरू होकर भारत के दक्षिण छोर कन्याकुमारी को जोड़ने वाला देश का सबसे बड़ा राष्ट्रीय राजमार्ग है।

किसी राज्य के चौतरफ़ा विकास में सड़कें कितनी महती भूमिका निभाती हैं, यह तेलंगाना

राज्य की सड़क व्यवस्था को देखकर लगा। अबाधित, आधुनिक और दोनों ओर नयनाभिराम दृश्यावलियों से लैस सड़क अब हमारी यात्रा का पर्याय बन गई थी। इस रास्ते पर अलबत्ता चाय और कॉफ़ी की चुस्कियों का लुत्फ़ उठाने की व्यवस्था न के बराबर है। 'मिडवेज' अथवा ढाबा संस्कृति का अभाव अखरता है।

अब तक प्रकृति की सुषमा में चट्टानों से निर्मित अद्भुत शिल्पाकृतियाँ कार के दोनों ओर दिखाई देने लगी थीं। शीशे उतारकर कैमरे में तस्वीरें कैद करने का क्रम शुरू हुआ। कभी कछुआ, तो कभी कुकुरमुत्ते के आकार वाले नाना स्वरूप धरते अनोखे प्रस्तर खण्डों के दर्जनों समूह एक के बाद एक हमारे सामने थे। ये दक्षिणी पठार में सहस्त्रों वर्ष पूर्व हुए भूगर्भीय परिवर्तनों के प्रतिफल हैं। भला बताइए निसर्ग की ऐसी रमणीयता पल-प्रतिपल बदलते परिदृश्यों से ऐसा साक्षात्कार सड़क मार्ग के अलावा और किस माध्यम से संभव हो पाता?

बहुत सुखद अहसास : 'पार्क हयात हॉटल'

हैदराबाद पहुँचकर घड़ी देखी, रात के सवा 9 बज रहे थे। यहाँ के बंजारा हिल्स स्थित लग्ज़री हॉटल 'पार्क हयात' में ठहरने के लिए बुकिंग पहले से ही थी। सुखद अहसास कराती पाँचतारा हॉटल की भव्यता, अत्याधुनिक साज-सज्जा और विशाल सुरुचिपूर्ण सुईट 'पार्क हयात हॉटल' को और भी विशिष्ट बनाते हैं। इस निहायत ही दिलकश हॉटल में दिन भर की थकान मिटाकर अगले दिन श्री मल्लिकार्जन के दर्शन-लाभ का कार्यक्रम नियत था।

श्री शैल पर्वत और पवित्र कृष्णा नदी

हैदराबाद से 213 कि.मी. दूर कुर्नूल ज़िले में श्री शैल पर्वत पर स्थित श्री मल्लिकार्जुन ज्योर्तिलिंग और सिद्धशक्तिपीठ भ्रमराम्बा देवी का दिव्य धाम हमारी यात्रा का अगला पड़ाव था। मार्ग में कदली और बिल्ब पत्रों वाली अपार वन राशि, नितान्त निःस्तब्धता, चिड़ियों का कलरव, उछलते-कूदते बंदर, नाचते-झूमते मोर और सुदूर खेतों में जीविकोपार्जन के लिए प्रयत्नशील वनवासी, ऐसा लगता है, मानो इस पवित्र स्थल के संरक्षक हों और कृष्णा नदी संस्कृति की संवाहिका। साढ़े चार घण्टों के इस सफ़र में पाताल गंगा अथवा पवित्र कृष्णा नदी का जल प्रवाह श्री शैल जल विद्युत परियोजना के रूप में दिखाई देता है। लगभग बीस वर्षों में बनकर तैयार हुए श्री शैल बाँध से 885 फ़ीट की ऊँचाई से गिरते प्रबल जलावेग को देखने के लिए पर्यटकों का तांता लगा रहता है।

बरसात के दिनों में घुमावदार पहाड़ी रास्तों से गुज़रकर बाँध के 12 रेडियल गेटों को खुलते देखने की चाहत लिए लोगों का भारी हुजूम यहाँ एकत्रित हो जाता है। लगभग 1300 किलोमीटर लम्बाई वाली पुण्य सलिला कृष्णा नदी अपनी प्रमुख सहायक नदियों तुंगभद्रा और भीमा की जलधारा को स्वयं में समाहित करती यहाँ नीली आभा लिए प्रवाहित होती है। श्रद्धालु इस नदी में स्नानोपरान्त ही मंदिर में प्रविष्ट होते हैं। यहीं महान शिवोपासिका रानी अहिल्या बाई होल्कर ने उपासकों की सुविधा हेतु 852 सीढ़ियों वाला घाट निर्मित कराया।

अब हमारा सफ़र दक्षिण के कैलाश कहलाने वाले नल्ला-मल्ला हिल्स की ओर आगे बढ़ रहा था। 'नल्ला' का शाब्दिक अर्थ है 'सुन्दर' और 'मल्ला' का मतलब है 'ऊँचा'। नामानुरूप यह दिव्य क्षेत्र अद्भुत और अलौकिक सुख का अनुभव कराता चलता है। निसर्ग की अनुपमता वाले इस पवित्र धाम में शिव और शक्ति दोनों ही विद्यमान हैं। कहते हैं शिव शक्ति के अधिष्ठान हैं, इसीलिए तो शिव और शक्ति परस्पर पूरक और अनुपूरक भी हैं। शिव शक्ति से भिन्न कहाँ हैं। शिव में इकार ही शक्ति है। इकार निकल जाने पर शव ही तो रह जाता है।

दिव्य धाम : श्री मल्लिकार्जुन ज्योतिर्लिंग

यही सोचते-सोचते हम कल्याणकारी शिवधाम श्री मल्लिकार्जुन और महाशक्तिपीठ भ्रमराम्बा देवी के मंदिर के समक्ष पहुँच गए। शक्ति और श्रद्धा से आकंठ सराबोर इस तीर्थ स्थल में प्रविष्टि के लिए ऑनलाइन बुकिंग की व्यवस्था है। स्थानीय ऑफ़िस से जलाभिषेक हेतु 500 रु. की रसीद कटाकर प्रवेश करना ही उचित होगा।

इस तीर्थधाम में ज्योतिर्लिंग के प्रादुर्भाव को लेकर कई मान्यताएँ हैं। शिव पुराण में वर्णित कथा के अनुसार श्री गणेश का विवाह पहले कर दिए जाने के कारण रुष्ट कार्तिकेय क्रौंच पर्वत पर चले गए। देवगणों की विनति भी कार्तिकेय को आदरपूर्वक लौटा लाने में विफल रही। पिता आदिदेव शिव और माता पार्वती पुत्र वियोग से व्यथित, वात्सल्य से व्याकुल होकर क्रौंच पर्वत पहुँचे, स्नेहहीन कार्तिकेय उनके आगमन की सूचना पाकर तीन योजन और दूर चले गए। अन्त में पुत्र दर्शन की अभिलाषा में जगदीश्वर शिव स्वयं ज्योति-रूप धारण कर माँ पार्वती के साथ पर्वत पर अधिष्ठित हो गए। उसी दिन से प्रादुर्भूत शिवलिंग श्री मल्लिकार्जुन ज्योतिर्लिंग के रूप में विख्यात हुआ। मल्लिका अर्थात् पार्वती और अर्जुन शब्द शिव का वाचक है, इसीलिए इस ज्योतिर्लिंग में शिव और शक्ति दोनों की दिव्य ज्योतियाँ प्रतिष्ठित मानी गई हैं। एक प्रचलित जनश्रुति के अनुसार राजकन्या चन्द्रावती ने किसी विपत्ति से बचाव के लिए श्री शैल पर्वत पर शरण ली। उसे लगा कि श्यामवर्णी उसकी अतिप्रिय गाय श्यामा का दूध कुछ दिनों से कोई दुह लेता है। सत्य जानने की उत्कंठा में उसने गाय का पीछा किया, तो पाया कि किसी स्थान पर बिल्ब वृक्ष के नीचे खड़े होकर गाय स्वयं दूध की धाराएँ ज़मीन पर गिरा रही थी। चमत्कृत चन्द्रावती ने उस स्थल की खुदाई की, तो स्वयंभू शिवलिंग दिखाई दिया। कहते हैं यहीं उसने बाद में भव्य विशाल मंदिर का निर्माण कराया। द्वादश ज्योतिर्लिंगों में परिगणित अभीष्ठ फलदायक मल्लिकार्जुन ज्योतिर्लिंग मंदिर किलेनुमा दीवारों से घिरा हुआ है। मंदिर के परकोटे में चारों ओर द्वार हैं, जिनपर गोपुर निर्मित हैं। द्रविड़ियन शैली में निर्मित विशाल मण्डप और भव्य प्रांगण विजयनगर वास्तुकला के अभिनव प्रदर्शन हैं। परिसर में छोटे-बड़े कुण्ड हैं। इनमें से मनोहर कुण्ड का जल ही अभिषेक के लिए सर्वोत्तम माना गया है। यह परिसर गुरु दत्तात्रेय और ऋषि अत्री की साधनास्थली भी रही है। आदिशंकराचार्य की 'शिवानन्दलहिरी' भी इसी पावन धरा की देन है। मंदिर के बाहर पीपल-पाकर का सम्मिलित वृक्ष है, जिसके आस-पास बने चबूतरे पर श्रद्धालु ध्यानमग्न अवस्था में बैठे दिखाई देते हैं।

सातवाहन, इक्ष्वाकु, पल्लव, विष्णु कुण्डी, चालुक्य, काकतीय, रेड्डी, विजयनगर शासकों के साथ-साथ छत्रपति शिवाजी महाराज ने इस प्रतिष्ठित मंदिर के निर्माण, विस्तार और जीर्णोद्धार में विशेष योगदान दिया। पुरातत्त्ववेत्ता इसका निर्माण करीब दो हज़ार वर्ष पूर्व का मानते हैं। पुराणों के अनुसार हिरण्यकश्यप, नारद, पाण्डव और स्वयं श्रीराम ने इस देव-स्थान में पूजा अर्चना की थी।

माँ भ्रमराम्बा देवी (भ्रमराम्बिका)

आगे कुछ सीढ़ियाँ चढ़ने पर आदिशक्ति देवी भ्रमराम्बा का मंदिर है। इस शाश्वत धाम में सती माता की ग्रीवा गिरी थी। बावन शक्तिपीठों में से एक इस पवित्र तीर्थधाम में देवी महालक्ष्मी के रूप में प्रतिष्ठित हैं। गर्भगृह के समक्ष श्री यंत्र स्थापित है। ऐसी मान्यता है कि दानव अरुणासुर के संताप से संत्रस्त देवगणों के दुखों के निवारणार्थ देवी ने अमर रूप धारण कर उसका वध किया था। स्थानीय लोग भ्रमरों का गुंजन आज भी सुनाई देने की बात कहते हैं। यहाँ सिंदूर से श्री यंत्र की पूजा

का विधान है। मंदिर में प्रविष्टि और पूजा के लिए 500 रु. का शुल्क देय होता है। ऐसी मान्यता है कि अगस्त्य ऋषि की धर्मपत्नि लोपामुद्रा भी इसी मंदिर में प्रतिष्ठित हैं।

दर्शन शिखरेश्वर, साक्षी गणेश और वीरभद्र मंदिर

शिव और शक्ति के दर्शनोपरान्त परिसर से निकलकर कुछ दूरी और तय करने पर वीरभद्र की प्रतिमा स्थित है और आगे बढ़ने पर साक्षी गणेश के मंदिर में दर्शन करना अनिवार्य माना गया है। कुछ और ऊपर बढ़ने पर नन्दी की विशाल प्रतिमा स्वागत करती है। इसमें आगे शिखरेश्वर पर पहुँचकर नन्दी के दो कर्णों के बीच से मंदिर का विहंगम दृश्य और शिखर देखने की परम्परा है। यहाँ 2 रु. शुल्क अदायगी के बाद ही प्रवेश संभव हो पाता है। इस परिसर में वानर दल उपासकों के इर्द-गिर्द डोलते रहते हैं। हमारे पौराणिक ग्रन्थों में वर्णित है कि श्री शैल शिखर के दर्शन मात्र से ही कष्टों का निवारण हो जाता है। यकीन मानिये यहाँ से उतरते हुए हमारी तरह प्रकृति की सजीली मंजुल गोद में परमात्मतत्त्व की अनुभूति आपके भी अन्तर्मन को देर तक प्रभावित करती रहेगी। अलौकिक आनंद की स्मृतियाँ मंदिर के घण्टों के निनाद की तरह ज़ेहन में रची-बसी रहेंगी और आपकी कलाई पर होगा पीला-नीला ऊनी रक्षासूत्र।

भूदान पोचमपल्ली गाँव और साड़ियों का अनूठा संसार

अगले दिन की शुरुआत हैदराबाद से पोचमपल्ली गाँव की यात्रा के साथ हुई। एक घण्टे की यह यात्रा चौड़े पाट वाले हाईवे के ज़रिए होती है। निर्बाध गति से चलने के लिए यह सड़क एकदम सटीक है। प्रतिभा-सम्पन्न साड़ी बुनने वाले बुनकरों के इस छोटे-से गाँव में माटी की सौंधी गंध ने हमारा स्वागत किया। पोचमपल्ली की सूती और रेशमी साड़ियों की देश-विदेश में विशेष माँग है। इस गाँव के लगभग हर घर से करघे की लकड़ी की ठक-ठक करती आवाज़ें आती ही रहती हैं। घर की देहरी पर सजी हुई रंगोली यहाँ रहने वालों के रंग संयोजन और ज्यामितिक रचनाएँ उकेरने के हुनर की बानगी पेश करती दिखाई देती हैं।

ज्यामितिक आड़ी खड़ी रेखाएँ, चौकड़ी, डायमण्ड कट और अमूर्त मोटिफ़ वाली इन इकत साड़ियों के पुराने पैटर्न सिद्धिपीठ खान डिज़ाइन से ज़्यादा प्रभावित दिखते हैं। हालाँकि गुजरात के पाटन पटोलू रूमाल प्रारूप से उठाए गए हाथी, तोते, फूल और नाचती महिलाओं के अंकन पोचमपल्ली इकत साड़ियों का हिस्सा बनकर इनकी खूबसूरती में चार चाँद लगा देते हैं। चौड़े बॉर्डर की टाई एण्ड डाई प्रक्रिया से बनने वाली पोचमपल्ली साड़ियाँ दोनों तरफ़ से बुनी जाती हैं। यहाँ की हर छोटी-बड़ी दुकान पर रेशमी साड़ियाँ रु. 3500 से 350000 रुपये में खरीदी जा सकती है। सूती साड़ियों की कीमत ज़रा कम है। निखालिस ग्रामीण परिवेश और सांस्कृतिक उन्नयन के ताने-बाने से बुनी चटक रंगों वाली तस्वीरों को दिल में उतारते हुए हम हैदराबाद की ओर रवाना हो गए।

शहर हैदराबाद की गंगाजमुनी तहज़ीब पुरसुकून इमारतें

अब हैदराबाद की गंगाजमुनी तहज़ीब से रुबरू होने का वक्त था। मूसी नदी पर कुतुब शाही शासकों की परिकल्पना से बनाए गए शहर की पुरसुकून इमारतों को निहारने के लिए हम पुहुँच गए चारमीनार के सामने। तामीरात के शौकीन कुतुब शाही हुकूमत के दौर में शहर की बसाहट के लिए ईरान से वास्तुविद आए, जिनकी सरपरस्ती में शहर हैदराबाद, हैदर यानि (फ़ारसी/उर्दू में) बहादुरों या शेरों का शहर की शान-बान

के मुताबिक तामीरी करवाई गई। कुतुबशाही दौर की इमारतों पर फ़ारसी और मूरिश प्रभाव दिखाई देता है। मुग़ल काल और निज़ाम-शाही के दौर में भी हैदराबाद को उम्दा इमारतों से सजाया-सँवारा जाता रहा। हर दौर में ये इमारतें पर्यटन के वैश्विक मानचित्र पर पूरी आन-बान-शान से खड़ी दिखाई देती हैं। थोड़ी दूर चलने पर इब्राहिम बाग स्थित कुतुब शाही राजवंश के सात समाधि स्थल हमारे सामने थे। कुली कुतुब शाह के मकबरे का बुलंद गुम्बद और लम्बान वाला चबूतरा उस दौर के हुक्मरानों की तामीरी दीवानगी का बेमिसाल नज़ारा पेश कर रहा था। ये इण्डो-इस्लामिक वास्तुकला की नायाब मिसालें हैं।

हैदराबादी ज़ायका और ज़ुबान

बहुत कुछ है हैदराबाद के पास परोसने के लिए। हैदराबाद की नब्ज़ टटोलते हुए शाम हो चुकी थी। अब वक्त था हैदराबादी वेजिटेरियन खानों का आनंद उठाने का। पार्क हयात हॉटल के रेस्तराँ में हैदराबादी वेज दम बिरयानी अनार के दाने बुरकी हुई, हल्दी वाले खट्टे-मीठे दही का रायता और पापड़ एक साथ परोसी गई। खाटी दात्र, हैदराबादी मिर्च का सालन, दम के बघारे बैंगन और खुबानी का मीठा, बहुत कुछ है हैदराबाद के पास परोसने के लिए। लोंग वीकेण्ड टूर को ज़ायकेदार बनाने के लिए इससे अच्छी जगह और कौन-सी होगी भला। स्मरण रहे यात्रा में कई बार हैदराबादी ज़ुबान 'काइको', 'नक्को', 'पोट्टी-पोट्टा', 'मेंरेकू', 'तेरेकू', और 'ज़रा हल्लु चलो' जैसे शब्द गाहे-बगाहे सुनाई देते रहेंगे। बस आपको स्थानीय लोगों के साथ बातचीत के दौरान इनको पकड़ना पड़ेगा।

उदासी के साथ भोपाल वापसी

अद्भुत दृश्यावलियों वाली इस जगह ने हमें इस कदर प्रभावित किया, जैसे कोई बच्चा एक कोरी ड्राइंग बुक लेकर गया हो, रास्ते भर उसने कुछ आकार उकेरे हों और फिर घर आते-आते विविध रंगों से उसमें अपनी कल्पना से असीमित रंग भर दिए हों। हाथ खोलकर विधाता ने इस क्षेत्र को सौगातें दी हैं। ऑडी तेज़ी से हैदराबाद से नागपुर के रास्ते भोपाल की ओर बढ़ रही थी और हम लोंग वीकेंण्ड टूर की समाप्ति पर सोच रहे थे। निसर्ग का अनुपम सौन्दर्य, आधुनिक भारत के विकास की नई इबारत, ऐतिहासिक धरोहरें, अद्वितीय आध्यामिक संचेतना और संस्कृति का अनूठा ताना-बाना मन के किसी कोने में दुबककर बैठ गया लगता है। धन्य है हमारी सत्य सनातन परम्परा, जिसने हमें सर्व-धर्म सम्भाव का पाठ पढ़ाया और हम हैदराबाद को उसी दृष्टीकोण से देख पाए। साथ ही पोचमपल्ली, श्रीशैल मल्लिकार्जुन और भ्रमराम्बा सिद्ध शक्ति पीठ की मधुर स्मृतियाँ लिए भोपाल लौट आए। श्री मल्लिकार्जुन में बिताए वे सुकून के पल, जो शायद इस ज़िंदगी में दोबारा कभी न मिले, श्री मल्लिकार्जुन को छोड़ते वक्त का वह अहसास, जैसे यहाँ अपना कुछ छूटा जा रहा है, फिर यात्रा पूरा कर लेने की खुशी, विजेता होने का ग़रूर, आपस की शरारतें, सारे गिले-शिकवे भूल जाना, अब सब एक-दूसरे के दोस्त बन चुके थे, फिर दिल्ली पहुँचना, जी भर की बातें भी न कर पाना और फिर एक-दूसरे से बिछड़ जाना उस यात्रा और उन सहयात्रियों की बहुत याद आ रही है। इस यात्रा से मेरे जीवन में कई बदलाव आए।

akasharianaick98@gmail.com

अमेरिका के इन्द्रलोक 'लास वेगस' की ओर

- श्रीमती शकुन्तला बहादुर
अमेरिका

कुछ वर्ष पूर्व का यह यात्रा-संस्मरण है। मैं उन दिनों युनाइटेड स्टेट्स में टेक्सास स्टेट की राजधानी ऑस्टिन में अपने बेटे के पास रह रही थी। वहाँ से हमने लास वेगस जाने का प्रोग्राम बनाया था। ऑस्टिन हवाई अड्डे पर यात्रियों की संख्या कम नहीं थी। इनमें गौरांग अमेरिकी समूह के अतिरिक्त एफ़्रो अमेरिकी भी काफ़ी थे। भारतीय वेशभूषा में साड़ी पहनी हुई, तो केवल हम दो ही थीं - श्रीमती बलिवाड (बेटे सुधांशु के मित्र अशोक की माँ) और मैं। आते-जाते कई यात्री हमारी ओर देखकर, मुस्कुराते हुए, अभिवादन करते हुए निकल जा रहे थे। सभी जल्दी में थे। सामान जमा करके, सुरक्षा नियमों का पालन करके हम विमान में जा बैठे। खिड़की के पास बैठकर बाहर का आनन्द लेने के लिए सभी उत्सुक थे।

वायुयान ने धरातल छोड़ दिया और धीरे-धीरे वह ऊपर की ओर उड़ चला। एक ज़ोर के झटके के साथ वायुयान की गति काफ़ी तेज़ हो गई। बेल्ट बँधी होने से हमें इस झटके से कोई कष्ट नहीं हुआ। बाहर का दृश्य मनोरम था। पृथ्वी की हरियाली और घनी बस्तियाँ - सभी काफ़ी नीचे छूट गई थीं। गुड़ियों के मकान-से दिखाई देते घर और खिलौनों-सी मोटरें, चौड़े रास्ते केवल पतली रेखा-से और पेड़ों के झुरमुट, कुल मिलाकर एक झाँकी-सी प्रस्तुत कर रहे थे। यह झाँकी भी शीघ्रता के साथ परिवर्तित होते दृश्यों को दिखा रही थी। आकाश में सूर्य का प्रकाश अभी अच्छी तरह था। अब हम बादलों के बीच उड़ चले। हमारे चारों ओर बादल ही बादल थे। कभी ये बादल धुनकी हुई रुई की तरह लगते थे, तो कभी फ़ेनिल जलराशि की तरह। जैसे हम सागर के बीच बहते जा रहे हों। कुछ समय बाद ही हमारा विमान नीचे की ओर आने लगा था।

हम एरिज़ोना स्टेट में आ गए थे। पठार जैसे भूरे पहाड़ दिखाई दिए और रेगिस्तान-सी निर्जनता थी। कहीं-कहीं छुटपुट-सी आबादी थी, जो बीच-बीच में ओएसिस यानी कि नख़लिस्तान-सी दिख रही थी। कुछ ही समय में सघन बस्ती आ गई थी। दूरी पर पहाड़ियाँ, मकान, सड़कें, हरियाली और चारों ओर भागती मोटरें, देखते-देखते हम पृथ्वी पर आ गए थे। फ़ीनिक्स हवाई अड्डे पर उतरकर हमें दूसरे विमान में बैठना था। बहुत से विमान वहाँ खड़े थे, सभी 'साउथ वेस्ट एअरलाइन्स' के थे। बाहर आकर हमने लगभग तीस मिनट प्रतीक्षा की। सुसज्जित दुकानों में तरह-तरह की खूबसूरत चीज़ों, खिलौनों और घड़ियों आदि का अवलोकन किया। वहाँ कोई आइसक्रीम खा रहा था, कोई कॉफ़ी पी रहा था। यहीं हमारी भेंट साई बाबा की भक्त एक भारतीय महिला से हुई, जिसने अपने बेटे और उसकी अमेरिकी पत्नी से परिचय कराया।

ऑस्टिन के अनुसार हमारी घड़ियों में रात्रि के नौ बजने वाले थे, लेकिन यहाँ चारों ओर प्रकाश फैले होने से, अभी दिन छिपने में काफ़ी देर लग रही थी। मुझे पता चला कि एरिज़ोना स्टेट का समय टेक्सास स्टेट से दो घंटे पीछे है। अतः अभी यहाँ केवल शाम के सात ही बजे हैं। अमेरिका के अलग-अलग भूभागों में सूर्योदय और सूर्यास्त का समय अलग-अलग होने से वहाँ की घड़ियों का समय वर्ष में दो बार बदलता है। तभी यहाँ के समय से हमने भी अपने हाथों की घड़ियाँ मिला लीं। सूरज अभी डूबा नहीं था। ऑस्टिन में भी मैंने देखा था कि शाम को आठ, साढ़े आठ बजे तक

दिन का प्रकाश रहता था। दूर-दूर तक अंधकार का आभास ही नहीं होता था। उस प्रकाश के साथ ही बिजली की जगमगाहट वातावरण को और भी जागरूक बना देती थी। घड़ी में समय की ये भिन्नता अमेरिका के दूसरे स्टेट्स में भी मिलती है। फ़ीनिक्स से हम दूसरे विमान द्वारा लास वेगस की ओर उड़ चले। उड़ान के दौरान उन्हीं दृश्यों की पुनरावृत्ति हुई। रेगिस्तानी स्थल, खजूर के पेड़ और पठार-सी भूरी पहाड़ियाँ दिखाई दे रही थीं। तभी एविएशन फ़्यूल (गैस) की विशालकाय टंकियाँ दिखाई दीं। पुनः धीरे-धीरे हम पृथ्वी पर उतरने लगे। लास वेगस का विशाल हवाई अड्डा बिजली के प्रकाश से जगमगा रहा था, जैसे चाँद-तारों से सज़ा आकाश धरा पर बिछ गया हो। विविध प्रकार की रंग-बिरंगी बिजलियों से यहाँ की शोभा देखते ही बनती थी। बिजली से चमकते ऊँचे-ऊँचे खजूर के पेड़ एअरपोर्ट भवन के अन्दर खड़े थे। सामने विशाल स्क्रीन पर फ़िल्म चल रही थी। इसी भवन में स्थान-स्थान पर अनेकों मशीनों पर बैठे लोग पैसे डालते और मशीन घुमाते हुए दिखाई दिए। मुझे ज्ञात हुआ कि लास वेगस पूरे विश्व में अपने ढंग का अनोखा शहर है, जहाँ द्युतक्रीड़ा (जुआ खेलना) शासन द्वारा मान्य है। वैभव की दृष्टि से उसके सामने न्यूयॉर्क जैसे शहर भी फीके पड़ जाते हैं।

हम अचम्भित से सब ओर घूम-घूमकर वहाँ की अद्भुत सज्जा और परीलोक-सी शोभा को देखने लगे थे। तभी हमारा सामान भी विशालकाय चक्र (कनवेअर बेल्ट) पर आ गया था। हमने बैगेज उठाया और बिजली संचालित सीढ़ियों से उतरकर हम सब नीचे आए। सामान को हमने ट्रॉली पर रख लिया था। प्लैटफ़ॉर्म पर आकर हम शटल में बैठ गए, जो प्लैटफ़ॉर्म पर आकर, इस तरह लगकर खड़ी हो गई, मानो उसी का हिस्सा हो। दोनों के तल बराबर चिपके हुए लग रहे थे। इसमें कई डिब्बे (कम्पार्टमेंट्स) थे। एक ओर सामान रखकर हम बैठ गए और खिड़की से बाहर का दृश्य देख रहे थे, तभी शटल रुकी। हम भी उतरकर बाहर आए और खड़ी हुई बस में बैठकर बाहर शहर की ओर बढ़े। मेरे बेटे सुधांशु और उसके मित्र अशोक ने जाकर एक गाड़ी किराये पर ले ली। उसमें अपना सामान रखकर हम लोग आराम से शहर देखने चले। अँधेरा हो गया था। लेकिन सब ओर जगमगाहट थी। एक स्थान पर गाड़ी रोककर, हमने कॉफ़ी ली और अपने साथ लाए आलू के पराठों से क्षुधानिवृत्ति की। गाड़ी में कुछ समस्या आ जाने से हम फिर लौटकर वापस गए। इस बार हमें जो गाड़ी मिली, एकदम नई थी। चमकती मैरून कलर की वैन में बैठने का आनन्द ही कुछ और था।

अब हमारी वैन लास वेगस की सड़कों पर दौड़ रही थी। रात्रि में नेवाडा स्टेट की ये नगरी इन्द्रपुरी से बढ़कर लगी। वहाँ घूमते हुए हमने देखा कि वहाँ बड़े-बड़े कसीनो में जनता के लिए अनेकानेक द्युतक्रीड़ा यन्त्र (स्लॉट मैशीन्स) लगे थे। सारी नगरी वारविलासिनी-सी सज-धजकर रात्रि में अपने चाहने वालों को आकृष्ट करती है। पर्यटकों की भीड़ सभी जगह थी। लोग चुम्बक से खिंचे चले आ रहे थे और उन अद्भुत दृश्यों को मन्त्रमुग्ध होकर देख रहे थे। कलात्मक अभिरुचि और वैज्ञानिक प्रगति के आश्चर्यजनक दृश्यों को देखकर ऐसा लगा कि शायद हम स्वर्ग में ही आ खड़े हुए हैं। भारत में दीपावली और गणतंत्र-दिवस पर भी बिजली की इतनी जगमगाहट मैंने नहीं देखी थी। बर्लिन, पेरिस और लन्दन भी मुझे याद थे। लेकिन यहाँ की तो बात ही कुछ और थी। सबसे अलग, असाधारण, भूलोक से एकदम भिन्न।

आगे बढ़ते हुए, चहल-पहल के बीच हमने अपने को "सीज़र्स पैलेस" के सामने खड़ा पाया। श्वेत भव्य अट्टालिका पर सजीव से घोड़े दौड़ते प्रतीत हो रहे थे, जिनकी लगाम सीज़र के हाथ में

थी। सभी अश्व स्वर्णिम आभा से दमक रहे थे। बाईं ओर ऊँचे-ऊँचे स्तम्भों पर परी सदृश सुन्दर मूर्तियाँ प्रतिष्ठित थीं। रंग-बिरंगे फव्वारे मन को आनन्दित कर रहे थे। ऊपर घोड़ों के पास में कई अग्निपुंजों से ऊँची-ऊँची लपटें उठती दिखाई दे रही थीं। लगता था कि जन-समुद्र उमड़ रहा हो, फिर भी न तो कोलाहल था और न ही कोई किसी को धक्का दे रहा था। विशाल खुले स्थान पर लोग अपने साथियों और परिवार के सदस्यों के साथ आनन्द-सागर में गोते लगा रहे थे। सभी मस्त थे। कहीं दुख या कष्ट का नाम तक न था। आस-पास की ऊँची-ऊँची अट्टालिकाओं पर भी ऊपर से नीचे तक तरह-तरह की बिजली की लहरों-सी दौड़ रही थीं, जैसे एक साथ असंख्य सितारे या जवाहरात लाकर जड़ दिए गए हों। खाने-पीने के स्थान भी सजे थे। अन्दर जाने के मार्ग से हम सीज़र्स-भवन में घुस गए। जगह-जगह मानव-निर्मित पर्वत, झरने, झील आदि सुन्दर प्राकृतिक दृश्यों ने दर्शकों को मुग्ध कर दिया था। यहीं दो जीवित श्वेत चीते निद्रा में मग्न, बड़े लुभावने थे। वे ऊँची पहाड़ी गुफ़ा के सामने थे, जो चारों ओर से पानी से घिरे थे। एक ओर आगे बढ़कर विस्तृत जलराशि में पेंग्विन को खड़ा देखा।

यहाँ एक ओर दुकानें थीं, जिनमें कपड़े खिलौने आदि बिक रहे थे। आगे चलकर सीज़र्स की बड़ी विशाल शुभ्र प्रतिमा दिखाई दी। नीचे असंख्य मशीनों पर गोरे-काले, मोटे-पतले, छोटे-बड़े पुरुष-स्त्रियाँ अपना-अपना भाग्य आज़मा रहे थे। कहीं पैसे पाते, कहीं खोते। बार-बार निशाना लगाते थे। कहीं-कहीं शतरंज की तरह मोहरों के भी खेल चालू थे। वातावरण बड़ा रंगीन था। सभी जैसे मदमस्त थे, कुछ पी रहे थे, कुछ पी चुके थे। एक ही धुन थी, लाखों में खेलने और मिनटों में लक्ष्मी को अपना बनाने की। अन्दर व्यापक स्तर पर खान-पान की भी व्यवस्था थी। लोग खा रहे थे। कहीं-कहीं लड़के-लड़कियाँ स्वयं लाकर व्यंजन पहुँचा रहे थे। विचित्र वेशभूषा, शृंगार और साज-सज्जा थी। इसी भवन में एक ओर जाकर हमने ऊँचा विस्तृत नीला आकाश देखा। कलाकारों की अद्‌भुत प्रतिभा और कौशल ने हमें यही अहसास कराया कि जैसे हम खुले आकाश के नीचे खड़े हों। ठंडी हवा बह रही थी। संगीत-लहरी गूँज रही थी। ऊँची अट्टालिका के ऊपर चारों ओर ग्रीक दार्शनिकों की भव्य प्रतिमाएँ सुशोभित थीं। भूतल पर भी एक बड़ी प्रतिमा भाला-सा अस्त्र लिए बैठी थी। चारों ओर सुन्दर फव्वारे छूट रहे थे, जिनके जलकण हमें सिक्त कर रहे थे। यहाँ सारी रात यह कार्यक्रम चलता है। सवेरा होने पर ही कभी कोई धनी कंगाल बनकर, सारा पैसा डुबोकर, दुखी मन से, तो कोई जैसे पैसे के नशे से चूर झूमता मदमस्त अपने घर जाता है। दिन में ये सारे स्थल जनशून्य और वीरान से हो जाते हैं। द्‌युतप्रेमी अतिथियों और दर्शक-आगन्तुकों को पास में ही 'मिराज' नाम से एक अन्य कसीनो भी अपनी ओर आकृष्ट कर रहा था। झरनों और पर्वतों के साथ ही यहाँ हमने ज्वालामुखी फटने का स्वाभाविक-सा दृश्य भी देखा था, जिसे हर आधे घंटे बाद प्रस्तुत किया जाता था। इसे हमने बहुत पास से बाहर खड़े होकर देखा था। ज्वालामुखी फटने की तुमुल गर्जना के साथ ही आग की लपटों का भयावह दृश्य, पानी की धारा, लावा का निकलना और देर तक दहकते लाल-लाल अंगारों को देखते हुए हमें यह ज्ञात नहीं रहा कि हम लोग कहाँ हैं। और अचानक कँपा देने वाला ये प्रकृति का प्रकोप हमें किस प्रकार दृष्टिगत हो रहा है? चौड़े साफ़-सुथरे मार्ग पर वहाँ मोटरों की कतारें जा रही थीं। सड़क की दोनों ओर की पटरियों पर आवागमन के लिए चौड़ा स्थान छोड़कर रंग-बिरंगे सुन्दर फूलों की कतार देखते ही बनती थी। कहीं-कहीं गुलाब के बड़े-बड़े फूल और गेंदा भी खिला हुआ था।

इस शहर में कसीनो की भरमार थी। यही यहाँ

का प्रमुख उद्योग है। पैसा कमाना और गँवाना, रातों को जागना और दिन में रात मनाना, जगमगाती दुनिया में मस्त होकर स्वयं को भूल जाना, इन्हीं रंगरेलियों के लिए 'लास वेगस' प्रसिद्ध है, जिसे प्रायः लोग 'वेगस' ही कहते हैं। मैंने कहीं पढ़ा था कि यह वह स्थान है, जहाँ समय अपना कोई अस्तित्व नहीं रखता है। कब दिन से रात हो जाती है और कब रात से दिन? इसका अहसास ही नहीं होता है। रातों-रात राजा से रंक और रंक से राजा बनने की विडम्बना यहाँ पर प्रत्यक्ष दिखाई देती है। जीतने के लालच में बार-बार खेलना और हारने पर खोए हुए धन को पुनः प्राप्त करने की लालसा में, इस जाल में फँसा व्यक्ति फँसता ही चला जाता है, उससे बाहर नहीं निकल पाता है। विश्व के पर्यटकों की दृष्टि से यह विश्व का सर्वाधिक प्रमुख मनोरंजन केन्द्र है। यह अद्‌भुत नगरी सूर्यास्त से सूर्योदय तक विद्‌युत-वल्लरियों से जगमगाती है। यहाँ राजा-महाराजाओं को निकट से देखा जा सकता है। सिंहासन पर नहीं, द्‌युतक्रीड़ा यन्त्रों के पहिये घुमाते और पाँसे फेंकते। यह राजसी ठाठ-बाट वाले ऐश्वर्य के स्वामियों के लिए स्वर्ग है। एक बिजली की कम्पनी ने यहाँ के एक क्षेत्र में पैंतीस करोड़ बल्ब लगाने का दावा किया था। इस जादुई नगरी में काल्पनिक आश्चर्यजनक दृश्य वास्तविक से प्रतीत होते हैं।

यहाँ घूमते बहकते पता ही नहीं चला कि रात आधी खिसक गई थी। यहाँ की घड़ी के अनुसार रात के दो बज चुके थे। दर्शकों की भीड़ में कहीं कोई भी कमी नहीं लग रही थी। हँसते, बात करते मस्त अंतरराष्ट्रीय पर्यटक मौज बहार की उस घड़ी में खोए हुए से अभी तक इधर-उधर आ-जा रहे थे, जैसे अभी शाम के छ: ही बजे हों। सभी पूरी तरह निश्चिन्त से लग रहे थे। गाड़ी काफ़ी दूरी पर पार्क करनी पड़ी थी। घूमते-घूमते हम वहाँ इतनी दूर आ पहुँचे थे। आने और जाने के मार्ग अलग-अलग होने से चक्कर काटते हुए हमने रात्रि में विश्राम हेतु मोटेल के लिए प्रस्थान किया। दोनों ओर जगमगाती अट्टालिकाएँ अत्यन्त कलात्मक और सुसज्जित होने से दर्शनीय थीं। हमारी आँखों में भी नींद नहीं थी। अपलक नयनों से हम इस सौन्दर्य को निरखने में लगे थे। मैं एक ओर देखती थी, तो मेरी बेटी स्मिता मुझे झट दूसरी ओर देखने को कहती थी। कुछ छूट जाता, तो हम पीछे मुड़-मुड़कर देखते थे।

मधुर भारतीय संगीत बजाते हुए बेटा सुधांशु गाड़ी चला रहा था। बीच-बीच में वह भी मेरा ध्यान आकृष्ट कर रहा था। इस समय काफ़ी दूर जाकर भी हमने कसीनो देखे, जो दूर की बस्ती में व्यापार-रत थे। मुझे पता चला कि इन कसीनो में बहुत बढ़िया भोजन काफ़ी कम दामों में मिलता है। लोग लालच में फँसकर खूब डटकर खाते जाते हैं। जब पेट इतना भर जाता है कि वहाँ से हिलने-डुलने में कष्ट अनुभव हो, तो वहीं बैठे-बैठे चक्कर घुमाते, पैसा डालते और निकालते सारी रात बिता देते हैं। उनका यह मनोरंजन कभी अचानक हँसाता है, तो कभी जी भर कर रुलाता है।

शहर से दूर अजनबी सुनसान सड़कों पर हमारी वैन दौड़ी चली जा रही थी, तभी हम 'हूवर डैम' के पास से गुज़रे। यह बाँध 726 फ़ीट ऊँचा, विश्व का प्रसिद्ध बाँध है। यह 440 करोड़ घन गज़ कंक्रीट से बना हुआ बाँध सचमुच बहुत विशाल है। अन्त में हम किंग्समैन की बस्ती में अपने मोटेल पहुँचे। हमारी यह यात्रा समाप्त हुई। रात को तीन बजे के बाद अपने कमरों में जाकर, गुदगुदे बिस्तरों पर पहुँचते ही नींद में खो गए। परिश्रान्ति को मिटाकर, प्रातः जलपान के उपरान्त हमें आगे जाना था। यह यात्रा सदा अविस्मरणीय रहेगी। उस एक दिन में हमें जो आनन्द मिला, उसकी हमने पहले कभी कल्पना भी नहीं की थी। इस यात्रा की सुधि-सरिता की लहरों में हम सदा डूबते उतराते रहेंगे।

shakunbahadur@yahoo.com

कबीर की नगरी में

- श्री रोहित कुमार 'हैप्पी'
न्यूज़ीलैंड

न्यूज़ीलैंड में बसे मुझे लगभग तीन दशक हो गए हैं। लगभग हर वर्ष भारत जाना भी हो ही जाता है। भारत के विभिन्न राज्यों और नगरों से परिचित हूँ। इधर पिछले कई वर्षों से मेरी इच्छा थी कि वाराणसी के दर्शन किए जाएँ! वाराणसी को 'बनारस' और 'काशी' के नाम से भी जाना जाता है। 'वाराणसी' इसका प्राचीनतम नाम है, जो इसके 'वरुणा' और 'असी' नदी के बीच बसे होने के कारण पड़ा था। धर्म ग्रन्थों में इस नगर का 'काशी' नाम अधिक प्रसिद्ध है। मुगलकाल और अंग्रेज़ों के शासनकाल में इसे 'बनारस' के नाम से जाना जाता रहा है।

इसे हिंदू धर्म में सर्वाधिक पवित्र नगरों में से एक माना जाता है। यह नगर विश्व के प्राचीनतम नगरों में से एक तो है ही, इसे शिव की नगरी और घाटों की नगरी भी कहा जाता है।

वाराणसी केवल एक धार्मिक तीर्थ ही नहीं है, अपितु इसे हिंदी का भी 'साहित्यिक तीर्थ' कहा जा सकता है। यह नगरी दर्जनों हिंदी के महान साहित्यकारों की जन्म-भूमि रही है और अनगिनत साहित्यकारों ने इसे अपनी कर्मभूमि बनाया। भक्ति-काल के अनेक संत कवि इसी नगरी के निवासी रहे हैं और यहीं उन्होंने साहित्य सृजन किया।

जिस वाराणसी ने हमें कबीर, भारतेन्द हरिश्चन्द्र, प्रेमचंद, जयशंकर प्रसाद सरीखे साहित्यकार दिए, उस धरती के प्रति भला कौन हिंदी-प्रेमी आकृष्ट न होगा! इस धरती के प्रति अनुराग होना स्वाभाविक ही तो है। अतः इस बार भारत जाने पर सीधा 'वाराणसी' जाने की ठान ली थी कि चाहे कुछ भी हो 'वाराणसी' तो हम जाकर ही रहेंगे।

बस दिल्ली पहुँचते ही हम तुरन्त मथुरा, आगरा, लखनऊ होते हुए अंततः 'वाराणसी' जा पहुँचे।

सबसे पहले मन हुआ कि 'कबीर-चौरा' जाया जाए और उसके बाद कथा-सम्राट मुंशी प्रेमचंद के गाँव लमही के दर्शन करें। पता किया, तो जानकारी मिली कि 'कबीर चौरा' तो पास ही है और लमही भी कुछ किलोमीटर की दूरी पर ही है।

बस, फिर क्या था। चल दिए कबीर चौरा की ओर। काशी के बाज़ारों के मध्य पिपलानी कटरा के समीप है 'कबीर चौरा' और यहीं कबीर मठ स्थापित है, जिसे मूलगादी पीठ भी कहा जाता है। यह कबीरपंथ का मुख्यालय है। हर वर्ष कबीर जयंती पर कबीरपंथी व कबीर को चाहने वाले यहाँ एकत्रित होते हैं।

मठ में पहुँचते ही मैंने अपना कैमरा सँभाल लिया। कुछ तस्वीरें कैमरे में उतारीं, तो सामने लगी पट्टिका पर ध्यान गया, जिसपर लिखा था, 'फ़ोटो लेना मना है।'

मैं कुछ तस्वीरें तो ले ही चुका था, लेकिन अपनी गलती का आभास हुआ, तो मैं मठ के कार्यालय की ओर चल दिया। वहाँ के प्रबंधक से वार्तालाप हुआ। मैंने उन्हें बताया कि मैं कुछ तस्वीरें ले चुका हूँ और नहीं लूँगा। ली हुई तस्वीरों को भी अभी 'डिलीट' किए देता हूँ। प्रबन्धक बड़े सज्जन निकले, बोले, "इसकी आवश्यकता नहीं।" संवाद स्थापित हो चुका था, वार्तालाप होने लगा। मेरा यह मंतव्य जानने के बाद कि मैं 'कबीर पर एक वेबसाइट' बना रहा हूँ और सुदूर न्यूज़ीलैंड से 'वाराणसी' दर्शनार्थ आया हूँ, उन्होंने सहर्ष फ़ोटो खींचने और वीडियो बनाने की अनुमति दे दी। तभी मेरा परिचय आनंददास प्रचंड जी से हुआ, जो कबीरपंथी थे व

वहीं निवास करते थे। उन्होंने पूरे मठ के दर्शन करवाए और साथ-साथ सभी स्थलों की जानकारी भी दी। प्रचंड जी स्वयं पत्रकार रहे हैं और विभिन्न दैनिक पत्रों में काम कर चुके हैं। "वर्तमान में मठ के आचार्य महंत श्री विवेकदास हैं। आपने 2000 में सर्वसम्मति से चौबीसवें आचार्य के रूप में पद ग्रहण किया था।"

कबीरदास का जन्म तो लहरतारा क्षेत्र में माना गया है, जहाँ इनकी जननी ने इन्हें लहरतारा तालाब के पास छोड़ दिया था। वहीं से नीरु व नीमा इन्हें अपने टीले पर ले आए थे।

क्या आपने 'नीरु टीला' देखा है? हाँ, वही नीरु-नीमा जुलाहा दम्पत्ति, जिन्होंने कबीर का पालन-पोषण किया था! कबीर जिन्हें लहरतारा में मिले थे। वास्तव में पूर्व का नीरु-नीमा निवास ही आज कबीरमठ के रूप में जाना जाता है।

इसी परिसर में कबीरदास के पालक माता-पिता नीरु-नीमा की समाधि के अतिरिक्त कई कबीरपंथी आचार्यों की समाधियाँ भी हैं। ये समाधियाँ संगमरमर के सुंदर पत्थरों से निर्मित हैं।

तत्कालीन समय में यह मान्यता थी कि काशी में प्राण त्यागने से स्वर्ग मिलता है और मगहर में प्राण जाएँ, तो व्यक्ति नर्क में जाता है। इस धारणा को अपवाद सिद्ध करने के लिए ही कबीरदास जीवन के अंतिम समय में मगहर चले गए और वही पर उन्होंने अंतिम श्वास ली।

"क्या काशी क्या ऊसर मगहर,
राम हृदय बस मोरा।
जो कासी तन तजै कबीरा,
रामे कौन निहोरा॥"

जनश्रुति है कि मृत्यु के पश्चात् जब उनके शव से चादर हटाई गई, तो शव के स्थान पर कुछ पुष्प पड़े मिले, जिनमें से कुछ पुष्पों का हिन्दुओं ने प्रतीक स्वरूप दाह-संस्कार किया, जबकि मुसलमानों ने कुछ पुष्पों को दफ़ना दिया।

इन्हीं पुष्पों में से कुछ वाराणसी स्थित इस मठ में लाए गए थे व यहाँ मठ के मध्य में कबीरदास के प्रतीक स्वरूप एक समाधि का निर्माण किया गया। मठ में ही गुम्बदाकार विशाल बीजक मन्दिर स्थापित है, जहाँ कबीरदास साधना करते थे व उपदेश देते थे। बीजक मन्दिर में कबीरदास की चरण पादुकाएँ, एक हज़ार आठ दानों की एक माला, टोपी, लकड़ी का लोटा एवं एक त्रिशूल भी रखा हुआ है।

त्रिशूल के सन्दर्भ में मान्यता है कि कबीरदास ने अपनी वाणी से किसी गोरखपंथी सन्यासी को पराजित किया था, जिससे प्रभावित होकर गोरखपंथी सन्यासी ने अपना त्रिशूल कबीरदास को भेंट स्वरूप प्रदान कर दिया। बहुत से कबीरपंथी यह मानते हैं कि वास्तव में यह त्रिशूल 'गुरु गोरखनाथ' का है और वे ही शास्त्रार्थ में कबीरदास से पराजित हुए थे। परंतु यहाँ ध्यान देने योग्य तथ्य यह है कि गोरखनाथ 12वीं शताब्दी में और कबीरदास 15वीं शताब्दी में हुए हैं। अतः गोरखपंथी सन्यासी वाली कथा अधिक तर्कसंगत जान पड़ती है।

मठ परिसर की दीवारों पर कबीरदास से जुड़ीं किंवदंतियों को चित्रों व प्रतिमाओं के रूप में उकेरा गया है। मठ के परिसर की कुछ आदमकद प्रतिमाएँ इतनी सजीव हैं कि जैसे अब बोल उठेंगी। प्रत्येक प्रतिमा के साथ एक सूचना-पट्टिका है, जिसपर इसका संदर्भ भी दिया गया है। संदर्भ पढ़कर यदि प्रतिमा को देखें, तो जैसे उस समय का दृश्य चलचित्र की भांति आपकी आँखों के आगे घूमने लगता है, मानो प्रतिमा अपनी कहानी सुनाने लगती है! यहाँ पत्थरों पर कबीर के 'बीजक' की साखी, सबद और रमैनी के पद उकेरे गए हैं।

"चलती चक्की देखकर, दिया कबीरा रोय।
दो पाटन के बीच में, साबुत बचा न कोय।"

उपरोक्त दोहा तो बहुतेरों ने सुना होगा, लेकिन इसके पीछे की कहानी शायद कभी न सुनी हो!

किंवदंतियों के अनुसार रूस के पास अरब देश बल्ख़-बुख़ारा के बादशाह रहे सुलतान इब्राहिम के कैदखाने में एक चक्की लगाई गई थी। इसे सुलतान के शासनकाल में पकड़े गए साधु-संतों से चलवाया जाता था। इस भारी-भरकम चक्की का नाम 'चलती चक्की' था। सुलतान इब्राहिम साधु-संतों, फ़कीरों को दरबार में बुलाता था और उनसे अनेक प्रश्नों का समाधान पूछता। जो साधु-संत उसकी शंकाओं और जिज्ञासाओं का समाधान नहीं कर पाते थे, उन्हें कारागार में डालकर इस भारी-भरकम चक्की को चलाने का दंड दिया जाता था।

एक बार जब कबीरदास पंजाब गए, तो उनके अनुयायियों ने कबीरदास को बल्ख़-बुख़ारा में दी जा रही इन यातनाओं की जानकारी देते हुए कुछ करने की विनती की। कबीर साहब यत्नपूर्वक बल्ख़-बुख़ारा पहुँच गए। संतों-फ़कीरों को दी जा रही इन यातनाओं से वे द्रवित हो उठे। उन्होंने संतों-फ़कीरों से कहा - "आप भगवद् भजन कीजिए। चक्की छोड़िए। यह तो चलती चक्की है। अपने आप चलेगी।" यह कहकर उन्होंने इस चक्की को छू लिया। चक्की स्वतः चलने लगी और लगातार चलती रही। कालांतर में कबीर पंथ के पाँचवें संत लाल साहब कबीरदास के द्वारा छूकर चलाई गई इसी चक्की को भारत ले आए। यह चक्की अब जन-सामान्य के दर्शनार्थ हेतु मठ में रखी गई है। मठ में कबीर के समकालीन अनेक संत कवियों की प्रतिमाएँ भी बहुत आकर्षक हैं।

"गंगा की बहती लहरों में समाये कंगन को चमड़ा भिगोने वाली अपनी नन्ही कठौती के ठहरे पानी में से ही ढूँढ निकालने वाले संत गुरु रैदास (संत रविदास) के लिए कबीरचौरा का यह परिसर उनका दूसरा घर था। कबीर साहब की इस ऐतिहासिक साधना-स्थली की माटी में गुरु रैदास के चरणों की धूलि भी शामिल है।"

'मन चंगा तो कठौती में गंगा' को लेकर भी विभिन्न किंवदंतियाँ हैं। एक कथा है कि एक महिला गंगा स्नान जाते हुए अपनी चप्पलें ठीक करवाने हेतु इनके पास छोड़ गई थी और जब लौटी, तो उसे उदास देखकर रैदास ने उसकी उदासी का कारण पूछा, तो उस स्त्री ने बताया कि गंगा में डुबकी लगाते हुए उसके सोने का कंगन गंगा की धारा में बह गया। रैदास ने अपना हाथ पास में रखी अपनी कठौती (चमड़ा भिगोने के लिए पानी से भरा पात्र) में डाला और सोने का कंगन निकाल उसे दिखाते हुए बोले, "देखो, कहीं यह तो नहीं आपका कंगन?" महिला गंगा में बहा अपना कंगन रैदास की कठौती में पाकर गद्गद् हो गई। बस तभी से 'मन चंगा तो कठौती में गंगा' की कहावत प्रसिद्ध है।

एक अन्य कथा इस प्रकार है - एक दिन एक ब्राह्मण रैदास के यहाँ आए और कहा कि गंगा स्नान करने जा रहे हैं और उन्हें जूतों की ज़रूरत है। रैदास ने बिना पैसे लिए ब्राह्मण को एक जोड़ी जूते दे दिए। ब्राह्मण जाने लगा, तो रैदास ने कुछ सुपारियाँ ब्राह्मण को देकर कहा कि मेरी ओर से गंगा मैया को अर्पित कर देना।

ब्राह्मण गंगा स्नान करने पहुँचा। गंगा स्नान करने के बाद गंगा मैया की पूजा की और रैदास वाली सुपारियाँ भी माँ गंगा को अर्पित कर दीं। तभी एक चमत्कार हुआ, गंगा मैया प्रकट हो गईं, रैदासजी द्वारा दी गईं सुपारियाँ उनके हाथ में थीं। गंगा मैया ने एक सोने का कंगन ब्राह्मण को देते हुए कहा कि इसे रैदास को दे देना।

ब्राह्मण रैदास के पास पहुँचा और भाव-विभोर हो बोला कि मैंने गंगा मैया की इतनी पूजा की है लेकिन गंगा मैया के दर्शन कभी नहीं हुए थे, लेकिन आपकी भक्ति के प्रताप से गंगा मैया ने स्वयं प्रकट होकर आपकी दी हुईं सुपारियाँ स्वीकार लीं। आपकी कृपा से मुझे भी गंगा मैया के दर्शन हुए। फिर उसने सोने का कंगन देते हुए सारा विवरण सुनाया। यह बात पूरे काशी में फैल गई।

रैदास से ईर्ष्या करने वालों ने सुना, तो इसे एक पाखंड बताया, कहा कि अगर रैदास सच्चे भक्त हैं, तो दूसरा कंगन लाकर दिखाएँ। विरोधियों के कटु वचनों को सुनकर रविदास जी भक्ति में लीन होकर भजन करने लगे। रविदास जी चमड़ा साफ़ करने के लिए अपनी कठौती में जल भरकर रखते ही थे। इसी कठौती में रखे जल से गंगा मैया प्रकट हुई और दूसरा कंगन रविदास जी को भेंट किया। रविदास के विरोधी भी यह देखकर अभिभूत हो गए और रैदास की जय-जयकार करने लगे। तभी कहते हैं -

"मन चंगा तो कठौती में गंगा।"

जिस प्रकार मठ में स्थापित प्रतिमाओं में 'मन चंगा तो कठौती में गंगा' चरितार्थ करने वाले संत गुरु रैदास को अपना श्रम करते दिखाया गया है, उसी प्रकार अनेक अन्य संत कवि भी अपना-अपना काम करते दिखाई देते हैं। यहाँ संत गोरा अपनी चाक पर बर्तन बनाते दिखाई पड़ जाते हैं, तो संत राज सेन पेड़ के नीचे हजामत करते-करते राम-नाम में लीन हो 'सहज मिले अबिनासी' का मंत्र देते हैं।

अचानक देखता हूँ कि अनेक श्रद्धालु मठ में टोलियों के रूप में प्रवेश कर रहे हैं। पता चला कि ये लोग दूर-दूर से आए हुए हैं। कोई गुजरात से था, कोई राजस्थान से, तो कोई सुदूर दक्षिण से 'कबीर' दर्शन को आया था।

मठ में अनेक कबीरपंथी भी मिले। उन्हें कबीर के दोहे व साखियाँ कंठस्थ थे। कबीर को पढ़ने, उनके दोहों को याद करने से क्या हम कबीर को समझ भी पा रहे हैं? कबीर के सान्निध्य में जितने भी संत कवि हैं, सभी ने अपनी श्रम-प्रतिष्ठा बनाए रखा। क्या मठ में दिखाई देने वाले कबीरपंथ के संत-महंत भी उसी राह पर हैं, जिसपर कबीर चलते थे?

मठ में वशिष्ठ आगंतुकों के आगमन को भी सँजोया गया है। 1934 में गांधी जी का आगमन मठ में हुआ था। मठ में गांधी जी के दाण्डी स्वरूप की प्रतिमा स्थापित कर उस यादगार पल को संजोया गया है।

गांधी जी जब 1934 में काशी आए, तो हरिजन बस्तियों को देखते हुए 'कबीर मठ' भी आए थे। कबीर मठ के तत्कालीन महंत रामविलासदास जी ने गांधी जी को खद्दर के रंगीन फूलों की माला पहनाकर उनका अभिनंदन किया व बाद में उन्हें कुबड़ी और कमण्डल भी भेंट किए। कुबड़ी और कमण्डल पाकर गांधी जी ने हँसकर कहा, "बस, काशी में कमण्डल और कुबड़ी ले ली, तो फिर रह क्या गया?" उनकी बात पर सारा जनसमुदाय हँसने लगा था। गांधी जी ने यह बताया था कि उनकी माता जी कबीर पंथ से थीं। काठियावाड़ में ऐसे कबीरपंथी रहते हैं, जो अपने को हिंदू मानते हैं। गांधी जी का जब विवाह हुआ, तब उनकी माताजी और देवताओं के मंदिर के साथ-साथ उन्हें कबीर मठ में भी ले गई थीं।

इस परिसर में रवीन्द्रनाथ टैगोर की प्रतिमा भी स्थापित है। टैगोर पहली बार 1909 में इस मठ में आए थे और तभी से यहाँ की माटी से उनका रिश्ता जुड़ गया।

टैगोर ने कबीर के सौ रहस्यवादी पदों का अंग्रेज़ी में अनुवाद किया था, जो 'Songs of Kabir' नाम से एक पुस्तक के रूप में प्रकाशित हैं।

गुरु पूर्णिमा के अवसर पर मठ परिसर में अनेक कार्यक्रमों का आयोजन होता है। मठ प्रतिदिन सुबह छः बजे से रात आठ बजे तक खुला रहता है। मठ में प्रतिदिन सुबह एवं सायंकाल में प्रार्थना सभा होती है। सायंकाल में सामूहिक कबीरवाणी का पाठ किया जाता है। पाठ में सामान्य व्यक्तियों की भी सहभागिता होती है।

दर्शकों की आवाजाही लगी हुई थी।

"आप क्या 'गंगा आरती' देखने जाएँगे?" एक

आगंतुक ने प्रश्न किया।

"नहीं, हमें आज लमही जाना है। आज रात को या कल गंगा आरती देखने भी जाना है।''

"लमही! मुंशी प्रेमचंद का गाँव!"

"जी!" मैंने उत्तर दिया।

"उसके लिए शायद देर हो जाएगी। दिन में जाइएगा, तो अच्छा रहेगा।" एक कबीरपंथी सज्जन ने सुझाव दिया।

उनका धन्यवाद करके, मठ कार्यालय से कबीर साखी व अन्य पुस्तकें खरीदीं। मठ का अपना एक कबीरवाणी प्रकाशन है, जिसमें कबीरदास से जुड़ी साहित्यिक पुस्तकों का प्रकाशन किया जाता है। 1980 में परिसर में कबीर पुस्तकालय की स्थापना की गई। इस पुस्तकालय में कबीर सहित्य से सम्बन्धित पुस्तकें उपलब्ध रहती हैं। यहाँ सामान्य पाठकों के आगमन का भी स्वागत किया जाता है।

कबीर की साखियाँ व कुछ अन्य पुस्तकें हाथ में थामे मैं अपने साथी के साथ बाहर जाने के लिए मठ के द्वार की ओर बढ़ गया। अब हमें निर्णय लेना था कि वाराणसी में हमारा अगला गंतव्य क्या होगा?

"मन लागो मेरो यार फ़कीरी में।
जो सुख पावो राम भजन में,
सो सुख नाही अमीरी में।।
भला बुरा सब को सुन लीजै,
कर गुज़रान गरीबी में।
मन लागो मेरो यार फ़कीरी में॥"

मठ के बाहर एकतारे की धुन पर कोई फ़कीर 'कबीर भजन' गा रहा था।

"चलें?" मेरे साथी ने पूछा, तो जैसे मेरी निद्रा टूटी। अब बिना भजन पूरा सुने जाना संभव न था। "बस चलते हैं।" कहने पर, मेरे मित्र ने 'हामी' में सिर हिला दिया और अपने मोबाइल पर कहीं टेक्स्ट करने लगा। मैं फिर से उस फ़कीर को ध्यान से निहारने लगा था, कानों में उसके बोल रस घोलते चले जा रहे थे :

"प्रेम नगर में रहिनी हमारी,
भलि बलि आई सबूरी में।
हाथ में कूंडी, बगल में सोटा,
चारो दिशा जगीरी में॥
मन लागो मेरो यार फ़कीरी में॥
आखिर यह तन ख़ाक मिलेगा,
कहाँ फिरत मगरूरी में।
कहत कबीर सुनो भाई साधो,
साहिब मिलै सबूरी में ॥
मन लागो मेरो यार फ़कीरी में॥"

editorbharatdarshan.co.nz

चुनौतियों से भरा ऑनलाइन हिंदी-शिक्षण

- श्री अशोक ओझा
न्यू जर्सी, अमेरिका

युवा हिंदी संस्थान विगत 12 वर्षों से अमेरिकी सरकार द्वारा प्रायोजित स्टारटॉक कार्यक्रम के तहत 'ऑन साइट' हिंदी-शिक्षण कार्यक्रम आयोजित करता रहा है। इसके लिए संस्थान ने पेनसिलवेनिया प्रदेश के नॉर्थ पेन्न स्कूल डिस्ट्रिक्ट के साथ अनुबंध किया, ताकि उनके स्कूल की कक्षाएँ, भोजनालय, जिम और सभागार की सुविधा मिल सके। सन् 2020 में कोरोना महामारी के प्रकोप के कारण इस कार्यक्रम को स्थगित करना पड़ा था, लेकिन इस वर्ष, 2021 में, स्टारटॉक की तरफ़ से इसे पूरा करने के लिए निर्देश मिला। हमने युवा हिंदी संस्थान के तहत पहली बार 'ऑनलाइन' कार्यक्रम आयोजित करने का निर्णय लिया। कार्यक्रम के निदेशक के रूप में मेरी ज़िम्मेदारी थी 'ऑनलाइन हिंदी कक्षाओं का प्रचार करना, ताकि पर्याप्त संख्या में आवेदन मिल सकें, पाठ्यक्रम तैयार करना, शिक्षकों को पढ़ाने के लिए प्रशिक्षित करना और अंततः गर्मी की छुट्टियों में उसे सम्पन्न करना। स्टारटॉक प्रशासन ने हमें आगाह किया कि अमेरिकी स्कूलों में पहले से ही ऑनलाइन शिक्षा दी जा रही है, जिसके कारण बच्चे अत्यधिक बोझ महसूस कर रहे होंगे। गर्मी की छुट्टियों में यदि उन्हें पुनः ऑनलाइन शिक्षा दी गई, तो शायद पढ़ने में उनकी दिलचस्पी कम हो जाएगी। स्टारटॉक प्रशासन ने सुझाया कि ऑनलाइन कार्यक्रम में प्रति घंटे दस-पंद्रह मिनटों का अवकाश देना उचित होगा। सन् 2007 से ही यूनिवर्सिटी ऑफ़ मेरीलैंड के नेशनल फ़ॉरेन लैंग्वेज सेंटर की देख-रेख में स्टारटॉक कार्यक्रम प्रायोजित होता रहा है, जिसका उद्देश्य अमेरिका में अंग्रेज़ी के अतिरिक्त एक विदेशी भाषा की शिक्षा का विस्तार करना था। हमें उनके नियमों का पालन करना था। अमेरिका में बसे भारतीय समुदाय के लिए हिंदी या तो मातृभाषा है या भारत की संपर्क भाषा है, जिसकी शिक्षा के लिए अमेरिकी सरकार सहायता देती है। हमारी सबसे बड़ी समस्या थी, कार्यक्रम की दिनचर्या कैसी हो, जिससे हिंदी सीखने के साथ-साथ बच्चे भारतीय संस्कृति से भी परिचित होते रहें। प्रातः नौ बजे बच्चों को ऑनलाइन कक्षा में लॉग-इन करने के लिए कहा गया। युवा हिंदी संस्थान स्टारटॉक कार्यक्रमों की अभिन्न अंग रही हैं - योग-कक्षाएँ। प्रतिदिन कार्यक्रम योग-सत्र से प्रारम्भ होता था। सबसे पहले शिक्षकों ने विद्यार्थियों को योग की मुद्राएँ सीखने और उनके अभ्यास के लिए निर्देश दिए। आमने-सामने कक्षा में तो विद्यार्थियों को निर्देश देना आसान है, क्योंकि छात्रों को भूल-सुधार के लिए प्रेरित करना आसान होता है, लेकिन ऑनलाइन कक्षा में तो सभी अपने-अपने घरों में होते हैं, उन्हें एक हद तक ही निर्देशित कर सकते हैं, बाकी उनकी मर्ज़ी पर है। बेहतर उपाय यह है कि शिक्षार्थियों की रुचि के अनुरूप शिक्षा दी जाए।

योग कक्षा में की जाने वाली गतिविधियों के दो उद्देश्य थे - पहला यह कि विद्यार्थियों में स्फूर्ति आए और वे पूरे दिन की गतिविधियाँ उत्साह के साथ करें। दूसरा यह कि हिंदी सीखने वाले विद्यार्थी भारत की पुरातन योग-विद्या से परिचित हो सकें, जो कि अमेरिका में आज घर-घर में प्रचलित है। युवा हिंदी संस्थान की तरफ़ से ऑनलाइन कार्यक्रम के सभी विद्यार्थियों के लिए हमने योग-चटाइयाँ भेजीं। हिंदी पढ़ने में उनकी दिलचस्पी बढ़ाने और उन्हें भारतीय संस्कृति से जोड़ने के लिए युवा हिंदी संस्थान के नाम

लिखे। टी-शर्ट, रंगीन चित्रांकन के लिए पेन और पेंसिल, टोपियाँ, लकड़ी के बने सुंदर ऊँट, हाथी, घोड़े आदि, जिन्हें दिल्ली के हस्तशिल्प बाज़ार से मँगाया गया था, पार्सल किए गए। हिंदी शिक्षार्थियों को भेजी जाने वाली सामग्री में मेहंदी लगाने के लिए प्लास्टिक थैलियाँ भी थीं। कार्यक्रम के दौरान छात्र-छात्राओं को अनेक गतिविधियाँ सिखाई गईं, जिनमें हाथों में मेहंदी लगाना भी शामिल था। भारतीय रीति-रिवाज़ से जुड़ी इन गतिविधियों को उन्होंने मज़े लेकर पूरा किया। 18 दिनों तक चलने वाले इस कार्यक्रम का मुख्य विषय था 'मेरी भारत यात्रा'। बच्चों को यात्रा करना बहुत पसंद है। इस विषय के माध्यम से शिक्षार्थियों को रुचिकर ढंग से नई जगह का भौगोलिक ज्ञान दिया जा सकता है और इसी बहाने उन्हें उस संस्कृति से भी परिचित कराना आसान हो जाता है, जहाँ से सिखाई जाने वाली भाषा का उदय हुआ। स्टारटॉक के नियमों के तहत हम हिंदी पढ़ाते समय बच्चों को गंतव्य के रहन-सहन, रीति-रिवाज़ का परिचय देने के उद्देश्य से गतिविधियाँ तैयार करते हैं। स्टारटॉक शिक्षण के अनेक सिद्धांतों में से एक है, जिस भाषा की शिक्षा दी जा रही है, उसी भाषा को शिक्षा का माध्यम बनाया जाए। यानी हमारे शिक्षकों को अंग्रेज़ी का प्रयोग करने की मनाही है। युवा हिंदी संस्थान की कक्षाओं में इन नियमों का बखूबी पालन किया जाता है। नतीजा यह होता है कि विद्यार्थियों के पास हिंदी में परस्पर वार्तालाप के सिवा कोई चारा नहीं रह जाता। हिंदी माध्यम में हिंदी पढ़ाने की चुनौती का सामना करने के लिए हमारे शिक्षक कार्यक्रम प्रारम्भ होने के लगभग तीन महीने पहले से ही विषय-सामग्री और गतिविधियों का चुनाव करने लग जाते हैं। उन्हें विषय सम्बंधी चित्र, बच्चों के लिए उपयुक्त वीडियो क्लिप का चयन करना पड़ता है। 'मेरी भारत यात्रा' के अंतर्गत प्रत्येक विद्यार्थी को अपनी यात्रा का कार्यक्रम बनाने की प्रेरणा प्रथम दिन से ही दी जाने लगती है। 2021 युवा हिंदी संस्थान स्टारटॉक ऑनलाइन हिंदी कार्यक्रम में चार कक्षाएँ बनाई गईं। चारों कक्षाओं में से प्रत्येक का प्रभारी एक अनुभवी शिक्षक को बनाया गया। हमारे विद्यार्थी पहली कक्षा से लेकर उच्च विद्यालयों से आए थे। अमेरिकी विदेशी भाषा-शिक्षण परिषद् (अमेरिकन काउंसिल ऑन टीचिंग ऑफ़ फ़ॉरेन लैंग्वेजज़), जो कि अमेरिका की सर्वोच्च मानक संस्था है, के वर्गीकरण का ध्यान रखते हुए, प्रत्येक कक्षा बच्चों की उम्र और उनके विद्यालयों के ग्रेड का ख़याल रखकर गठित की गई। कक्षाओं का नामकरण उन स्थानों के नाम पर किया गया, जहाँ बच्चे अपनी भारत-यात्रा के दौरान जाने वाले थे।

कार्यक्रम के दौरान छात्र-छात्राओं को अनेक गतिविधियाँ सिखाई गईं, जिनमें हाथों में मेहंदी लगाना भी शामिल था। भारतीय रीति-रिवाज़ से जुड़ी इन गतिविधियों को उन्होंने मज़े लेकर पूरा किया।

स्टारटॉक का दूसरा नियम है, शिक्षार्थियों के लिए जो विषय और पाठ चुने जाएँ, उनके वास्तविक संदर्भ भी प्रस्तुत किए जाएँ! 'मेरी भारत यात्रा' के अंतर्गत ऐसे अनगिनत शहर, राज्य और पर्यटन स्थलों का चुनाव किया जा सकता है। लेकिन हम अपने विद्यार्थियों को विश्व नागरिक बनाना चाहते हैं, जिसके लिए आवश्यक है कि वे आज दुनिया जिन चुनौतियों का सामना कर रही है, उसे समझें और अपने भाषा-ज्ञान को उससे जोड़ें। मौसम में बदलाव आज के ज्वलंत प्रश्न हैं, क्यों न छोटी उम्र से ही बच्चों को यह बताया जाए कि बिगड़ते मौसम से हमें कितनी परेशानियाँ झेलनी पड़ती हैं। 'मौसम में बदलाव' या 'ग्लोबल वॉर्मिंग' एक ऐसा मुद्दा है, जिसे हर उम्र के लोगों को सिखाया जा सकता है। भारत का भौगोलिक ज्ञान देने के लिए हमने वहाँ के गरम प्रदेश यानी राजस्थान और अत्यंत ठंडे प्रदेश लद्दाख का चुनाव किया। राजस्थान और लद्दाख में

देखने लायक स्थान कौन-से हैं, वहाँ जाने के लिए सर्वोत्तम परिवहन क्या होगा? वहाँ खाने-पीने की कौन-सी चीज़ें हैं, लोग क्या पहनते हैं और किस तरह के त्योहार आदि होते हैं, मौसम के साथ ही इन सबकी जानकारी देना हमारी शिक्षा का ज़रूरी अंग था। हमने राजस्थान में जोधपुर, जैसलमेर और लद्दाख में लेह, वहाँ के ऊँचे पर्वत, नुब्रा और अन्य घाटियाँ, सुंदर झीलें, याक जैसे जानवर आदि के बारे में आसान भाषा में बताना ज़रूरी समझा। चारों कक्षाओं का नामकरण जोधपुर, जैसलमेर, लद्दाख और दिल्ली (भारत की राजधानी) के नाम पर किया गया। चारों कक्षाओं के शिक्षकों को अलग-अलग ज़ूम कक्षा के लिंक प्रदान किए गए, इस प्रकार प्रत्येक विद्यार्थी को पता था कि उसे हर रोज़ सवेरे नौ बजे अपने कंप्यूटर पर जाकर कहाँ लॉग-इन करना है।

कार्यक्रम का प्रारम्भ 21 जून को हुआ। कार्यक्रम की दैनिक गतिविधियों से शिक्षार्थियों के माता-पिता को अवगत कराते रहना हमने उचित समझा। इसलिए बच्चों के लॉग-इन के लिए उनके माता-पिता द्वारा निर्धारित किए गए ईमेल से ज़ूम लिंक की सूचना भेजी गई। इसका लाभ यह हुआ कि हम जो भी पढ़ा रहे हैं, इसकी पूरी जानकारी बच्चों सहित उनके माता-पिता को भी होती रही। युवा हिंदी संस्थान की हिंदी शिक्षा में हमने माता-पिता को जान-बूझकर इसलिए शामिल किया, ताकि हमारी शिक्षा-शैली के बारे में वे पूरी तरह परिचित रहें, प्रश्न पूछें और आगे चलकर स्वयं भी उसी तरीके से अपने बच्चों को पढ़ाने के लिए प्रेरित हों। हम जानते हैं कि 18 दिनों में भाषा-शिक्षण की नींव तो डाली जा सकती है, लेकिन जब तक बोलने, लिखने और पढ़ने का निरंतर अभ्यास न किया जाए, शिक्षार्थी की भाषा प्रवीणता बढ़ाई नहीं जा सकती। स्टारटॉक शिक्षा-पद्धति का मुख्य उद्देश्य यह है कि बच्चे कक्षा में जो शब्दावली या वाक्य-रचना सीखें उसका प्रयोग वास्तविक जीवन में करें, तभी भाषा सीखने की सार्थकता साबित हो सकती है। कार्यक्रम के पहले सप्ताह में सभी कक्षाओं में बच्चों को आपस में एक-दूसरे से परिचित होने, शिक्षकों को अपने बच्चों के बारे में जानने का अवसर देना ज़रूरी था। इसके बाद भारत का सामान्य भूगोल, दिशाएँ और मौसम की जानकारी दी गई, साथ ही उन्हें भारत-यात्रा के लिए पासपोर्ट, वीज़ा आदि कागज़ात बनाने, एयरपोर्ट के अधिकारियों से सवाल-जवाब आदि करने के नमूने सिखाए गए। विभिन्न कक्षाओं के विद्यार्थी परस्पर परिचयात्मक बातचीत भी करने लगे। और यह सब हुआ भारतीय परम्पराओं का ध्यान रखते हुए। पहले सप्ताह में बच्चे नमस्कार, स्वागत है, अच्छा, फिर मिलेंगे, इत्यादि शिष्टाचारपूर्ण बातचीत करना सीख गए थे। उनकी दिलचस्पी न केवल हिंदी सीखने में बढ़ी, बल्कि वे त्योहार, समारोह, मेले आदि में जाने के लिए भी उत्सुक हुए। अमेरिका में जन्मे, अमेरिकी शैली में शिक्षा ग्रहण कर रहे भारतीय और ग़ैर-भारतीय मूल के बच्चों को हिंदी सिखाने और भारतीय परम्परा, रीति-रिवाज़ से जोड़ने के कार्य की नींव हमने डाल दी थी। अब अगली चुनौती थी उन्हें हिंदी बोलना, पढ़ना और लिखना सिखाने की। यह सब यूँ करना था कि वे हिंदी सीखते हुए ऊबे नहीं। भारत के नक्शे पर दिल्ली, जोधपुर, जैसलमेर, लेह आदि स्थान किस दिशा में हैं, अमेरिका से दिल्ली पहुँचने के बाद आगे का सफ़र कैसे तय करना चाहिए, यह सब विद्यार्थियों ने अपनी समझ और जानकारी के आधार पर तय किया। उनके लिए अपनी यात्रा योजना बनाना एक बात थी, उसे कक्षा के साथियों को बताना, वह भी हिंदी में, एक नई चुनौती थी। हमारे शिक्षकों की ज़िम्मेदारी भी यही थी, उन्हें हिंदी बोलने के लिए प्रेरित करें, अपनी बात हिंदी में वैसे ही कहने की कोशिश करें, जैसा कि सिखाया गया। इस कार्य

के लिए हर कक्षा में मुख्य शिक्षक की सहायता के लिए एक सहायक शिक्षक, एक स्वयंसेवक और एक तकनीकी सहायक तैनात किए गए, ताकि मुख्य शिक्षक सहायक शिक्षक के साथ मिलकर भाषा प्रयोग के नमूने बता सकें, उपयोगी वीडियो और चित्र दिखा सकें, ताकि शिक्षार्थी के पास उस पाठ को सीखने का न केवल उचित संदर्भ बन सके, वरन् वे अपने स्तर पर सोच सकें, कह सकें।

कार्यक्रम का दूसरा सप्ताह राजस्थान के जोधपुर, जैसलमेर शहरों का भ्रमण, वहाँ के दर्शनीय स्थल, खान-पान, पहनावा, त्योहार, समारोह और मेले की गतिविधियों की शिक्षा के प्रति समर्पित था। प्रतिदिन योग कक्षा के बाद शिक्षक बच्चों को 15 मिनट का अवकाश देते, ताकि वे कुछ खा पी सकें, वापस आने पर उन्हें उस दिन के पाठ से सम्बंधित वीडियो या चित्रों पर आधारित पावर पोंइट प्रस्तुति दिखाई जाती। 45 मिनट तक चलने वाले इस रोचक गतिविधि के बाद फिर 15 मिनट का अवकाश। बाद में पाठ में वर्णित जानकारी के आधार पर शिक्षक बच्चों के साथ वार्तालाप करते। पहले तो शिक्षक अपने सहायक के साथ बातचीत के नमूने प्रस्तुत करते, फिर बच्चों को आपस में बातचीत के लिए निर्देश देते। 45 मिनट की इस कक्षा के बाद 15 मिनट का पुनः अवकाश, जिसके बाद बच्चों के जोधपुर, जैसलमेर के सांस्कृतिक पहलुओं की जानकारी दी जाती। इस दौरान बच्चे लोक नृत्य देखते और वे उन्हें करने के लिए प्रेरित होते। दोपहर बारह बजे के बाद आधे घंटे का भोजन अवकाश होता, लेकिन विद्यार्थियों को अपनी कक्षा से लॉग-आउट करने की अनुमति नहीं थी। वे अपने ज़ूम क्लास में ही भोजन की थाली लाते और आपस में बातें करते हुए खाना खाते। हर कक्षा में सामूहिक भोजन किया जाता था। भोजन के बाद की कक्षा को अनौपचारिक रूप देने के लिए हमने निर्णय लिया कि उसमें कोई नई सूचना न दी जाए, वरन् बच्चों से कहा जाए कि उस दिन की जानकारी स्लाइड शो के माध्यम से प्रस्तुत करें। इसके लिए उन्हें कुछ ऑनलाइन संसाधन दिए गए, जिनमें 'बुक क्रीएटर' प्रमुख था। इस वेबसाइट की ख़ूबी यह थी कि विद्यार्थी जो भी सीख रहे हैं, उससे सम्बंधित चित्र और उनका हिंदी परिचय बोलकर रिकॉर्ड कर सकते हैं, जिसे 'बुक क्रीएटर' टंकित करता था। बच्चों को इस सुविधा का प्रयोग कर अपनी प्रस्तुति बनाने में बहुत मज़ा आया।

जब विद्यार्थियों को राजस्थान के लोक-नृत्यों की बुनियादी जानकारी हो गई, तब हमने उदयपुर के कलाकारों को ज़ूम के सहारे प्रस्तुति करने के लिए आमंत्रित किया। वास्तविक कलाकारों से रूबरू होना, उनका नृत्य देखना और उनसे प्रश्न पूछना, यह सब बच्चों को भारतीय संस्कृति के बहुत करीब ले जाने का अभिनव प्रयोग था। इन गतिविधियों से उनकी भाषा क्षमता में बढ़ोतरी हुई। हमारे विद्यार्थियों ने प्रीति और शीतल द्वारा किए गए घूमर और भवई नृत्य देखे। माथे पर पाँच घड़े रखकर उन्हें संतुलित करते हुए नृत्य करना, काँच के टुकड़ों पर नृत्य करना हमारे शिक्षार्थियों के लिए नए अनुभव थे। मज़े की बात यह थी कि वे कलाकार बच्चों के प्रश्नों का उत्तर देने के लिए वहाँ मौजूद थे। दो सप्ताह में इस प्रकार के चार कार्यक्रम आयोजित किए गए।

कार्यक्रम के 14वें दिन उदयपुर (राजस्थान) के कठपुतली कलाकार राजू भाट नन्हे और बड़े बच्चों की ज़ूम कक्षाओं में अपनी कठपुतलियों के साथ अवतरित हुए। उन्होंने कठपुतली नृत्य दिखाया, जिनमें साँप और सपेरा, बंगाल का जादूगर, अनारकली आदि कठपुतलियों के प्रदर्शन बच्चों को बहुत पसंद आए। बच्चों के प्रश्नों के उत्तर में राजू ने बताया कि वे अपनी कठपुतलियाँ लकड़ी और कपड़े के साथ बनाते हैं, उनकी पात्रता के अनुसार उनके नाम रखते हैं और उनके पहनावे

को स्थानीय लोगों के पहनावे की तरह तैयार करते हैं। राजू के लिए कठपुतली-कला पुश्तैनी है। उनके दादा-पर-दादा, राजा-महाराजाओं के दरबार में इस कला का प्रदर्शन करते थे। एक कलाकार के साथ रूबरू बात करना हमारे विद्यार्थियों के लिए नया अनुभव था। उनकी कक्षा में शिक्षकों ने उन्हें राजस्थान की लोक-कलाओं से परिचित करा दिया था, साथ ही कार्डबोर्ड कट-आउट देकर अपनी कठपुतलियाँ बनाने का टास्क भी दिया था। इसलिए बच्चे अपनी कठपुतलियाँ लेकर आए थे, जिन्हें उन्होंने राजू भाट को भी दिखाया। विद्यार्थियों को भारत के लोगों के साथ साक्षात्कार कराना उनकी भाषा शिक्षा का आवश्यक अंग है। यदि वे किसी भारतीय पेशेवर व्यक्ति से मिलें, तो और भी अच्छा! प्रीति, शीतल, राजू भाट से मिलने के बाद हमने मुंबई निवासी वरिष्ठ पत्रकार और चित्रकार सिद्धार्थ आर्य को ज़ूम कक्षा के ज़रिए बच्चों से मिलने के लिए आमंत्रित किया। सिद्धार्थ ने राजस्थान और लद्दाख के जन-जीवन से सम्बंधित अनेक रेखाचित्र और पेंटिंग बनाकर प्रस्तुत किए, जिनमें दोनों प्रदेशों के लोगों के खानपान, पोशाक, नृत्य-संगीत, जानवर, मौसम के चित्रण किए गए थे। हालाँकि विद्यार्थियों को सम्बंधित जानकारियाँ पहले से शिक्षकों ने दे दी थीं, सिद्धार्थ से बातें करना और पेंटिंग बनाने के बारे में प्रश्नोत्तर करना सबको अच्छा लगा। इस प्रकार हमने शिक्षार्थियों को न सिर्फ़ मूल संस्कृति, यानी भारत के दो प्रदेशों के भूगोल और संस्कृति से परिचित कराया, बल्कि वहाँ की वास्तविक ज़िंदगी से भी रूबरू कराया, जो कि स्टारटॉक का एक मौलिक सिद्धांत है। युवा हिंदी संस्थान द्वारा इस वर्ष आयोजित स्टारटॉक कार्यक्रम की सफलता के पीछे मुख्य कारण यह रहा कि हमने अमेरिकी विदेशी भाषा-शिक्षण परिषद् के नियमों और मानकों को आधार बनाकर अपने पाठ्यक्रम गढ़े, ऑनलाइन कक्षाओं में स्टारटॉक के मूल सिद्धांतों को अपनाते हुए शिक्षा दी और विद्यार्थियों को स्थानीय समस्याओं के साथ जोड़ा। ये स्थानीय समस्याएँ, जैसे कि पानी की कमी और अत्यधिक गर्मी या ठंड 'ग्लोबल वॉर्मिंग' की वैश्विक समस्या से जुड़ी हुई हैं। इक्कीसवीं सदी की पीढ़ी को वर्तमान समस्याओं के बारे में जानकारी प्रदान कर ही हम उन्हें विश्व नागरिक बना सकते हैं, जो बड़े होकर मानव-जाति के समक्ष उभरने वाली चुनौतियों का सामना कर सकेंगे। किसी भी भाषा की शिक्षा देते हुए हमें इन मुद्दों का ज़रूर ध्यान रखना चाहिए। विद्यार्थियों की रुचि के मुताबिक शिक्षा देने का परिणाम यह हुआ कि कार्यक्रम के अंतिम दिन उन्होंने अपनी भाषा प्रवीणता के अनेक सबूत पेश किए, साथ ही भावुक शब्दों में कहा कि उन्हें विश्वास नहीं हो रहा कि कार्यक्रम समाप्त हो गया, वे स्टारटॉक की शिक्षा-प्रणाली में आगे भी पढ़ना चाहते थे। सचमुच युवा हिंदी संस्थान के हिंदी कार्यक्रम आगे भी चलते रहेंगे। उन सिद्धांतों का पालन करते हुए, जिन्हें हमने परखा है और जिनका उपयोग किया है, वे हमारी कसौटी पर खरे उतरे हैं।

aojha2008@gmail.com

अथ घूरेलाल कथा

- श्री महेश शर्मा
राजस्थान, भारत

जैसे ही चुनावों की घोषणा हुई, वैसे ही घूरेलाल ने भी घोषणा कर दी कि अब उसके दिन फिरने वाले हैं। और यह कोरी घोषणा नहीं, बल्कि एक किस्म की भविष्यवाणी थी। उसने फ़ौरन अपने बस्तीवालों के समक्ष इसकी बाकायदा घोषणा करने की तैयारी प्रारम्भ कर दी।

जैसे हर पाँच साल में जनता को यह बताया जाता है कि अब उसके दिन फिरने वाले हैं और जैसे जनता को भी उसी समय यह आभास होने लगता है कि उसके दिन अब तक जैसे बीत रहे थे, वैसे न रहेंगे, बल्कि वे 'फिर' जाएँगे और यह आभास होते ही जनता जिस प्रकार खुश हो जाती है, ठीक उसी प्रकार घूरेलाल की बस्ती के लोग भी खुश हो गए थे।

लेकिन, खुशी के अतिरेक में जनता यह भूल जाती है कि इस बात में कुछ आंतरिक जोखिम छिपे हुए हैं। यानि हिडन रिस्क फ़ेक्टर्स! जैसे हो सकता है कि दिन 'फिरने' से तात्पर्य यह रहा हो कि जनता के दिन 'फिर' से वैसे ही रहेंगे, जैसे अभी हैं अथवा यह भी हो सकता है कि दिन कुछ समय के लिए फिरें, घूमे और इस प्रकार घूम-फिरकर पुनः यथास्थिति में आ जाएँ।

हालाँकि इस जोखिम की काट-स्वरूप यह तर्क भी दिया जा सकता है कि दिन फिरने का तात्पर्य यह है कि दिन अब उलट जाएँगे, जैसे हर सिक्के के दो पहलू होते हैं - हैड व टेल। हैड के उलट जाने पर टेल आता है। ठीक वैसे ही जनता के दिनों का सिर, अब उलटकर दुम हो जाएगा या दुम उलटकर सिर।

लेकिन, अब इसमें भी एक रिस्क फ़ेक्टर यह है कि जनता का यह सिक्का बहुत पुराना है और इसे इतनी बार उछाला या चलाया गया है कि यह अब बुरी तरह घिस चुका है। अतः इसके दोनों पहलू अब एक से ही दिखते हैं। इस हिसाब से यह ज़िम्मेदारी अब स्वयं जनता पर ही आती है कि वह गौर से देखे कि उसके दिन का सिक्का चित्त हुआ है या पट्ट।

खैर, चुनाव की घोषणाओं के साथ ही कुछ चिंतक और बुद्धिजीवी टाइप के लोग इसी तरह की निरर्थक, किंचित व्यर्थ और समयकाटू चर्चाओं में लिप्त हो गए। वे लोग इस चिंतन में अपने दिमाग का प्रण-प्राण से इस्तेमाल कर रहे थे कि 'जनता के दिन फिरने' का सही-सही अर्थ क्या है? उनका यह चिंतन जल्दी ही चिंता में बदल गया।

दरअसल, यह चिंता उन्हें स्वयं अपने अस्तित्व को लेकर थी कि यदि जनता के दिन सचमुच फिर गए, तो फिर उनके दिन कैसे कट पाएँगे? यदि जनता के सारे दुख दूर हो जाएँगे और वह भविष्य की तमाम चिंताओं से मुक्त हो जाएगी, तो फिर चिंतन करने के लिए भला क्या बाकी बचा रह जाएगा? और इस प्रकार हम चिंतकों और बुद्धिजीवियों की इस पृथ्वी पर क्या उपादेयता रह जाएगी?

कुछ पुश्तैनी जुआरियों और सट्टेबाज़ों ने भी जनता के दिन फिरने को लेकर आस लगाए। लेकिन उन्होंने इसपर चिंतन-मनन करने के बजाय सट्टा लगाना ही उचित समझा और इसके लिए उन्होंने बाकायदा तीन बार सिक्का उछाला।

पहली बार जब सिक्के को उछाला गया, तब यह वाकई ऊपर उछला, फिर नीचे भी आया, लेकिन किसी पहलू पर न गिरकर सीधा खड़ा हो गया। न चित्त हुआ, न पट्ट्।

खीझकर दूसरी दफ़ा सिक्का इतनी ज़ोर से उछाला गया कि वह नीचे ही नहीं गिरा। हवा में कहीं गायब हो गया या गुरुत्वाकर्षण सीमा से परे चला गया या फिर किसी छज्जे, अटारी अथवा पेड़ की ऊँची फुनगी में कहीं अटक गया। बाद में इन सभी संभावनाओं पर अलग से एक नया सट्टा लगाया गया।

तीसरी बार पूरी सावधानी बरतते हुए सिक्के को उछालने के बजाय सड़क पर लुढ़का दिया गया। सिक्का बहुत दूर तक लुढ़कता रहा, फिर डगमगाता हुआ एक गंदी नाली में जा गिरा, जहाँ से उसे उठाकर देखना किसी को भी गँवारा न हुआ। हाँ, उस गंदी नाली में बहते चले जा रहे उस सिक्के का पीछा ज़रूर किया गया, इस उम्मीद में कि शायद इसके हैड अथवा टेल की जानकारी मिल जाए। लेकिन वह सिक्का उस नाली की अथाह गंदगी में गोते लगाता हुआ एक विराट गंदे नाले में विलुप्त होकर मोक्ष को प्राप्त हो गया।

जिस प्रकार सभी नदियाँ अंततः समुद्र में जा मिलती हैं, उसी प्रकार शहर की सभी गंदी नालियाँ इस विराट नाले में ही गिरती हैं। इसी विराट गंदे नाले पर घूरेलाल की बस्ती है। यह बस्ती शहर में मौजूद अन्य सभी बस्तियों की ही तरह है। सभी बस्तियाँ विराट गंदे नालों पर बनी व बसी हुई हैं। दरअसल, ये विराट गंदे नाले बस्ती और शहर के मध्य एक अघोषित विभाजक रेखा की तरह हैं।

इन सभी बस्तियों की एक प्रमुख विशेषता यह है कि ये सब एक-दूसरे से अनजान हैं। एक अन्य प्रमुख विशेषता यह भी है कि ये सभी बस्तियाँ अपने शहर से भी अनजान हैं और शहर भी इन बस्तियों के अस्तित्व से अनभिज्ञ है।

वैसे ये सभी बस्तियाँ अपने भौतिक स्वरूप व आचरण में एक जैसी ही हैं। जैसे सभी शहर प्राय: एक ही जैसे होते हैं। ये बस्तियाँ एक ही तरह से सोचती हैं, जैसे सभी शहर एक ही तरह से सोचते हैं।

लेकिन एकमात्र इस 'एक ही तरह से सोचने' वाली समानता को छोड़ दें, तो शहरों और इनमें बसी इन बस्तियों में बहुत अंतर है। जैसे, यदि आप किसी बस्ती में रहते हैं और भूलवश या दुर्घटनावश या फिर किसी भी परिस्थितिवश अथवा बिना किसी कारणवश यूँ ही भटकते हुए आप किसी दूसरी बस्ती में जा पहुँचे, तो आपको यह बस्ती अजनबी नहीं लगेगी। बस्ती को भी आप अजनबी नहीं लगेंगे। जबकि शहरों के साथ ऐसा नहीं है।

हालाँकि 'एक ही तरह से सोचने' वाली समानता में भी एक बिन्द पर विराट विरोधाभास दिखाई पड़ता है, वह यह कि बस्ती का ऐसा सोचना है कि यह विराट गंदा नाला ही उसका परम सत्य है तथा उसके पार किसी सत्ता का कोई अस्तित्व नहीं। जबकि शहर का सोचना है कि चहूँ ओर उसी की सत्ता है और इस सत्ता में किसी विराट गंदे नाले का कोई अस्तित्व नहीं है। और यदि है, तो इसे जल्द-से-जल्द अस्तित्वविहीन हो जाना चाहिए अथवा कर दिया जाना चाहिए।

दरअसल, शहर भी चिंतकों-बुद्धिजीवियों की तरह सुदूर ग्रहों पर जीवन की संभावना में तो यकीन रखता है, लेकिन किसी विराट गंदे नाले पर जीवन का कोई चिह्न पाया जाता होगा, इसे मात्र कपोल-कल्पना अथवा किंवदंती मानता है।

लेकिन महज़ शहर के मानने या न मानने से क्या होता है? सच तो आखिर सच ही होता है। भले वह पंक्ति में सबसे आखिर में खड़ा रहता है और जब तक उसका नंबर आता है, तब तक उसकी आवश्यकता नहीं रह जाती है।

जैसे घूरेलाल भी इस विराट ब्रह्माण्ड में विराट गंदे नालों की कतार में खड़ी एक बस्ती के किसी कोने में खड़ा अपनी बारी आने का इंतज़ार करता चला जा रहा है। अब यह सच है अथवा मिथ्या, इसे अपनी-अपनी सुविधानुसार तय किया जा सकता

है।

घूरेलाल पहले किस बस्ती में रहता था और अब किस बस्ती में रह रहा है, यह उसे ठीक-ठीक मालूम नहीं है। बस वह इतना जानता है कि वह इस शहर की किसी बस्ती में पैदा हुआ था, किसी बस्ती में पला-बढ़ा था और अब किसी बस्ती में जीवन-यापन कर रहा है।

घूरेलाल ने अपने नाम के पीछे 'लाल' स्वयं लगाया था अन्यथा उसका नाम सिर्फ़ 'घूरे' ही था। बस्ती और बस्ती के बाहर भी उसे इसी नाम से जाना जाता था। 'घूरेलाल' के नाम से केवल वह स्वयं ही खुद को जानता था। दरअसल, वही एकमात्र व्यक्ति था, अपनी बस्ती का, जो सातवें दर्जे तक की पढ़ाई कर चुका था। वह भी पूरे तीन-तीन बार। तीसरी बार भी परीक्षा में असफल रहने के बाद उसने तय किया कि दरअसल, वह और स्कूली शिक्षा एक-दूसरे के लिए नहीं बने हैं।

उसके बाद घूरे ने जीवन की असल पाठशाला में प्रवेश लिया और पग-पग पर उपस्थित नित नई परीक्षाओं से जूझने लगा। यह देखकर उसके ज्ञान चक्षु खुल गए थे कि गणित, विज्ञान, इतिहास, भूगोल जैसे विषय कितने निरर्थक हैं। असल विषय है किसी भी परिस्थिति में ज़िंदा रहते चले जाने का गुर। और घूरे ने वे सभी गुर सीखे और अभी भी सीख रहा है। फलस्वरूप अभी भी ज़िंदा रहता चला आ रहा है।

कचरा बीनना, घर-घर जाकर रद्दी सामान उठाना, रिक्शा खींचना, बोझा ढोना, ट्रेनों-बसों में चूरन-चटनी-चने-मूँगफली बेचना, भीख माँगना, जेब काटना, छीना-झपटी, मारपीट, नशा, जुआ, सट्टा वगैरह-वगैरह, जैसी सारी पायदानों को सफलतापूर्वक पार कर चुकने के बाद, घूरे ने अब कुछ नया गुर सीखने की ठानी है।

और एक दिन वाकई उसने यह गुर भी पा लिया। दरअसल, सातवीं फ़ेल घूरे जब ज्ञान व अज्ञान के मध्य कहीं फँसा हुआ इस धरती पर अपने होने के सही-सही अर्थ को खोज रहा था, तो एक दिन अचानक बस्ती के बीचों-बीच अनेक वर्षों से अविचल खड़े विशालकाय बरगद के पेड़ के नीचे बने चबूतरे पर कुछ अप्रत्याशित-सा घटा। इस जगह का इस्तेमाल अकसर नशा करने, जुआ खेलने, नशे व जुए के मेल से उत्पन्न विवाद का निपटारा करने, निपटारा न कर पाने की स्थिति में झगड़ा करने तथा झगड़े के उपरांत भू-लुंठित होकर विश्राम करने के लिए किया जाता था।

नशा करके चित्त पड़ा हुआ घूरे अपनी अधमूँदीं अथवा अधखुलीं आँखों से बरगद के उस विशाल वृक्ष को निहारता हुआ अपने लगभग सुप्त हो चुके मस्तिष्क से यह सोच रहा था कि जीवन में स्थायित्व किस प्रकार प्राप्त किया जा सकता है? ठीक किसी बरगद सरीखा स्थायित्व? आखिर वह भला कब तक यूँ ही जीवन की पाठशाला में रोज़-रोज़ नई परीक्षाएँ देता हुआ संघर्ष करता रहेगा?

घूरे ने यह प्रश्न अपने मस्तिष्क तक ही सीमित नहीं रहने दिया, बल्कि उसे उच्चार दिया। अर्थात् स्वयं बरगद से ही पूछ लिया? जवाब में बरगद ने अपने पत्तों को हिलाया। पहले थोड़ा धीमे फिर तेज़-तेज़। उसके बाद उसकी शाखाएँ भी हिल उठीं। ऐसा लगा मानो समूचा बरगद झूम रहा हो।

घूरे को पहले तो लगा कि यह वृक्ष प्रसन्न होकर उसे कोई वरदान देना चाहता है, लेकिन फिर उसे एक बड़ा-सा हेलिकॉप्टर बरगद के ऊपर मँडराता हुआ दिखाई दिया। इस हेलिकॉप्टर को समूची बस्ती ने देखा। हेलिकॉप्टर ने भी बस्ती को देखा। हेलिकॉप्टर में विराजमान नेताजी ने भी बस्तीवालों को देखा और अपने सचिव से गिनती करने को कहा। सचिव ने आसमान को ताक रहे उन चेहरों को गिना और हिसाब लगाकर नेताजी को बताया कि पिछले चुनाव में आप जितने वोटों से हारे थे, यह संख्या उससे अधिक ही है। हेलिकॉप्टर झट

बस्ती में उतर आया और उससे भी फुर्ती से नेताजी बरगद वाले चबूतरे पर चढ़ गए।

सर्वप्रथम नेताजी ने अफ़सोस ज़ाहिर करते हुए कहा कि उन्हें यकीन नहीं आ रहा है कि उनके शहर में इस तरह की एक ऐसी बस्ती आज भी मौजूद है। फिर उन्होंने खेद प्रकट करते हुए आगे कहा कि आज हम चाँद पर पानी ढूँढ रहे हैं, किन्तु हमें यह पता ही नहीं इस विराट गंदे नाले के पानी पर कितने ही चाँद किसी फ़्यूज़ बल्ब-सा जीवन जी रहे हैं। और फिर इसके बाद नेताजी ने अपने विरोधियों को तथा वर्तमान में सत्तासीन सरकार को कोसना शुरू कर दिया।

इस अप्रत्याशित घटना के घटने से पहले, बस्तीवालों को कभी यह एहसास ही नहीं हुआ था कि उनका जीवन वास्तव में कितने कष्टों से घिरा हुआ है?

आज नेताजी ने उन्हें बताया कि उनके जीवन में बरगद जैसी विशालकाय समस्याएँ हैं, जो बहुत गहरे तक अपनी जड़ें जमाए हुए हैं और इन समस्याओं को जड़ समेत उखाड़ फेंकने के लिए ही वे सीधा आसमान से यहाँ उतरे हैं। यद्यपि उन्होंने 'उतरे' के स्थान पर 'अवतरित' बोला था, किन्तु बस्तीवाले इतने कठिन शब्द को सुनने-समझने के आदी नहीं थे। अतः उन्होंने 'अवतरित' को 'उतरना' ही सुना और यही समझा भी।

घंटे भर तक भाषण देने के पश्चात् नेताजी ने भारी मन से उस बस्ती से विदा लेते हुए कहा कि "आप अपने ही बीच में से किसी पढ़े-लिखे समझदार आदमी को अपना प्रतिनिधि चुन लें, जो रोज़ मुझे आपकी रोज़मर्रा की समस्याओं से अवगत करवाता रहेगा।"

अब इस बिन्द पर घूरे का सातवीं फ़ेल होना अचानक से उपयोगी साबित हो गया। उसे किसी तरह होश में लाया गया और जब सारा माजरा उसकी समझ में आया, तब वह फ़ौरन अपने कपड़े झाड़कर उठ खड़ा हुआ।

सर्वप्रथम घूरे ने फ़ौरन अपने नाम के पीछे 'लाल' लगाया, क्योंकि नेताजी के नाम में भी कहीं-न-कहीं लाल लगा हुआ था। उनके सचिव के नाम में भी यह शब्द था। सचिव के सहायक और सहायक के ड्राइवर के नाम में भी यही समानता थी।

इस नामकरण संस्कार के फ़ौरन बाद घूरेलाल बस्तीवालों के लिए सचमुच 'गुदड़ी का लाल' साबित होने की दिशा में उड़ चला।

अब, जहाँ बस्ती के लोगों का दिन रोज़ी-रोटी के जुगाड़ में बीत जाया करता था और रात-दिन की थकान दूर करके अगले दिन के लिए फिर से ताज़ा दम बटोरने में लग जाते, वहीं घूरेलाल के तमाम दिन-रात एक ऐसे दुर्व्यसन में खर्च होने लगे, जिसे ज्ञानी लोग राजनीति कहकर दूर से ही प्रणाम कर लिया करते थे। कभी पास न फटकते थे।

घूरेलाल अब रोज़ पूरी बस्ती में घूम-घूमकर बस्तीवालों की रोज़मर्रा की समस्याओं के आँकड़े इकट्ठा करने लगा और रोज़ शहर जाकर उन्हें नेताजी तक पहुँचाने लगा। हालाँकि कोई बीस दिनों तक तो वह नेताजी के सचिव के सहायक के ड्राइवर तक ही पहुँच पाया था। फिर एक दिन सहायक तक पहुँचा। उसके बाद सचिव तथा महीने भर बाद नेताजी के दर्शन-लाभ प्राप्त कर सका।

घूरेलाल ने जब बड़ी ही खुशी के साथ नेताजी को यह बताया कि दरअसल, बस्तीवालों की कोई समस्या है ही नहीं, वे जैसे भी हैं अपने हाल में बहुत ही मस्त हैं, तो नेताजी को घोर निराशा हुई। इसे देख घूरेलाल को भी निराशा हुई, जबकि उसे आशा थी कि नेताजी इस खबर से खुश होंगे तथा ईनाम स्वरूप उसे अपनी शरण में ले लेंगे।

दरअसल, घूरेलाल को यह भ्रम हो गया था कि नेताजी ने बस्ती में आकर जो दुख व अफ़सोस प्रकट किया था वह वास्तव में सचमुच का दुख तथा सचमुच का अफ़सोस था। घूरेलाल अभी इस बात

से सर्वथा अनभिज्ञ था कि 'होने' तथा 'प्रकट करने' के मध्य एक बहुत विराट विभाजक रेखा है, जैसे शहर और बस्ती को एक-दूसरे से अलग करने वाला वह विराट गंदा नाला।

नेताजी के साथ उपस्थित चिंतकों व बुद्धिजीवियों ने घूरेलाल को समझाया कि मनुष्य के जीवन में समस्याएँ अवश्य होनी चाहिए, अन्यथा मनुष्य कर्महीन होता चला जाएगा। हमेशा सुखपूर्वक जीना भी कोई जीना है भला? ऐसा जीवन तो पशु समान है। अतः हमारे जीवन में निरंतर समस्याएँ चलती रहनी चाहिए। संघर्ष में ही असली सुंदरता है।

फिर नेताजी ने घूरेलाल को बताया कि "देखो भाई, यह सरकार बहुत निर्दयी है। यह तुम बस्तीवालों का समूल नाश कर देना चाहती है।"

फिर नेताजी के सचिव ने घूरेलाल को टी.वी. पर चल रही एक खबर दिखाते हुए कहा "ये लोग तुम्हारी बस्ती को बड़े-बड़े बिल्डर्स और कन्स्ट्रकशन कंपनीज़ के हाथों बेच देना चाहते हैं।"

इस पर नेताजी के सचिव का सहायक बड़बड़ाया "यह सरकार बनी ही बिल्डर्स के पैसों से है।"

इस पर चिंतकों व बुद्धिजीवियों ने नेताजी को देखा, नेताजी ने सचिव को घूरा और सचिव ने सहायक को अपनी आँखें दिखाईं। यद्यपि ये लोग ऐसा न भी करते, तो भी घूरेलाल को कुछ भी समझ में नहीं आने वाला था। उसे बस एक ही बात समझ में आई कि कोई-न-कोई समस्या ज़रूर होनी चाहिए जीवन में, अन्यथा जीवन में स्थायित्व आना नामुमकिन है। उसके बाद जब शाम को, कुछ विशिष्ट घरेलू पेय पदार्थों के साथ, दिन भर की थकान उतार रहे नेताजी के सचिव के सहायक के ड्राइवर ने घूरेलाल को एक राज़ की बात बताई, तो उसकी आँखें पहले तो खुली-की-खुली रह गईं। फिर आनंद के अतिरेक से मूँदने लगीं।

ड्राइवर बोला "भैयये, अपने नेताजी भी तुम्हारी तरह एक बस्ती में ही पैदा हुए हैं और तुम तो फिर भी सातवीं फ़ेल हो। पर नेताजी ने तो कभी पाठशाला का मुँह तक नहीं देखा।"

आनंद के अतिरेक से मुँदीं आँखों से जब घूरेलाल ने ऊपर देखा, तो उसे विराट आसमान में एक हेलिकॉप्टर मँडराता नज़र आया, जिसमें उसने स्वयं को विराजमान पाया।

अगले ही दिन चुनावों की घोषणा कर दी गई और घूरेलाल सीधा अपनी बस्ती की ओर भागा। बरगद वाले चबूतरे पर खड़े घूरेलाल ने अपने सिर को झटका और ठीक नेताजी जैसे हाव-भाव का सफल प्रदर्शन करते हुए कहा "बस्तीवालो, जैसा कि आप सबको विदित ही है कि देश में अब जल्दी ही चुनाव होने वाला है एवं हम सबको इसमें अपनी सक्रिय भागीदारी निभाकर अपने नागरिक होने के कर्तव्यों का निर्वहन करना है।"

बस्तीवाले बहुत ही हर्ष के साथ घूरेलाल का मुखमंडल देखते रहे। उन्हें कुछ भी समझ में नहीं आया था। हालाँकि 'विदित', 'सक्रिय' 'नागरिक', 'निर्वहन' इत्यादि शब्दों का अर्थ स्वयं घूरेलाल भी ठीक-ठीक नहीं बता सकता था। किन्तु उसने ये शब्द नेताजी के मुँह से इतनी बार सुने थे कि उसे पक्का यकीन हो गया था कि यह बहुत ही ज़रूरी शब्द होंगे और इन्हीं से उसके जीवन में स्थायित्व आ सकेगा।

कुछ भी न समझ में आने के बावजूद बस्तीवालों ने घूरेलाल को न तो टोका न ही उसकी बातों का बुरा माना और न ही दिल पर लिया। उनका मानना था कि थोड़ा पढ़-लिख जाने पर आदमी में इस तरह के ऐब आ ही जाते हैं और यूँ भी जब कोई आदमी आपसे अलग हटकर तथा किसी ऊँचे चबूतरे पर खड़ा होकर माइक व लाउडस्पीकर के माध्यम से कुछ कहना चाहता है, तो उसकी भाषा पराई व अटपटी हो ही जाती है। यही परायापन, यही

अटपटापन शायद राजनीति या नेतागिरी का एक आवश्यक अंग है। ऐसा विचार करके बस्तीवालों ने घूरेलाल को सुनना जारी रखा।

"अब यह सक्रिय भागीदारी किस तरह दी जा सकती है?" घूरेलाल ने अपनी आवाज़ आवश्यकता से अधिक ऊँची करते हुए हवा में एक सवाल उछाला, जिसे किसी ने भी नहीं पकड़ा। घूरे ने इतना कठिन प्रश्न पूछा ही इस उद्देश्य से था कि यह सबके ऊपर से निकल जाए और स्वयं घूरेलाल के अतिरिक्त कोई भी इसका जवाब न दे पाए।

तो घूरे ने ही अपने अगले वाक्य में इसका जवाब दिया "लोकतंत्र के इस यज्ञ में हम अपनी आहुति दे सकते हैं, अपने प्रतिनिधि को सहयोग करके, उसका सहारा बनकर, उसके संदेशवाहक बनकर, उसके श्रोता बनकर"

जो बात घूरेलाल अपनी लच्छेदार भाषा से न समझा पाया, उसे बस्तीवालों ने अपनी सहज बुद्धि से आसानी से समझ लिया था। लोकतंत्र के यज्ञ में आहुति देने से तात्पर्य साधारणतः यह होता है कि जनता अपना अमूल्य वोट दे। हो सकता है एकमात्र यही अर्थ आम जनता के लिए स्थापित किया गया हो कि वह महज़ वोट देकर चली जाए। फिर कभी लौटकर न आए या न आने पाए। ठीक ऐसे जैसे कोई वीतरागी अपना सर्वस्व लुटाकर मोह-माया से मुक्त हो सन्यासी हो जाता है।

किन्तु चिंतकों और बुद्धिजीवियों ने इसके आगे कुछ और भी अर्थ सुझा रखे थे, जैसे वोट देने के उपरांत लगातार अपने प्रतिनिधियों की हरकतों पर नज़र रखना, उनकी नीतियों पर शक करते रहना, उनसे सदैव सवाल पूछते रहना वगैरह-वगैरह। लेकिन साधारण जनता प्राय: इन चिंतकों और बुद्धिजीवियों के झाँसे में नहीं आती थी और महज़ वोट देने के बाद भूल जाती थी, जैसे महापुरुष लोग उपकार करके भूल जाया करते हैं। और यही आदर्श रीति भी है। वैसे यह बात अलग है कि जनता अपनी रोज़ी-रोटी के जुगाड़ में सदैव इतनी निढाल रहती थी कि वोट देने के बाद भूल जाना ही उसे उचित जान पड़ता था। चिंतन और विचार उसे दूर की कौड़ी लगते थे।

तो घूरे की बात को बीच में ही काटते हुए बस्तीवालों ने पूछा "लेकिन हम भला क्या और कैसी आहुति दें? हमने तो आज तक किसी को वोट भी नहीं दिया! दे भी कैसे सकते हैं भला?"

घूरेलाल को इस तरह अपनी बात को काटा जाना बुरा लगा। यूँ भी हर चीज़ का एक कायदा होता है। इस तरह से थोड़े ही कूदकर सीधे मुद्दे पर आया जाता है! ऐसे तो जीवन में भला क्या रस बाकी रह जाएगा। यदि हर कोई बात को पूरा सुने बगैर सिर्फ़ उसके मर्म को ही जानने में दिलचस्पी दिखाएगा, फिर तो चल ली नेतागिरी! और यूँ भी बात का मर्म खुद घूरेलाल को भी कहाँ पता था।

तो घूरेलाल ने बस्तीवालों के सवाल को नज़रअंदाज़ करते हुए अपना भाषण पूरा किया। "देखिए हम सबको लगता है कि बात सिर्फ़ वोट देने भर की है। लेकिन नहीं, वोट तो बस एक तरह का प्रतीक भर है। असली चीज़ है, आपका पूर्ण सहयोग। अन्यथा वोट का क्या है, कोई दे या न दे, फिर भी सरकारें तो बनती ही हैं, काम तो होते ही रहते हैं।"

बस्तीवाले अब किंचित निराश हुए और थोड़े क्रोधित भी कि जब हमारे वोट के बिना भी सारे काम हो ही जाते हैं सरकार के, तो फिर यह घूरेलाल हमारा वक्त क्यों बर्बाद कर रहा है? वे लोग घूरे को कोसते हुए अपने-अपने काम पर जाने लगे। अब घूरेलाल को चबूतरानुमा मंच, माइक तथा लाउडस्पीकर का मोह छोड़कर बस्तीवालों के बीच उतरना पड़ा। यह बात सच थी कि बस्तीवालों ने शायद ही कभी वोट दिया हो। दरअसल, शहर में गंदे नालों के पार बनी जितनी भी बस्तियाँ थीं, उन सभी का सच यही था। उन्हें यह पता ही नहीं लग

पाता था कि कब चुनाव आए और चले गए। और वोट कहाँ डालना है, किसे डालना है और सबसे विकट प्रश्न कि "आखिर क्यों डालना है?" ऐसा करने पर उनके जीवन में भला क्या परिवर्तन होने वाला है। उनका सिक्का चाहे चित्त हो या पट्ट या खड़ा भी रह जाए, तो भी कुछ नहीं बदलने वाला।

इस 'क्यों' का जवाब घूरेलाल ने बहुत ही गंभीर होकर दिया। उसने कहा "दरअसल, यह सरकार हमारी शत्रु बन चुकी है। यह हमारी बस्ती को बिल्डरों को सौंप देना चाहती है। फिर यहाँ बुल्डोज़र चलेगा और ऊँची-ऊँची इमारतें बनेंगी, हम बेघर और बेसहारा हो जाएँगे।" यह बात घूरेलाल ने भरसक भावुक होते हुए कही थी, किन्तु इससे बस्तीवाले भ्रमित हो गए कि घूरेलाल की भावुकता असली है या फिर उसके द्वारा कही गई यह बात? हालाँकि बस्ती उजाड़ देने वाली बात पर कुछ खुसर-फुसर तो हुई, लेकिन फिर शीघ्र ही बस्तीवालों को याद आया कि रात काफ़ी हो गई है, सुबह काम पर भी जाना है। अतः अब चलकर सोया जाए और वे घूरेलाल को बरगद, चबूतरा, माइक तथा लाउडस्पीकर के साथ अकेला छोड़कर चले गए।

लेकिन घूरेलाल ने हार नहीं मानी। कई दिनों की कड़ी मेहनत-मशक्कत के बाद वह आखिरकार बस्तीवालों को यह समझाने में कामयाब रहा कि वोट देने जैसी अति साधारण क्रियाओं के अतिरिक्त भी कुछ ऐसे असाधारण कर्तव्य हैं, जिनका पालन करके इस चुनावी महायज्ञ में सच्ची आहुति दी जा सकती है। जैसे हमेशा नेताजी के इर्द-गिर्द भारी-से-भारी संख्या में उपस्थित रहना और इस प्रकार शत्रुओं को हतोत्साहित करना। नेताजी जहाँ-जहाँ भी जाएँ, हमेशा उनकी छाया बनकर रहना। उनके लिए नारे लगाना, उनकी पार्टी के झंडे को ऊँचा उठाए रखना, पार्टी के चिह्न वाले टोपी-बिल्ले-छल्ले-टी-शर्ट-पजामे-मुखौटे इत्यादि पहने रहना।

बस्तीवालों ने बहुत ही ऊबे हुए ढंग से अपना घिसा-पिटा सवाल दोहराया "हम यह सब काम करेंगे, तो फिर काम कब करेंगे?" यानि बस्तीवाले जो भी गैर-ज़रूरी काम किया करते थे रोज़, अर्थात् मज़दूरी करना, रिक्शा चलाना, कुलीगीरी इत्यादि-इत्यादि।

इस पर घूरेलाल ने हूबहू नेताजी के ही अंदाज़ में कहा "निश्चित रूप से इस महायज्ञ को सफल बनाने के लिए हम सबको यह बलिदान देना ही होगा। लेकिन इसका प्रतिफल भी तुरंत मिलेगा। प्रत्येक आहुतिदाता को प्रतिदिन खाने का एक बंडल व एक सौ पचास रुपया दिया जाएगा।" बस्तीवालों में खास उत्साह पैदा नहीं हुआ। तब घूरेलाल ने ऊँची आवाज़ में 'एक सौ पचास' रुपये को 'डेढ़ सौ' रुपये कहा और 'खाने के बंडल' को 'नाश्ते का पैकेट' कहा, तो कुछ लोगों के चेहरों पर दबी-दबी-सी रौनक दिखाई देने लगी।

दरअसल, बस्तीवाले रोज़ सुबह बासी रोटी अथवा भात को नमक के साथ खाकर व ताज़ा बनी रोटी को एक बंडल में बाँधकर काम पर निकल जाया करते थे। अतः उनके लिए खाने के बंडल का मतलब था; किसी पुराने अखबार में लिपटी सूखकर भूसा हो चुकी रोटियाँ, जिन्हें अचार, प्याज़ या नमक-मिर्च वगैरह के साथ जल्दी-जल्दी खा लिया जाए और ऊपर से खूब सारा पानी पी लिया जाए। जबकि 'नाश्ता' या 'नाश्ते का पैकेट' उनके लिए बहुत लुभावना शब्द था।

इसलिए जब घूरेलाल ने अपने बौद्धिक चातुर्य का सही समय पर यथा-शक्ति प्रयोग करते हुए 'नाश्ते' का ज़िक्र किया, तो बस्तीवालों की आँखों के सामने गरमा-गरम पोहा-जलेबी, सुवासित कचौड़ियाँ, पूरी-भाजी, मिठाई, समोसा वगैरह-वगैरह तैरने लगे। कुछ लोगों ने तो अपनी आँखें बंद करके ज़ोर-ज़ोर से सूँघने का प्रयास किया और उनमें से ज़्यादातर लोग उन भोज्य-पदार्थों की

सुगंध को सही-सही महसूस कर लेने में कामयाब भी रहे। उस सुगंध को उन्होंने अपने फेफड़ों में भर लिया और वहीं कैद कर लिया। कइयों ने अपनी लार ग्रंथियों को विलक्षण रूप से सक्रिय होते हुए पाया।

घूरेलाल की लार ग्रंथि भी प्रबल रूप से सक्रिय हो गई और अपने वेग को रोक न पाई। घूरेलाल फ़ौरन नेताजी को यह खुशखबरी देने के लिए भागा।

नेताजी ने भी अपनी लार ग्रंथियों पर भरसक लगाम लगाते हुए घूरेलाल को समझाया कि “देखो भाई, चुनाव लड़ना किसी तनी हुई रस्सी पर चलने सरीखा काम है, ज़रा-सा चूके और धराशायी! यह शतरंज की बाज़ी जैसा भी है, दुश्मन की हर चाल पर न केवल नज़र रखनी पड़ती है, बल्कि उसकी काट तथा उस काट के जवाब में दुश्मन ने जो काट पहले से सोच रखी है, उसकी भी दोहरी काट को आगे से सोचना पड़ता है। अन्यथा मात खाने, मुँह की खाने और मार खाने तक की संभावना प्रबल हो जाती है। अर्थात् चुनाव लड़ना एक तरह से मार-काट मचाने जैसा काम है।

घूरेलाल को यह भी समझ आया था कि जनता की स्मृति बहुत क्षीण होती है। इसके फ़ायदे व नुकसान दोनों हैं। लेकिन नुकसान चुनावी बिगुल बजने से लेकर चुनाव सम्पन्न होने तक ही है, उसके बाद यह क्षीण स्मृति सालों-साल तक फ़ायदा ही फ़ायदा देती है।

अतः घूरेलाल का काम यह भी देखना था कि बस्तीवालों की स्मृति में चुनाव सम्पन्न होने तक नेताजी ही नेताजी रहें, भले ही बाद में बस्तीवाले अपनी सुविधानुसार नेताजी को भूलना चाहें, तो भूल जाएँ। उन्हें यह भी भूल सकने की पूरी छूट होगी कि कभी चुनाव हुआ भी था अथवा नहीं? यदि हुआ था, तो उनका प्रतिनिधि कौन था? क्या वह जीता था अथवा हारा था? यदि जीत गया था, तो फिर अब वह कहाँ है? उसका नाम-पता-ठिकाना कुछ याद है? उसने क्या-क्या वादे किए थे? कौन-सी घोषणाएँ की थीं? वगैरह-वगैरह।

यूँ भी बस्तीवाले स्वयं इतनी ढेर सारी चीज़ों को याद रखना नहीं चाहते थे। बल्कि उन्हें तो भूलने में सुख मिलता था। और भूल जाना ही दरअसल उनके रोज़मर्रा के जीवन का आधार था। जैसे साइकिल-रिक्शा खींचने वाले कड़ी धूप और ट्रैफ़िक हवलदार के डंडे की चोट को लगातार भूलते रहते थे। बोझा ढोने वाले मालिक की गालियाँ और पीठ के दर्द को रोज़ पी जाया करते थे।

तो बस्तीवालों की स्मृति एकदम चमकदार बनी रहे, उसे ज़ंग न लग पाए, इसके लिए पूरी बस्ती को नेताजी के हँसते-मुस्कुराते फ़ोटो वाले बैनर-पोस्टर से पाट दिया गया। बस्तीवालों को नेताजी की हँसती-मुस्कुराती वाली फ़ोटो वाले मुखौटे, टी-शर्ट और टोपियाँ दी गईं। उन्हें जो नाश्ते के पैकेट वितरित किए गए, उन पर भी नेताजी ही छपे हुए थे।

अगले दिन बस्तीवाले नेताजी के साथ महायज्ञ को सफल बनाने निकल पड़े। नेताजी के चेहरे की फ़ोटो का मुखौटा लगाए, वे सब-के-सब नेताजी ही दिखाई दे रहे थे। यूँ लग रहा था, मानो एक नेताजी के असंख्य रूप हैं एवं वे सब-के-सब स्वयं-ही-स्वयं की जय-जयकार करते हुए स्वयं अपना जुलूस निकाल रहे हैं। वैसे अपनी जय-जयकार आप करने में भला बुराई भी क्या है? मनुष्य जो कुछ भी स्वयं के लिए करे तथा केवल और केवल स्वयं के लिए ही करे, तो किसी को कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

तो नेताजी जो कुछ भी कर रहे थे, स्वयं के ही लिए कर रहे थे। अतः वे पूरी तरह से निश्चिंत थे कि कोई माई का लाल उनकी ओर उंगली नहीं उठा सकता।

यह एक बड़ा ही मनोहारी दृश्य था। एक

नेताजी के पीछे असंख्य नेताजी थे। सड़क किनारे चाय की गुमटी में निठल्ले बैठे कुछ चिंतकों और बुद्धिजीवियों ने इसे 'एक चेहरे के पीछे अनेक चेहरे' सरीखे किसी रूपक के तौर पर स्थापित करने की कोशिश की। जुलूस को चकित मुद्रा में निहार रहे नर-नारियों को भी किंचित धोखा हो रहा था कि क्या वाकई यह नेताजी का कोई विराट स्वरूप है?

हालाँकि अपने ही मुखौटों से घिरे हुए नेताजी का चेहरा भी एक मुखौटे जैसा दिख रहा था और इस प्रकार एक नई समस्या खड़ी हो गई थी कि वास्तव में इस जुलूस का प्रतिनिधित्व कौन कर रहा है? इस पर जुआरियों और सट्टेबाज़ों ने फिर से एक नया जुआ अथवा सट्टा खेलना शुरू कर दिया। हाथों-हाथ नेताजी के भाव तय हो गए।

जुलूस ने पूरे शहर का चक्कर लगाया, फिर एक मैदान में जाकर चुनावी सभा में तबदील हो गया। नेताजी ने जमकर भाषण दिया, जिसमें उन्होंने अपने दुश्मनों के काले कारनामों का कच्चा चिट्ठा खोला और फिर वे उस चिट्ठे को खोलते ही चले गए। उनके सचिव ने यह चेतावनी दी कि कल अगली चुनावी सभा में भी बोलने के लिए कुछ होना चाहिए, तब कहीं जाकर उन्होंने साँस ली। और इसी के साथ घूरेलाल की भी साँस में साँस आई, क्योंकि बस्तीवालों के सब्र का बाँध टूटा जा रहा था। उन्हें यदि अब जल्दी ही 'नाश्ते के पैकेट' तथा 'डेढ़ सौ' रुपयों के दर्शन न हुए, तो वे एक छोटी-मोटी क्रान्ति कर बैठेंगे।

क्रान्ति तो खैर नहीं हुई, लेकिन बस्तीवालों ने घूरेलाल को अपनी यह असंतुष्टि ज़रूर दर्ज करवाई कि नाश्ते के पैकेट में उनके मन माफ़िक खाद्य-सामाग्री नहीं निकली। केवल पूरी और सब्ज़ी ही थी। उस पर भी पूरियाँ संख्या में बहुत कम थीं। इस पर घूरे ने उन्हें समझाया कि इस गलती की गहन जाँच करवाई जाएगी और जो कोई भी इस भ्रष्टाचार में लिप्त होगा, उसे बख्शा नहीं जाएगा। दोषियों को कड़ी-से-कड़ी सज़ा दी जाएगी।

वैसे घूरे को मन-ही-मन यह डर भी सता रहा था कि बस्तीवाले पैकेट में परोसी गई सब्ज़ी के बासी होने तथा पूरियों के चमड़े की तरह सख़्त होने का ज़िक्र भी करेंगे, लेकिन ऐसा नहीं हुआ। हालाँकि इस डर से भी बड़ा डर एक और था, जिसकी वजह से कभी-कभी घूरेलाल को नींद नहीं आती थी। वह यह कि कहीं बस्तीवालों को यह पता नहीं चल जाए कि नेता जी ने एक सौ पचास रुपये की जगह वास्तव में दो सौ रुपये देना तय किया था। ठीक यही डर नेताजी के सचिव के सहायक के ड्राइवर को भी सताता था कि कहीं घूरेलाल को यह पता न चल जाए कि नेताजी ने प्रत्येक बस्तीवाले को दो सौ नहीं, बल्कि दो सौ पचास रुपये देना तय किया था। और इसी क्रम में यही डर क्रमशः सहायक व सचिव को भी लग रहा था। किन्तु सचिव, सहायक व ड्राइवर के डर की तीव्रता घूरेलाल के डर की तीव्रता से बहुत कम थी। क्योंकि सच पता लग जाने पर बस्तीवाले फ़ौरन घूरेलाल को हवाई जहाज़ बना देंगे, लेकिन घूरेलाल भला हमारा क्या बिगाड़ लेगा।

खैर, अगले दिन फिर से वही रैली, वही भाषण और वही पूरी-सब्ज़ी व मुद्रा वितरण। किन्तु इस बार भी पूरियों की संख्या नहीं बढ़ी। बल्कि किसी-किसी पैकेट में तो उनकी संख्या पहले से भी कम थी। बस्तीवालों ने फिर से अपनी असंतुष्टि ज़ाहिर की। जल्दी ही यह असंतुष्टि खुसुर-फुसुर में बदल गई। भूरेलाल ने फ़ौरन खतरा भाँप लिया और तुरंत सभी को डेढ़-डेढ़ सौ रुपये बाँटने शुरू कर दिए। इस प्रकार अपनी त्वरित बुद्धि का परिचय देते हुए उसने विद्रोह के स्वर उठने से पहले ही दबा दिए। चिंगारी भड़कने से पहले ही राख़ हो गई। लेकिन अगले दिन यह बुझी राख़ फिर से कुरेदी गई। और उसके अगले दिन भी। बल्कि इस बार तो बस्तीवालों ने न केवल पूरियों की संख्या कम होने को लेकर, बल्कि सब्ज़ी के बासी होने की भी

शिकायत कर डाली। अब घूरेलाल वाकई घबरा गया। उसने फ़ौरन भागकर नेताजी तक यह बात पहुँचाई।

आशा के विपरीत मृदुभाषी नेताजी किसी तोप के गोले की तरह फट पड़े और गरजते हुए बोले "मैं यहाँ तुम्हारी बस्ती को तबाह होने से बचाने में दिन-रात लगा हुआ हूँ और तुम्हें पूरी-सब्ज़ी की पड़ी है। डंडे मारकर भगाओ इन जाहिलों को।"

नेताजी की टीम के कुछ विशेष सदस्य, जो बहुत दिनों से सब कुछ शांतिप्रिय ढंग से चलने की वजह से ऊबे हुए थे, फ़ौरन सक्रिय हो गए।

बस्तीवाले अपने टूटे हाथ-पैर, फूटा सिर, भूखा पेट व खाली जेब लिए वापस लौट आए और रात भर घूरेलाल को कोसते हुए कराहते रहे। किन्तु घूरेलाल का कहीं अता-पता नहीं था। दरअसल, मार-पिटाई के दौरान नेताजी के सचिव के सहायक के ड्राइवर ने घूरेलाल को अपने कमरे में छिपा दिया था। फिर रात को उसने कुछ अति विशिष्ट घरेलू पेय-पदार्थों के साथ दिन भर की थकान उतारते हुए घूरेलाल को एक और राज़ की बात बताई कि दरअसल, नेताजी पर शत्रु दल वालों ने एक साथ सी.बी.आई., एंटीकरप्शन, इन्कम टैक्स वगैरह-वगैरह के छापे डलवा दिए हैं। उनका हारना अब तय है।

इसके साथ ही ड्राइवर ने घूरेलाल के कान में एक नया मंत्र भी फूँक दिया, जिसके वशीभूत हो वह रात भर हेलिकॉप्टर के सपने देखता रहा और सुबह होते ही बस्ती की ओर भागा। सभी तरह की ज्ञात-अज्ञात गालियाँ खा चुकने के बाद, अंततः घूरेलाल बस्तीवालों को यह समझाने में कामयाब हो ही गया कि नेताजी ने हमारा जो अपमान किया है, उसका बदला लेना ज़रूरी है। अतः हम अब नेताजी के शत्रुओं के पक्ष में आहुति देंगे। बदले में वे हमारी बस्ती को उजड़ने से न केवल बचाएँगे, बल्कि हमें रोज़ दो सौ रुपये मिलेंगे। साथ में, नाश्ते के पैकेट, जिसमें भरपूर पूरी सब्ज़ी के साथ मिठाई भी होगी।

अब अगले दिन सब कुछ पहले ही जैसा था। बस जुलूस की अगुआई नेताजी के स्थान पर शत्रु दल के नेताजी कर रहे थे और उनके पीछे मुखौटे लगाए वही सैकड़ों बस्तीवाले। वही रैली, वही भाषण, वही पूरी-सब्ज़ी और मुद्रा वितरण और वही असंतुष्टि। दरअसल, जिस पैकट में मिठाई थी, उसमें सब्ज़ी नदारद थी और जिसमें सब्ज़ी थी उसमें मिठाई गायब थी। पूरी पहले की ही तरह संख्या में कम थी और वैसे ही चमड़े की तरह सख़्त! सब्ज़ी बासी थी। मिठाई किसी पत्थर की डली की तरह मज़बूत। लेकिन घूरेलाल की चिंता का कारण इससे भी बड़ा था। मुद्रा वितरण में भारी अनियमितता थी। दो सौ के स्थान पर सिर्फ़ सौ रुपये ही बाँटे जा रहे थे।

शत्रु का शत्रु सदैव मित्र नहीं होता। आधुनिक काल की यह नई कहावत थी, जो सातवीं फ़ेल घूरेलाल को कुछ-कुछ समझ में आ गई थी। उसे यह भी समझ आ गया था कि शिकायत करने का कोई अर्थ नहीं। हो सकता है कि पुनः मार-काट किए जाएँ। बस्तीवाले उदास-हताश वापस लौट आए। रात को सबने उसी बरगद वाले चबूतरे पर विचार-विमर्श करना शुरू किया। यह जीवन में पहला मौका था, जब बस्तीवाले कुछ विचार-विमर्श कर रहे थे।

घूरेलाल थोड़ी देर तक तो चुपचाप सिर झुकाए बैठा रहा, फिर अचानक उसे कुछ सूझ गया। वह खड़ा हुआ बोला "साथियो यह बात सही है कि दोनों ही नेताओं ने हमसे छल किया है, किन्तु जब दो बेईमान मैदान में हों, तब कम बेईमान का साथ देने में ही समझदारी है। अतः हम फिर से पहले वाले नेताजी को ही समर्थन देंगे, भले ही पूरियाँ कम मिलती हैं, लेकिन पैसे तो पूरे डेढ़ सौ मिल रहे हैं।"

पहले तो बस्तीवालों ने इसका विरोध किया, लेकिन घूरेलाल हार मानने वालों में से नहीं था।

उसने खूब माथा-पच्ची करने के बाद आखिरकार बस्तीवालों को राज़ी कर ही लिया। अब यह बात अलग है कि जब घूरेलाल समेत सभी बस्तीवाले अपने-अपने ठिकानों में चैन की नींद लेते हुए अगले दिन का सुहाना सपना देख रहे थे, ठीक उसी वक्त टी.वी. पर एक खबर चल रही थी कि नेताजी ने चुनाव न लड़ने का फ़ैसला किया है तथा वे अपने समर्थकों सहित शत्रु दल में शामिल हो गए हैं।

इस खबर के तुरंत बाद एक प्रसिद्ध कन्स्ट्रकशन कंपनी का विज्ञापन दिखाया जाने लगा और उसके बाद कुछ चिंतकों और बुद्धिजीवियों की बहस। जुआरियों और सट्टेबाज़ों द्वारा उछाला गया सिक्का तो कब का गंदे नाले में गिरकर मोक्ष को प्राप्त हो चुका था।

maheshtheatre@gmail.com

कुरसीदास

- श्रीमती बिद्वंती शम्भु
काँ टोरेल, मॉरीशस

कुरसियाँ कई प्रकार की होती हैं। साधारण, कीमती, लोहे की, टीन की, तख़्ते की, सिंहासन, गद्दी और कभी तो सोने की भी होती है। महान राजा, बड़े आचार्य, बड़े गेस्टों की कुरसियाँ कैसी होती हैं? आप सुधीजन स्वयं जानते हैं। उन्हीं कुरसियों में से कुछ की चर्चा करने का साहस करने जा रही हूँ। उन कुरसीदासों की जय बोलूँगी, जिन्होंने किसी भी तरह अपनी कुरसी को जकड़कर सुरक्षित रखने का प्रयत्न किया है, जिसके लिए वे जान दे सकते हैं या जान ले भी सकते हैं। ये ऐसे ईमानदार पुतले हैं।

बचपन से ही हर बच्चे के दिमाग में यह बात आती है कि यह मेरी जगह है, यह मेरी चौकी-पीढ़ा है, यह मेरी कुरसी है। शुरू में छोटे तख़्ते जैसे बनाकर बैठ जाते थे और बड़े गर्व से कहते थे- 'देखो यह हमारा सिंहासन है।' कभी बैठने के लिए, कभी गरीबी के चंगुल के कारण गाड़ी जैसे खींचने के लिए, कभी लड़ने-झगड़ने के समय औज़ार की तरह, कभी ऊँची जगह से कोई चीज़ लेनी हो, तो सीढ़ी के रूप में प्रयोग करने के लिए थे। परन्तु जैसे-जैसे जीवन में परिवर्तन होता जाता है या यों कहें कि विद्वान, संपन्न या ओहदेदार होते जाते हैं, वैसे-वैसे तशरीफ़ रखने के लिए आसनों में परिवर्तन होने लगता है और वे रौब ज़्यादा जमाने लगते हैं। फिर धीरे-धीरे हर शख़्स कुरसीदास बनता जाता है। कुरसी संभालने, बचाने या उसकी रक्षा करने के लिए कितने और किस प्रकार के पापड़ बेलने पड़ते हैं। पहले पीढ़ा, फिर कुरसी, सोफ़ा, आर्मचेयर और देखते-देखते एक्ज़ेक्यूटिव कुरसी के मालिक बनने का भूत सवार हो जाता है। समय के साथ परिवर्तन आता है, शरीर का हर अंग प्रतियोगिता के दौर से गुज़रता है और इजाफ़े के कारण साधारण और छोटी कुरसी में समा नहीं पाते हैं। कक्षा में पहले पूर्व प्राथमिक, फिर माध्यमिक, विद्यालय तथा दफ़्तर की कुरसी से नाता और रिश्ता गहराने लगता है। भले ही तोतली बोली में हो, परन्तु बोलते देर नहीं लगती "यह मेली तुरसी है, इस पर तोई न बैठे" - यह मेरी कुरसी है, इसपर कोई न बैठे। यहाँ से आगे बढ़कर भोजनकक्ष में भी नियम लागू हो जाता है कि यह मेरी, यह तेरी और यह उसकी कुरसी है। कोई तो इस नियमावली से इस तरह चिपक जाता है कि दूसरी जगह पर बैठकर भोजन करे, तो वह पचता ही नहीं। पुन: प्राथमिक कक्षा में भी यही प्रक्रिया लागू हो जाती है। आज के होनहार शिक्षक ज्यों ही नियम लागू करते हैं, भले ही अन्य

कार्य में सख़्त नियम क्यों न लागू हो, वह बिखर जाता है, लेकिन कुरसी वाली बात पत्थर की लकीर हो जाती है। छात्र उस कुरसी पर ऐसे जड़ पकड़ लेते हैं कि मानो सबसे बढ़िया गोंद से साट दिए गए हों। कभी जब परिवर्तन की बात उठ जाए, तो मार-पीट की नौबत भी आ जाती है और कभी तो परिवार का हस्तक्षेप इतना ज़ोर पकड़ लेता है कि कई झमेलों का सामना करना पड़ जाता है। कभी वे ही तय कर जाते हैं कि उनके बच्चे किस कुरसी पर बैठेंगे, ताकि अच्छी तरह पढ़ सकेंगे।

बात पहुँचती है माध्यमिक स्कूल, कॉलिज और विश्वविद्यालय तक। इन संस्थाओं में भी सभी की अपनी-अपनी कुरसियाँ होती हैं। छात्रों की अलग-अलग तो है ही, साधारण, मध्यम और वरिष्ठ व्याख्याता की भी अपनी कुरसी होती है, जिसके लिए आए दिन खंजर की नोक पर जीते हैं। कभी भाई-भतीजावाद की गूँज यहाँ भी सुनाई देने लगती है, फिर कुरसी बदलने में देर नहीं लगती और शीतयुद्ध छिड़ जाता है। पारिवारिक सिलसिला, जान-पहचान का असर तो पड़ता ही है, लेकिन कभी-कभी जब पी.बी. यानि पोलिटिकल बैकिंग का असर पड़ जाए, तो कितनी जल्दी कुरसी बदल या उखड़ जाती है या सज जाती है; इसका अंदाज़ा तब लगता है जब आप या आप का परिवार ऐसी स्थिति का शिकार हुआ होता है। तभी हर जगह से आवाज़ बुलंद होने लगती है कि 'राइट परसन इज़ नोट इन राइट प्लेस', यानि सही व्यक्ति सही जगह पर नहीं है। ऐसे में कुछ लोग अपने भाग्य को सराहते हैं कि चलो भगवान ने हमारी प्रार्थना सुन ली, तो कुछ लोग लायक होते हुए भी उचित कुरसी नहीं प्राप्त कर पाए और विरोध प्रकट करने की हिम्मत करते हैं और कुछ बेचारे जीवन भर के लिए ब्लाक लिस्टड की सूची में जुड़ जाते हैं। कुछ क्रांतिकारी बनते हैं, तो कुछ शराबी या निराशावादी बनकर जीवन के बोझ को ढोने का प्रयत्न करते हैं। कुछ तो दूसरे अवसर की प्रतीक्षा में वृद्ध भी हो जाते हैं। कभी ऐसी कुरसी मिल जाती है, जो उसके लायक नहीं होती है, फिर भी ज़बरदस्ती बैठना ही पड़ता है, जैसे मिस-मैच का शिकार हो जाते हैं।

एक कुरसी वह भी है, जिसमें बड़े-बड़े कुरसीदास लोग विराजमान होते हैं। हमारा देश अद्वितीय है, जिसमें पूरे साल तक पूजा-पाठ, भजन-कीर्तन, व्रत-उत्सव, प्रवचन आदि होते रहते हैं। बहुजातीयता, बहुसांस्कृतिकता और बहुधर्मिता का तो यही फ़ायदा है। एक के बाद एक उत्सव व त्योहार आते रहते हैं। आज आदमी चाहे अमीर हो या गरीब, सभी परेशान हैं। सभी लोग ईश्वर से यही गुहार लगाते हैं कि उनका कल्याण हो। तरह-तरह के उपाय और स्तरानुकूल भोज लगाते हैं। कोई तो ऐसा भी भक्त होता है कि वह भटककर अज्ञानवश, नाराज़ होकर, किसी के उकसाने पर या किसी प्रलोभन में आकर धर्म-जाति भी बदलकर डूब जाता है। ऐसी स्थिति में उनको बड़ी कुरसी, ऊँचे पद या गद्दी प्राप्त हो जाती है। जहाँ कहीं भी पूजा-प्रवचन आदि होते हैं, वहाँ आचार्य जी के लिए ऐसी कुरसी का प्रबंध किया जाता है कि मानो साक्षात इंद्रपुरी का इंद्रासन ही हो। भले ही उस पर विराजमान महानुभाव अंट-संट भी बोले, कोई बात नहीं, सभी भोले-भाले व्यक्ति भक्ति रस के नशे में चुर पंडाल की सजावट और व्यास की गद्दी की सजावट को देखते हुए सुन भी नहीं पाते कि आचार्य ने प्रवचन में क्या बात कही। गद्दी की सजावट भी आकर्षक होती है। पूरे गाँव में घूमकर प्रभु की महिमा के बखान को सुनने के लिए चंदा दान में माँगा जाता है। जितना पैसा मिलता है, उसी हिसाब से गद्दी की रचना होती है। दान भी खूब मिलता है, भगवान के नाम पर तो दिल खोलकर दिया जाता है। अच्छे-से-अच्छा कारीगर तलाशकर बढ़िया डिज़ाइन की गद्दी निर्मित की जाती है। उस पर विराजमान वाचक ऐसे लगते हैं कि देवलोक से

कोई देवता ही पधारे हुए हों। कभी कुरसीदास के अगल-बगल में देवलोक की अपसराएँ जैसी सुन्दर युवतियों को शोभा बढ़ाने के लिए उपस्थित कर दिया जाता है। कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि किसी प्रकार की कमी नहीं छोड़ी जाती है।

राजनीति या सियासतवाले कुरसीदासों की बात करें, तो इतनी सारी हरकतें और प्रतिक्रियाएँ होती हैं कि अनपढ़, अंधा, बहरा और अपाहिज भी दाँत तले उंगली दबाने लग जाते हैं। इस क्षेत्र में आने के लिए सर्वप्रथम नगद-नारायण की अति आवश्यकता होती है। यहाँ पर इस पंक्ति को याद किए बिना नहीं रह सकते। यह विश्व एक कर्मस्थल है, जिसमें बल है, वही जीतता है या यों कहें जिसकी लाठी उसी की भैंस। यानि जिस व्यक्ति के पास जेब गरम करने की जितनी क्षमता होती है, उसके भाग्य खुलने की अधिक सम्भावना होती है। जिस परिवार की नींव अधिक पुरानी और गहरी होती है, उसकी किस्मत के चमकने की सम्भावना अधिक होती है। जिसकी वाक्-शक्ति प्रबल हो और जिसे जनता को अपनी ओर आकृष्ट करने की और सफ़ाई से असत्य बोलने तथा ठगने की कला आती हो, उसे बाज़ी मारने में अधिक सुविधा हो सकती है और वह कुरसी का हकदार बन सकता है। इस क्षेत्र में बँटवारा करनेवालों और षड्यंत्र रचनेवालों का भाग्य चमकता-सा दिखाई देता है। कारण यही है कि चुनाव जीतने के पश्चात् मंत्री मंडल का गठन जाति, वर्ण, वर्ग या लता जैसे फैले रिश्ते के आधार पर होता है। कुरसीदास को भले ही राजनीति के अ, आ, इ, ई या ए, बी, सी, डी भी नहीं आती हो, परन्तु बहुजातीयता की आचार-संहिता के आधार पर जाति का प्रतिनिधित्व कर कुरसीदास बन ही जाता है। लीडर के करीबी होने या रिश्ते के गहराव के कारण अधिक बड़ी कुरसी का हकदार भी बन जाता है। यदि कुरसी की कमी हो, तो नई कुरसी का आविष्कार भी कर दिया जाता है। सर्वप्रिय और गौरवशाली कुरसी पाने के लिए बाहरी, एकाकी या उदार शख़्स थोड़े ही हकदार बन पाते हैं। इसके लिए तो यह आवश्यक हो जाता है कि वह पूर्व श्रेष्ठ कुरसीदास के पुत्र, पुत्रवधु, पौत्र या सगा रिश्तेदार हो। इतिहास के पन्ने पलटने पर यही देखेंगे, राजा का बेटा ही शासन का हकदार बनता रहा है, इसके लिए रानी भले ही नौकर या राजा दाई-माँ से सम्बंध जोड़ ले, कोई बात नहीं। बस उनको राज्याधिकार प्राप्त हो जाए। भले ही वह सर्वगुण सम्पन्न हो या नहीं, फिर भी बागडोर मिलते ही वह कुरसी का मालिक बन जाता है। कारोबार का सिलसिला शुरू होता है और संपत्ति, ज़मीन, जायदाद यहाँ तक कि प्रेमी या रखैलों में भी वृद्धि होने लगती है। इतनी तेज़ी से प्रगति होती है कि सभी लोग हाय-हाय करने लग जाते हैं।

कुछ कुरसियाँ ऐसी होती हैं, जिन्हें पाने की चाह बहुत से लोग करते हैं और पाने के लिए अनेक प्रकार के वादे भी करते हैं। कहते हैं वे समाज और संस्था को बड़ी ऊँचाई तक पहुँचा देंगे। वे माथा-पच्ची करते हैं, ताकि उन को वही कुरसी मिल जाए। गाँव-गाँव, व्यक्ति-व्यक्ति के लिए जैसे समय निकालकर कार्य में जुट जाते हैं। समझनेवाले समझ जाते हैं कि इसके पीछे क्या राज़ है और जो न समझे वे अनाड़ी ही रह जाते हैं। वे बस उनका साथ देते हैं और कुरसीदास तो देखते-देखते शिखर पर चढ़ जाता है। फिर क्या, नौकरी, ओहदे, परमिट, कॉन्ट्रेक्ट आदि प्राप्त कर, बाकी लोगों को वहीं छोड़ अनजान-सा व्यवहार करने लगता है। सारे भोले-भाले और ईमानदार लोगों को सीढ़ी बनाकर लाट साहब बन बैठता है।

कुछ कुरसीदास तो ठग विद्या में इतने माहिर होते हैं कि बड़े-से-बड़े विद्वान या कंजूस या सम्पन्न व्यक्ति को भी ऐसे चकमा दे देते हैं कि ठगे जानेवाले लोग देखते रह जाते हैं और कोट-कचहरी का चक्कर लगाते-लगाते जूते की एड़ियों के साथ

बची-कुची पूंजी और समय से भी हाथ धो बैठते हैं। ऐसे कुरसीदासों के पास माहिर चकमेदार व्यक्ति होते हैं, जिनमें डॉक्टर, वकील, नेता, मंत्री-संत्री और कभी तो प्रधानमंत्री भी सम्मिलित रहते हैं। कभी तो सभी सामने उपस्थित होने पर कोई फ़ोन कॉल या चलभाष से किसी ने फ़ोन किया, तो इतनी आसानी से असत्य का डंका बजा देता है कि सुननेवाला आसानी से झूठ को सच समझ बैठता है। यानि ऐसे कुरसीदास के पास अपनी कुरसी बचाए रखने के लिए असत्य का पिटारा होता है।

एक अलग प्रकार का कुरसीदास वह होता है, जो श्रेष्ठ पद या नंबर वान पर आसीन होने के लिए कुछ भी कर सकता है। चाहे वह कला के क्षेत्र में नायक या नायिका ही क्यों न हो। सलाहकार पी.एस., व्याख्याता, धार्मिक नेता, योगीराज, डाकू, डॉन, रचनाकार, चमचा या सभा-समाज संगठन के संचालक ही क्यों न हो, सभी को अपनी कुरसी इतनी प्यारी होती है कि आदमी किसी भी हद को पार कर सकता है। कुरसीदासों के चरित्र, व्यवहार और हरकतें अजीब-सी होती हैं। किस समय कैसे उसका उपयोग करता है, समझना कठिन होता है। ऐसे लोगों से बचकर रहना पड़ता है। कभी तो ऐसा लगता है कि उनके पास बुद्धि ही नहीं, वे अच्छी तरह जानते हैं कि मृत्यु होने पर साथ कुछ नहीं जाता है, फिर भी जहाँ तक हो सके धन इकट्ठा करते जाते हैं। कभी उनको पता नहीं चलता कि कुरसी ने उनको दास बना डाला है या वे कुरसी के दास बन बैठे हैं।

कुरसी की अजीब कहानी है। कुरसी आदमी के दिमाग में स्वार्थ, अज्ञानता, शत्रुता, कपट और जलन की भावना को जन्म देती है। कभी सही उपयोग से कुरसी आदमी को महात्मा की पदवी भी प्रदान कर देती है। गलत प्रयोग से कुरसी किसी को बरबादी की खाई में ढकेल देती है, तो किसी को ऊँची पदवी पर आसीन कर मान दिलाती है। कुरसी तो कुरसी है, हम उसे दोधारी तलवार बना देते हैं। बाद में, उसकी जय-जयकार करने लगते हैं। कुरसी की जय, कुरसीदास की जय, कुरसी निर्माता की जय!

संवेदना डॉट कॉम

- श्रीमती आस्था नवल
अमेरिका

आजकल सोशल मीडिया का ही ज़माना है, सब लोग जो मन में आता है, उसका हैशटैग (#) बना लेते हैं। मेरे सभी दोस्तों की फ़ेसबुक पोस्ट पर, इंस्टाग्राम हैंडल पर और ट्वीट पर हज़ारों की संख्या में लाइक दिख रहे थे। मेरा भी मन बेताब हो गया कुछ ऐसी पोस्ट बनाने का, जिससे हज़ारों नहीं लाखों लाइक मिले और शेयर भी मिले। मैंने सोचा कि ऐसी रोमांचक जगह पर जाकर फ़ोटो खिंचवाती हूँ, जो किसी ने पहले कभी न देखी हो। पर तभी याद आई कि महामारी ने पूरे विश्व को जकड़ा है, पास वाले बाज़ार तक जाने में ही रोमांच का अनुभव हो जाता है। फिर सोचा किसी ऐसी खतरनाक जगह पर खड़े होकर फ़ोटो लूँ कि सबका दिल दहल जाए, बिना लाइक के कोई रह न पाए।

गलती से अपनी योजना मैंने माँ को बता दी। अब केवल युवा ही सोशल मीडिया से थोड़े ही चिपके हुए हैं। फेवीकॉल के मज़बूत जोड़ से भी

अधिक मज़बूत है, ये ऑनलाइन होने का जादू। मेरे सेवानिवृत माता-पिता मुझसे अधिक बिज़ी हैं। सुबह 7 से 9 ऑनलाइन योगा क्लास, फिर 10 से 12 तक नए सीखे योगा पोज़ की फ़ोटो को अपलोड करना, एक अच्छे शीर्षक यानि आज की भाषा में कैप्शन सोचने की जद्दोजहद। आधे-पौने घण्टे की बहस कि किसने किसकी अच्छी फ़ोटो नहीं खींची, कच्ची-पक्की सब्ज़ियों का गंदा बेस्वाद-सा शेक बनाकर इंस्टाग्राम पर हैशटेग # "स्वस्थ रहो मस्त रहो" लगाना।

असल में तो माता-पिता आज भी नाश्ते में पराठे ही खाते हैं और मुझे जबरन वह कड़वी स्मूदी या शेक पिलाते हैं। वैसे सोच रही हूँ अपनी पोस्ट को सबसे अलग बनाने से पहले माता-पिता को फ़ोटोशॉप या कॉपी पेस्ट करना सिखा दूँ। जैसे हमें किसी की पोस्ट या ट्वीट लाइक करने के लिए पढ़ने की ज़रूरत नहीं होती, वैसे इंटरनेट पर इतनी तस्वीरें हैं, किसी को भी इस्तेमाल किया जा सकता है, सच में शेक की क्या आवश्यकता है। राज़ तो सभी जानते हैं कि सेहत घर के पारम्परिक खाने में है, पर ट्रेंडिंग चीज़ों को खाना, तो बस स्टाइल के लिए ही होता है।

अरे! मैं बात कर रही थी अपनी पोस्ट की, पर ये मीडिया का ज़माना है ही कुछ ऐसा। माँ का संदेश पढ़ने के लिए फ़ोन उठाओ, तो सहेलियों के संदेश दिख जाते हैं, वह जिस वेबसाइट पर जाने को कह रही हैं, वहाँ जाओ, तो उस वेबसाइट पर कोने में छोटा-सा लिंक दिख रहा होता है। उस पर जाओ, तो पता चलता है कोई वाइरस है। फटाफट फ़ोन बंद करो, वैसे ही जैसे पूरा संसार आजकल वाइरस के कारण बंद पड़ा है। फिर फ़ोन को ऑन करो। इसमें माँ ने क्या संदेश भेजा था, कैसे याद रहेगा! पर फिर भी माता-पिता बच्चों की परेशानियों को कब समझते हैं?

अच्छा तो मुद्दे पर वापस आते हैं। मैं बता रही थी कि मैंने सोचा मैं किसी रोमांचक, खतरनाक जगह पर फ़ोटो खिंचवाऊँगी, जिससे व्हाटसएप्प, फ़ेसबुक, ट्विटर, इंस्टाग्राम पर हलचल मच जाए। इतना ही नहीं, जो माता-पिता पिछले दो साल से 'पति खोजो डॉट कॉम' पर फ़ोटो लगाने की बात कर रहे हैं, वहाँ भी वही फ़ोटो लगाऊँगी। ताकि वही लोग घर पर रिश्ता लेकर आएँ, जिन्हें खतरों से खेलना पसंद हो। फ़ोटो देखकर ही पता चल जाए कि लड़की को फ़ैशन का, फ़ोटो खिंचवाने का शौक है, जो एक ऑनलाइन सनसनी है।

पर माता जी ने इस फ़ोटो को खींचने से पहले ही सपनों पर पानी फेर दिया। मुझे लगता था मम्मी फ़ोन पर बस सहेलियों से बात करती हैं या रेसीपी देखती हैं, पर उन्होंने तो खतरनाक सेल्फ़ी के कारण होने वाली मृत्यु की संख्या गिना दी। फिर मैंने माँ को कहा कि तब तो मुझे महामारी खत्म होने के बाद किसी ऐसी रोमांचक जगह पर जाना पड़ेगा, जहाँ सब देखते ही रह जाएँगे। मैं दुखी थी कि महामारी टलने का इंतज़ार करना होगा। तब तक ऑनलाइन सनसनी नहीं बन सकती। पर माता जी ने याद दिलाया कि दो बड़ी बहनों की पढ़ाई और शादी के ही लोन अभी तक नहीं उतरे हैं। महामारी हो या नहीं, हम किसी छुट्टी पर नहीं जा सकते। रोमांचक तो दूर, घर से दो घण्टे की दूरी पर स्थित झील तक भी पिकनिक मनाने नहीं जा सकते। फिर माता जी ने यह भी बताया कि किसी भी रोमांचक जगह की फ़ोटो मुझे इंटरनेट से खोज लेनी चाहिए, उसके आगे अपनी फ़ोटो चिपका देनी चाहिए। तो! माँ को ये भी आता है, इसका मतलब बेस्वाद स्मूदी जान- बूझकर मेरे लिए ही बनाई जाती है।

न जाने क्यों आजकल की माताएँ राजश्री फ़िल्मों वाली भोली, सीधी-सादी क्यों नहीं होतीं? रसोई से लेकर घर की ई.एम.आई. तक सब जानती हैं। बच्चे इन्हें छल भी नहीं सकते।

मेरा मन तो अब और भी निराश हो गया, पापा से पूछा कि अधिक लाइक और शेयर कैसे पाए जाएँ, तो पापा ने आँकड़े बताने आरम्भ कर दिए कि किस तरह की पोस्ट को कितने लाइक मिलने की सम्भावना है, क्यों लड़कियों की पोस्ट पर अधिक कमेंट मिलते हैं और कैसी पोस्ट पर कोई कुछ नहीं कहता। जानती तो मैं भी थी, पर फिर भी सुन लिया। महामारी के समय में भी पिताजी ने आँकड़ों का ज्ञान रखना और बाँटना नहीं छोड़ा।

पिताजी ने मदद तो करनी चाही, पर कुछ खास कर नहीं पाए। अब मैं किससे बात करती? दोनों विवाहित दीदियाँ अपने लॉकडाउन के भरे-पूरे संसार में व्यस्त थीं। तो क्या हुआ जो दोनों अच्छी नौकरियाँ करती थीं, पर इस लॉकडाउन में अध्यापक, सफ़ाई वाली, खाना बनाने वाली सभी कुछ तो उन्हें ही होना था। एक जीजू की तो नौकरी दीदी ने ही सिफ़ारिश करके लगवाई थी, पर फिर भी ऑफ़िस का कम काम होने पर भी घर के काम आदमी थोड़े ना करते हैं! दोनों दीदियाँ तो दिन में एक परिवार के साथ फ़ोटो डाल देती हैं, साथ में 'परिवार से बड़ा कुछ नहीं' जैसा कुछ कैप्शन दे देती हैं, बस मिल गए लाइक ही लाइक। उसके बाद चाहे सारे दिन माँ से सास-ससुर की बुराई करें। यही तो मज़ा है इस ऑनलाइन ज़माने का।

एक सहेली अपनी बीमार दादी के साथ फ़ोटो लगा देती है, वही दादी जिसके शीघ्र चल बसने की कामना करती है, पर फ़ोटो देखने वालों को क्या पता, उसकी पोस्ट को तो मिल जाते हैं न लाइक। साथ ही, अच्छे परिवारों से रिश्ते भी आते रहते हैं। एक दोस्त हर रोज़ नई घड़ी पहनकर अपने हाथ की फ़ोटो डालता है, किसी को नहीं बताता कि परिवार की घड़ियों की दुकान है। एक दोस्त को पेंटिंग आती है, एक को मेक-अप के वीडियो बनाने आते हैं। एक सहेली को कुछ न आते हुए भी अपनी नाचते हुए वीडियो लगाती रहती है। पर मुझे तो कुछ भी नहीं आता। मैं तो निराशा की चरम सीमा तक पहुँच चुकी थी।

बचपन से बताया गया था, पढ़ाई में ध्यान दो, आज वही सारे दोस्त जो क्लास में मुझसे कम नम्बर लाते थे, मुझसे ज़्यादा लोकप्रिय हैं। आजकल के मिडल क्लास के बच्चों को नौकरी तो मिल ही जाती है। अंग्रेज़ी बोलने का कोर्स कर लो, तो कॉल सेंटर में, कम्प्यूटर कोर्स कर लो, तो किसी भी फ़र्म में नौकरी मिल जाती है। मैं पढ़ाई कर-करके टीचर ही बन पाई और ज़्यादातर दोस्त मुझसे अधिक पैसा कमाते हैं। जिन सहेलियों ने नौकरी नहीं की, उन्होंने अमीर लड़कों से शादी कर ली। मुझे बार-बार बताया गया कि पैसा कमाओ न कमाओ, इज़्ज़त कमानी चाहिए। इज़्ज़त भी तो तभी होगी, जब मेरी पोस्ट वायरल होगी।

सब दादा जी की गलती है। सब सच कहते हैं कि बच्चों को नाना-नानी और दादा-दादी ही बिगाड़ते हैं। आदर्श की बातें, मेहनत के सूत्र, पंचतंत्र की कहानियाँ। उफ़! एक भी अच्छी पोस्ट नहीं लगा सकती।

जीवन में कितनी निराशा है, कहाँ से लाऊँ आत्मविश्वास रखने की शक्ति? पर फिर भी दादा जी को ऐसा लगता है कि मेरा जीवन बहुत अच्छा है, जब भी उनके पास जाओ, तो यही कहते हैं कि आजकल के बच्चों को पता ही नहीं है कि जीवन में कठिनाई क्या होती है। असल में खुद तो दादाजी को नहीं पता कि कठिनाई क्या होती है। सुबह सैर पर जाते हैं, देश की राजनीति पर चर्चा करते हैं, ध्यान लगाते हैं। शायद नब्बे साल से भी अधिक आयु है उनकी, पर लगते पापा के बड़े भाई जैसे हैं। अरे! ध्यान लगाने के लिए मन शांत होना चाहिए। मन तो शांत उन्हीं का होता है, जिन्हें कोई तकलीफ़ न हो, पर दादाजी को क्या पता, क्या होता है कूल ना होना, लोकप्रिय ना होना, फ़ोटोजेनिक ना होना। किसी अच्छे ब्रेंड के कपड़े नहीं हैं मेरे पास, एक

भी महँगा पर्स नहीं खरीदा आज तक। आजकल ऑनलाइन पढ़ाने के लिए कोई घर में अच्छी सजीली दीवार तक नहीं है। हर दीवार पर परिवार के मृत लोगों की तस्वीरें जो टंगी हुई हैं। मुझे इतनी तकलीफ़ें हैं, फिर भी दादा जी आज तक अपने उन दिनों का किस्सा सुनाते हैं, जब उनके माता-पिता बँटवारे के बाद कैम्प में रहते थे। घर के किसी भी बच्चे के पास जूते नहीं थे। अरे! तब किसे फ़ोटो खींचना था और ट्विटर पर डालना था?

दादा जी ने मुझे उदास देखकर हर बार की तरह अपने मनपसंद गांधी जी की सीख देनी आरम्भ कर दी। गांधी जी का जंतर न जाने कितनी बार सुनाया है, उन्होंने मुझे। शुक्र है, माँ ने बाज़ार जाने का आदेश दिया, तो छुट्टी मिली। महामारी के कारण बाज़ार का सारा काम युवा होने के कारण मुझे ही करना पड़ता है। मुँह पर मास्क लगाओ, केवल आँखें ही दिखती हैं, इसलिए आँखों पर अधिक मेक-अप लगाओ, पहले सामान खरीदो, फिर एक-एक चीज़ घर लाकर धोओ, फिर खुद भी नहाओ। माँ को तो जैसे बंधुआ मज़दूर मिल गया है। मैं तो माँ को यह भी नहीं कह सकती कि वह नहीं जानती टीचर की नौकरी कितनी मुश्किल होती है। क्योंकि माँ भी टीचर ही थीं, हर बात पर यही कहती हैं कि “मैंने भी नौकरी के साथ पूरा घर सम्भाला है।” उनके समय में कम-से-कम दिन भर की भड़ास छात्रों पर निकाल सकते थे। किसी भी छात्र को एक थप्पड़ लगाया और राहत! पर अब देखो! टीचर की ऊँची आवाज़ भी छात्र के माता-पिता के गुस्से का कारण बन जाती है। कितना सोचती थी कि एक बार टीचर बनूँगी, तो ऐसे डर के नहीं रहना पड़ेगा, पर क्या पता था, मेरा नम्बर आने तक खेल ही बदल जाएगा। मेरी किस्मत में तो डर के रहना ही रह गया है।

हर रोज़ की तरह आज भी बाज़ार से आते हुए थैला पकड़े ही फ़ोटो हर सोशल मीडिया साइट पर लगानी पड़ेगी। कैप्शन क्या डालूँ! परिवार-सेवा ही सबसे बड़ा सुख है, परिवार खुश तो मैं खुश, माता-पिता की सेवा ही धर्म है। ये सारे आदर्श शीर्षक तो लगा चुकी हूँ। आज क्या करूँगी? यही सब सोच रही थी कि दादा जी का कहा मेरे कानों में गूँजने लगा। यूरेका! आखिर मुझे मिल ही गया वायरल होने वाला मेटीरियल। सामने बंद दुकान की सीढ़ी पर बैठा, फटे कपड़े, गंदे बाल, मैला शरीर, ज़मीन से कुछ उठाकर खाता हुआ आदमी। उफ़! ऐसी करुणा, ऐसी दरिद्रता तो ढूँढने पर भी कहीं नहीं मिलेगी।

सुबह-सुबह टी.वी. पर आने वाले बाबा जी का कथन याद आने लगा, “खुशी को ढूँढने के लिए दूर जाने की ज़रूरत नहीं है।” वाह वाह! मेरे लिए तो गांधी जी आज काम आ ही गए। मुझे उनका जंतर कुछ ऐसे याद था, “जब भी तुम संदेह में हो, तब उस सबसे गरीब और कमज़ोर आदमी, जिसे तुमने देखा हो, उसे याद करना, तब तुम देखोगे कि तुम्हारा दुख मिट रहा है।”

मैंने तुरंत फ़ोन निकाला, पहली बार बिना इस चिंता के कि मेरे पास पुराने मॉडल का फ़ोन है, उस दरिद्र, गरीब, बिचारे व्यक्ति के चार-पाँच अलग-अलग एंगल से फ़ोटो खींची। उन तस्वीरों में कुछ इफ़ेक्ट भी डाले। जल्दी-से ऑनलाइन जाकर गांधी जी का जंतर खोजा, उसकी भी तस्वीर निकाली। सभी सोशल मीडिया साइट पर चार तस्वीरें उस बिचारे व्यक्ति की और एक गांधी जी के जंतर की तस्वीर लगा दी। कैप्शन भी लगा दिया, ‘गांधी आज भी प्रासंगिक’। जहाँ-जहाँ अपने कॉन्टेक्ट को टैग करने की सुविधा थी, कर दिया। कुछ सहेलियों को मैसेज किया कि पोस्ट देखें और कमेंट करें। दोनों दीदियों और जीजाओं को भी फ़ोन कर दिया। छात्रों को भी हुक्म दे दिया। इतने में किराने की दुकान तो बंद ही हो गई। पर आज माँ की डाँट का भय किसको है? आज तो मेरी पोस्ट वायरल

होने जा रही है। बिना सामान के घर पहुँची, तो पता चला घर वालों ने भी पोस्ट देख ली है। सामान न लाने के कारण माँ को कोई गुस्सा नहीं आ रहा था, गुस्सा आ रहा था कि शादी लायक बेटी की सोशल मीडिया वॉल पर भिखारी की फ़ोटो देखकर लोग क्या कहेंगे।

पिताजी ने मुझे देते हुए कहा, "इसने ठीक कदम उठाया है, आँकड़े कहते हैं कि लोगों को भूखे, नंगे और बिचारे लोगों की तस्वीर देखने में बहुत आनंद आता है, विशेषकर विदेशियों को। ऐसी पोस्ट को शिक्षित समाज का चिह्न माना जाता है। कोई पार्टी भी इसे नकारती नहीं है। साथ ही इतने दुख को देखकर लोग प्रतिक्रिया दिए बिना रह ही नहीं पाएँगे। देखो! पंद्रह मिनट में ही अस्सी लाइक भी आ गए हैं।" इतना साथ तो पिताजी ने मेरा कभी नहीं दिया था। मैं सांतवे आसमान पर जाने ही लगी थी कि दादा जी ने बेतुका-सा सवाल किया, "बेटा उस आदमी को कुछ खाने को दिया न तुमने?"

दादा जी भी! महामारी फैली हुई है, लोग अपने सगे सम्बंधियों से नहीं मिल रहे। मैं इतने मैले आदमी के पास जाती! अपना सामान तो लाई नहीं, उसे क्यों कुछ खिलाती?

दादाजी ने फिर कहा, "बेटा जिस जंतर की तुमने तस्वीर लगाई है, उसमें साफ़-साफ़ लिखा है कि अपने दिल से पूछो कि जो कदम तुम उठाने जा रहे हो, क्या वह उस आदमी के लिए उपयोगी होगा, क्या उससे उसे कुछ लाभ पहुँचेगा, क्या उससे वह अपने ही जीवन और भाग्य पर कुछ काबू पा सकेगा? यानि क्या तुम्हारी पोस्ट से उन करोड़ो लोगों को स्वराज मिल सकेगा, जिनके पेट भूखे हैं और आत्मा अतृप्त है?"

दादाजी की बातें सुनकर मेरे तो होश ही उड़ गए। मैंने तो ये सब पढ़ा ही नहीं था। पर फिर याद आया। ऑनलाइन का ज़माना है, पूरा जंतर कौन पढ़ेगा, मज़े की बात यह है कि हिंदी में जंतर लगाया है, वैसे ही कोई नहीं पढ़ेगा।

मैं तो उस गरीब की फ़ोटो लगाकर अपनी संवेदनशीलता का प्रदर्शन कर रही थी। फिर मैं स्वराज की चिंता क्यों करूँ? मैं तो आज़ाद भारत में रहती हूँ!

ये लो! लाइक के साथ-साथ शेयर भी बढ़ने लगे हैं। आखिर गांधी जी में कुछ तो बात अभी भी है, दादा जी नहीं समझेंगे।

asthanaval@gmail.com

हिंदी : जिधर जगह उधर मात्रा

- श्री धर्मपाल महेंद्र जैन
टोरंटो, कनाडा

मैं भाषा-विज्ञान का कभी प्रशंसक नहीं रहा, यह भी गणित जैसा कठिन और बोर करने वाला विषय है। प्राचीन साहित्यकारों ने एक से बीस तक की गिनती क्या सीख ली, लेखन में गिनती करना अनिवार्य बना दिया। दोहे लिखो, तो विषम चरण में इतनी मात्राएँ और सम चरण में इतनी मात्राएँ। अब कविता लिखो कि गिनती करो। ऊपर से सम और विषम चरण का ध्यान रखो। यदि विषम और सम को पहचानने की बुद्धि होती, तो कवित्त क्यों करते, गणित ही पढ़ लेते। ये साहित्यकार दोहे पर ही नहीं रुके, कवित्त को कठिनतम बनाते चले गए, छंद, चौपाई, गीतिका, उल्लाला और न जाने क्या-क्या। आप कविता के हाईवे पर जा रहे हों और बीच-बीच में ऐसे स्पीड ब्रेकर आ जाएँ, तो सारे

विचारों का सत्यानाश हो जाता है। एक बार विचार दिमाग से निकल गया, तो निकल गया, उसे कहाँ पकड़ने जाएँगे। विचार कोई विधायक तो है नहीं कि आप उसे कहीं से खरीद लाएँगे। भगवान भला करे तुम्हारा सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, जो कविता का गिनती से पिंड छुड़ा गए और उसे स्वतंत्रता दिला दी, अन्यथा आज कविता केलकुलस हो गई होती, न लिखने वाले को समझ आती, न पढ़ने वाले को। कम-से-कम आज की कविता अपने गुट के लोगों को तो समझ में आती है।

आम कविता मात्रिक गणना से मुक्त हो गई, तो हिंदी साहित्य का यह अभूतपूर्व फैलाव संभव हो पाया। बीसवीं सदी में कवि बनना सहज और सरल हो गया। एक झोला कंधे पर टाँग लो, चप्पल पहन लो, संभव हो तो बाल बढ़ा लो, जहाँ जगह बना सकते हो घुस जाओ और कविता प्रसारित करने लग जाओ। इक्कीसवीं सदी में सिर्फ़ झोले से काम नहीं चलता है। झोले के अंदर कम-से-कम एक सिम वाला मोबाइल फ़ोन चाहिए। कवि की बैटरी भले ही डाउन हो, मोबाइल फ़ोन की बैटरी पूरी चार्ज होनी चाहिए। कवि को अपना नाम लिखना ज़रूर आना चाहिए। यदि इतना भी नहीं आए, तो ग़ालिब का शेर कॉपी-पेस्ट करके वायरल करने से साहित्य को क्या मिलेगा। साहित्य को हर दिन नए-नए साहित्यकार चाहिए।

मुझे मालूम है कि मैं और आप कॉपी-पेस्ट कवि नहीं हैं। हम कविता लिखने में अपनी जान लगा देते हैं, रात-दिन एक कर देते हैं, तब कहीं पाठक या श्रोता की जान से खेल सकते हैं। इस योग्यता के कारण हिंदी कविता में जब कहीं कोई खाली स्थान होता है, हम अपना नाम आदर से घुसा देते हैं। हमारा अधिकार बनता है कि हम कविता के तकनीकी पहलुओं पर बातें करें। पहली बात, हिंदी कविता मात्रिक गणना से मुक्त हुई है, पर मात्राओं के जंजाल से मुक्त नहीं हुई। बड़ी दयनीय स्थिति है। देखिए न, उदाहरण के लिए कोई एक वर्ण लीजिए, जैसे 'क'। इसके ऊपर, नीचे, तिरछे, आगे, पीछे मात्राएँ पड़ जाती हैं। जैसे 'क' हिंदी का वर्ण नहीं हुआ, कुँआरा आई.ए.एस. अधिकारी हो गया। ये मात्राएँ हिंदी की वर्ण-व्यवस्था की जो दुर्गति करती हैं, उसमें बेचारा कवि क्या करे। वर्ण के आगे जगह होती है, तो वह छोटी मात्रा फ़िट कर देता है, पीछे जगह होती है, तो बड़ी मात्रा फ़िट कर देता है। हमारा काम कविता करना है, मात्रा फ़िट करना नहीं है। काव्य-शास्त्र में कहीं नहीं लिखा है कि जगह मिलने पर साइड दी जाएगी। कविता का भाव विचारों के इतने प्रचंड ट्रेफ़िक में फँसा है कि सही साइड की प्रतीक्षा करते-करते भाव ठुककर मर जाएगा। अरे साहब, जिस साइड में जगह है, उधर से निकल लो। कविता के भाव को आगे बढ़ाना हमारा काम है और यही हमारा लक्ष्य होना चाहिए। भावहीन होकर ही लिखना होता, तो वह कविता क्यों लिखता, आलोचक बन जाता।

इक्कीसवीं सदी में बहुत-सी वर्जनाएँ टूटी हैं, खासकर छोटे-बड़े की, ऊँच-नीच की। फिर, हम प्रगतिशील साहित्यकार होकर मात्राओं के छोटे-बड़े होने के भेदभाव को साहित्य में स्थान कैसे दे सकते हैं। अंग्रेज़ी साहित्य को लीजिए, उन्होंने मात्राएँ रखी ही नहीं, नो झंझट, फर्राटे से लिखो। उन्होंने छोटे-बड़े के अंतर को भी कितना पाट दिया है और अब तो सेलफ़ोन पर आम संवाद में बड़े अक्षरों को विदा ही दे दिया है। इमोजी ने बड़े-बड़े शब्दों को नन्हा और प्यारा बना दिया है। ये हम हिंदी वाले ही हैं कि अब भी महिला का अपमान करते हैं, 'ह' अक्षर में छोटी 'इ' की मात्रा लगाते हैं। यह तो अच्छा हुआ कि विदुषी महिलाओं के ध्यान में छोटी मात्रा का यह मामला नहीं आया, अन्यथा नारी-विमर्श का एक और मुद्दा बन जाता। संस्कृत वालों को देखिए, वे लिखते हैं स्त्री, नारी, यहाँ बड़ी मात्रा जोड़ी गई है। पुरुषों को समझना चाहिए कि पुरुष और पुरुषार्थ

दोनों में भाषा-शास्त्रियों ने छोटी मात्रा ही लगाई है। आखिर वे भी गृहस्थाश्रम धर्म का पालन करते हुए घर में रहना चाहते थे। पति में छोटी मात्रा लगाकर, पत्नी को बड़ा बनाए रखकर उन्होंने अपनी स्पष्ट मंशा बता दी। दूसरी बात, प्रकृति ने नर और मादा का भेद कर दिया। भाषा को लिंग-भेद क्यों करना चाहिए? पुल्लिंग जो रोटी खाता है, उसी रोटी को स्त्रीलिंग खाती है, अरे 'खाता' क्रिया को 'खाती' करने का अधिकार किसने दिया? मानवाधिकार आयोग को यह संज्ञान लेना चाहिए कि जो पुरुष कर सकता है, वह महिला भी कर सकती है। भाषा को विभेदक नहीं होना चाहिए। हमारी संस्कृति में नारी को हमेशा सम्मानजनक स्थान मिला है। अब युवा पीढ़ी समानता चाहती है और हिंदी को मात्राओं के प्रतिबंधों से मुक्त करना चाहती है, तो उसकी मर्ज़ी। इसमें बॉलीवुड सहयोग दे रहा है, बहुत सारे सरकारी उपक्रम सहायता कर रहे हैं, नए-पुराने कवि और कुछ संपादक भी आगे आ रहे हैं, बिहार आगे आ रहा है, बंगाल आगे आ रहा है, मुंबई तो इस मामले में पहले से ही बहुत आगे है।

अभी मैं हिंदी के बहुत बड़े लेखक से मिला, वे खूब चर्चित हैं और युवाओं में लोकप्रिय भी। मैंने अपनी बात रखी कि हम हिंदी को कम-से-कम मात्राओं के छोटे-बड़ेपन से मुक्त कर दें। वे ज़ोर-ज़ोर से हँसने लगे और बोले, "आप किस ज़माने में रह रहे हैं। हमारी युवा और युवातर पीढ़ी हिंदी को मात्राओं के जंजाल से कब की मुक्त कर चुकी है। हम सब रोमन लिपि में हिंदी लिखते हैं, आपने नहीं देखा मेरा नया उपन्यास, यह लीजिए सात सौ रुपये का है।" वे हमारे दिल अज़ीज़ अभिनेताओं के लिए लिखे जा रहे संवादों की स्क्रिप्ट बताने लगे, "देखिए अगली हिंदी फ़िल्म की स्क्रिप्ट, यह रोमन हिंदी में है।" मुझे अपने कवि मित्रों पर बहुत गर्व हुआ, जो मात्राओं के जंजाल से हिंदी को बाहर खींच रहे हैं। वे कम-से-कम देवनागरी में लिख रहे हैं, भले छोटी-बड़ी मात्रा का भेद खत्म कर लिख रहे हैं। जब तक हिंदी के कवि ज़िंदा हैं, हिंदी का कोई बाल भी बाँका नहीं कर सकता।

dharmtoronto@gmail.com

कथाकार पुन्नी सिंह से खेमसिंह डहेरिया की बातचीत

- प्रो. खेमसिंह डहेरिया
भोपाल, भारत

आपके कथाकार बनने, होने की क्या कोई ऐसी उल्लेखनीय पृष्ठभूमि है, जिसे आप व्यक्त करना चाहते हैं? और आपने गद्य की इस विधा का चुनाव क्यों किया?

पुन्नी सिंह : मैं शुरू में नाटक और विशेष रूप से एकांकी लिखता था। यह सातवें दशक की बात है और उसी दौरान मैंने मात्र दो कहानियाँ भी लिखी थीं। उनमें एक थी 'लकड़हारे की राखी'। अगस्त 1970 में मेरी नियुक्ति छत्तीसगढ़ के राजनांदगाँव कस्बे के उस महाविद्यालय में हुई, जहाँ मुक्तिबोध अपने जीवन के अंतिम दौर में थे और उस समय वहाँ डॉ. पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी जी थे। बख्शी जी ने मेरी कहानी 'लकड़हारे की राखी' मुझसे पढ़वाकर सुनी थी और शायद मेरी कल्पना से कहीं ज़्यादा उन्होंने उस कहानी की प्रशंसा की थी। न केवल इतना, बल्कि कई बार मुझसे कहा कि तुम कहानी बहुत अच्छी लिख सकते हो। वही समय था, जब मैं एक निहायत सम्पन्न संस्कृति से मुठभेड़ कर रहा था। वहाँ मेरा परिचय नगण्य था, इसलिए छत्तीसगढ़ के धान से लहराते खेतों की मेड़ों पर मस्ती से घूमता था। छुट्टी के दिन कभी-कभी उधर बस्तर की सीमा से लगे जंगलों में चला जाता था। और उसी दौर में एक झटके में नाटक छोड़कर कहानी पर आ गया और उस दौर की मेरी पहली कहानी थी 'जंगल का कोढ़'।

क्या आप किसी विचार को लेकर लेखन में अग्रसर हुए हैं अथवा जीवन के विविध पहलुओं, घटनाओं, चरित्रों से प्रेरित होते हैं?

पुन्नी सिंह : आपका 'विचार' से क्या अर्थ है और अगर वही अर्थ है, जो मैं समझता हूँ, तो मेरी दृष्टि में विचार दो तरह के होते हैं - सकारात्मक और नकारात्मक। मैं अपने पूरे लेखन काल में सकारात्मक विचारों को लेकर ही अग्रसर हुआ हूँ। मैंने सर्वाधिक कहानियाँ दलित, आदिवासी और महिलाओं को केंद्र में रखकर लिखी हैं। लेकिन एक बात यह भी सच है कि विचार मात्र से कोई रचना नहीं बनती। रचना बनती है, जीवन के अध्ययन से, उससे जुड़ी हुईं घटना-परिघटनाओं के गहन अध्ययन से। विचार, जीवन को समझने में, उससे जुड़ीं घटनाओं के विश्लेषण करने में हमारी मदद कर सकता है, जो बेहतर कहानी के लिए ज़रूरी है।

आपका रचनाकार रूप प्रभावित और प्रेरित है या अन्वेषण की गुंजाइश से चलता है?

पुन्नी सिंह : हर रचनाकार का अपना एक पक्ष होता है, लेकिन उस पक्ष की पुष्टि बिना अन्वेषण के संभव नहीं है। किसी घटना मात्र से कहानी बनना संभव नहीं है। घटना लेखक को वह सूत्र उपलब्ध कराती है, जहाँ से वह अपना काम शुरू कर सकता है। अगर किसी समस्या से संबंधित जानकारी पहले से है और फिर जब उससे संबंधित कोई घटना घटित होती है, तो लेखक के विचार स्वतः केंद्रीयभूत होने लगते हैं और वह कम-से-कम समय में अच्छी-से-अच्छी कहानी लिख सकता है, लेकिन कभी-कभी घटना घटित हो जाने के बाद लेखक समस्या से रूबरू होता है। तब उसे गहन अध्ययन की ज़रूरत होती है और कहानी लिखने में स्वाभाविक रूप से विलम्ब होता है। समय लगता है। अतः अन्वेषण हर हालत में ज़रूरी है - मेरे लिए और दूसरों के लिए भी। इसलिए मेरे पास दोनों तरह

की कहानियाँ हैं - ऐसी भी जो कुछ घंटों में लिखी गई हैं और ऐसी भी जो महीनों और सालों में लिखी गई हैं। यहाँ अन्वेषण की बात उठी है, तो मैं यह भी कह सकता हूँ कि रचनाकार की अन्वेषण प्रक्रिया कुछ अलग ही होती है। उसे सकारात्मक और नकारात्मक दोनों पक्षों का अध्ययन करना होता है, क्योंकि दुनिया की कोई बड़ी रचना नकारात्मकता को नकार कर बड़ी नहीं हुई है।

अपनी प्रमुख कहानियों, उनके समय और स्वरूप के बारे में बताइए?

पुन्नी सिंह : अगर सातवें दशक की मेरी दो कहानियाँ छोड़ दी जाएँ, तो कहानी लिखने की शुरुआत वास्तविक रूप से मैंने आठवें दशक से ही की है। उस दशक की मेरी सबसे पहली कहानी है 'जंगल का कोढ़'। मेरी यह कहानी दिल्ली से प्रकाशित पत्रिका 'कथन' में छपी थी और उससे मेरी पहचान बनी थी, हिंदी कहानी के जगत् में। अभी कुछ दिन पहले राजस्थान से प्रकाशित होने वाली एक पत्रिका में यही कहानी फिर प्रकाशित हुई है और फिर इस पर काफ़ी चर्चा हुई। आठवें दशक में लिखी गईं मेरी दो अन्य कहानियों पर और भी अच्छी चर्चा हुई और वे हैं, 'बीमारी' और 'काफ़िर तोता'। ये तीनों कहानियाँ तीन अलग-अलग विषयों पर केंद्रित हैं। अर्थात् 'जंगल का कोढ़' आदिवासी समस्या पर केंद्रित है, 'बीमारी' दलित समस्या पर और 'काफ़िर तोता' साम्प्रदायिकता पर केंद्रित है। नौवें दशक में मैंने जो कहानियाँ लिखीं, उनमें से 'हारे का हरिनाम', 'वोधन की नगड़िया' और 'इलाके की सबसे कीमती औरत' बहुत चर्चित कहानियाँ हैं। इनमें से पहली दो दलित समस्या पर केंद्रित हैं और अंतिम स्त्री-समस्या पर केंद्रित है। गत सदी के अंतिम दशक में मैंने जो कहानियाँ लिखी हैं, उनमें से 'जुम्मन मियाँ की घोड़ी', 'मोर्चा', 'नाग फाँस' बहुत चर्चित कहानियाँ रही हैं। इसके अतिरिक्त मौजूदा सदी के प्रारम्भिक छः-सात साल में मैंने जो कहानियाँ लिखीं, उनमें से 'बच्चे सवाल नहीं करते हैं', 'तराश', 'बच्चे जो स्कूल नहीं जाते हैं' आदि कहानियाँ काफ़ी चर्चा में रही हैं।

आपकी सर्वाधिक प्रिय कहानी कौन-सी है और क्यों? क्या वह आपकी प्रतिनिधि कहानी भी है?

पुन्नी सिंह : मेरी सर्वाधिक प्रिय और प्रतिनिधि कहानी 'इलाके की सबसे कीमती औरत' है। यह मैंने मात्र आठ घंटे में और लगभग एक ही सिटिंग में लिखी थी। यह कहानी हमारे इलाके में उस समय व्याप्त औरतों के खरीद-फ़रोख़्त की परम्परा से संबंधित एक घटना पर आधारित है और इस कहानी का व्यापक प्रभाव देखने को मिला था।

आपकी कथा यात्रा के प्रमुख पड़ाव और मोड़ क्या हैं, जिसने आपको स्थानीय स्तर से, प्रादेशिक स्तर, फिर राष्ट्रीय स्तर का कहानीकार बनाया है?

पुन्नी सिंह : संभवतः ऐसे कुछ पड़ाव और मोड़ मेरी कथा-यात्रा में आए नहीं हैं। हाँ, इतना अवश्य हुआ है कि मैंने कहानी लिखना अपने छात्र-जीवन में ही शुरू कर दिया था, लेकिन कुछ समय के बाद ही कहानी छोड़कर नाटक और एकांकी लिखने लगा था। बाद में आठवें दशक में फिर से कहानी लिखना शुरू किया। जहाँ तक मैं समझता हूँ कहानी में स्थानीय, प्रादेशिक और राष्ट्रीय जैसा कोई वर्गीकरण नहीं होता। जो भी कहानी लिखता है, वह अपनी समझ और सामर्थ्य के स्तर पर अच्छी-से-अच्छी कहानी लिखने की कोशिश करता है। अब यह बात दूसरी है कि वह अच्छी भी हो सकती है और खराब भी हो सकती है।

क्या आपकी रचना-प्रक्रिया से किसी प्रकार

का सामाजिक, साहित्यिक और सांस्कृतिक बदलाव हिंदी पट्टी में परिलक्षित होता है?

पुन्नी सिंह : सामाजिक परिवर्तन थोड़ी जटिल प्रक्रिया है। किसी एक लेखक या कई लेखकों की रचना प्रक्रिया भी सामाजिक परिवर्तन नहीं ला सकती। क्योंकि उस परिवर्तन के लिए सामाजिक और राजनैतिक तत्त्वों का क्रियाशील होना ज़रूरी है। हाँ, लेखन के माध्यम से साहित्यिक और सांस्कृतिक परिवर्तन ज़रूर होते हैं। मेरी कहानियों के माध्यम से वह सब हुआ है। मैंने कहानी को एक नई भाषा दी और उस तरह की भाषा के प्रति अनेक लेखक आकर्षित हुए हैं। मैंने जनजातीय 'सहरिया' कौम पर एक उपन्यास और एक दर्जन से अधिक कहानियाँ लिखी हैं। सिर्फ़ मेरे ही साहित्यिक प्रयास से राजस्थान और बिहार के अनेक सामाजिक कार्यकर्ता और लेखकों को उस जनजाति का सत मालूम हुआ। मेरे उपन्यास पर लगभग पाँच जगहों पर काम हुआ है। तीन जगहों पर अभी भी पी.एच.डी. हो रही है। मेरी कहानी 'इलाके की सबसे कीमती औरत' और उसके आधार पर खेले गए नाटक ने उस इलाके में औरतों की खरीद-फ़रोख़्त जैसा कुत्सित कृत्य समाप्त करने में अहम् भूमिका निभाई है।

आपके लेखन का उद्देश्य क्या है?

पुन्नी सिंह : मेरे लेखन का उद्देश्य वही है, जो आम तौर पर लेखन का होना चाहिए। जो समाज का रूप आज बना है, उससे बेहतर समाज का रूप बनाने की प्रेरणा देना। आदमी की भुखमरी, अज्ञानता, अशिक्षा और गैरबराबरी को समाप्त करने की चेतना जगाना। आज का समाज बेलगाम होकर अनजानी राह पर जहाँ दौड़ने को तैयार खड़ा है, वहाँ साहित्य का काम है कि अगर वह समाज को लगाम न भी लगा पाए, तो सही रास्ता तो बता सकता है। यही काम मेरे जैसे तमाम लोग कर रहे हैं, अपने-अपने साहित्यिक प्रयासों से।

क्या आप आधुनिक हिंदी कहानी के विकास क्रम में अपनी भूमिका से संतुष्ट हैं? और आपकी भावी लेखन योजनाएँ क्या हैं?

पुन्नी सिंह : सामान्य तौर पर यह माना जाता है कि कला या साहित्य के क्षेत्र में कोई आदमी किसी भी स्थिति में यह स्वीकार नहीं कर सकता कि वह अपनी भूमिका से पूर्णतः संतुष्ट है, क्योंकि इस तरह संतुष्ट होने का अर्थ है उसके भविष्य के प्रयासों पर विराम लग जाना। लेकिन मैं एक दूसरे रूप में अपनी भूमिका से संतुष्ट हूँ। वह यह कि मैंने जिस विचार को लेकर कहानी लिखना स्वीकार किया था, उसको कभी त्यागा नहीं है, कहानी को जान-बूझकर किसी बितंडाबाद में उलझाया नहीं है।

khemsingh.daheriya@gmail.com

साहित्य जनकल्याण को साधता है : सुरेशचंद्र शुक्ल

- डॉ. दीपक पांडेय
नई दिल्ली, भारत

शुक्ल जी आपका हिंदी-लेखन के प्रति लगाव कैसे उत्पन्न हुआ और इसमें परिवार की क्या भूमिका है?

सुरेशचंद्र शुक्ल : दीपक जी, आइए इस पर विचार करते हैं कि व्यक्ति पर घर और समाज का कैसे प्रभाव पड़ता है, जो उसे बड़ा कलाकार, लेखक या व्यापारी बनाता है। वातावरण का बहुत प्रभाव पड़ता है किसी भी व्यक्ति के अनुभवों के भण्डार को भरने में। पहली तरह के लोग तो सोने का चम्मच लेकर पैदा होते हैं, यानि धनी के घर में जन्म लेकर या लेखक और कलाकार के घर में जन्म लेकर। दूसरी तरह के लोग लगातार प्रयास करते रहने से प्रवीण और जानकार हो जाते हैं और सफल हो जाते हैं। जैसे 'करत-करत अभ्यास जड़ मति होत सुजान'। जैसे नौकरी करते हुए पढ़ना और अपनी कला में भी लगे रहना। तीसरी तरह के लोग ये वे लोग हैं, जिनपर महानता लाद दी जाती है। जैसे व्यापारी का पिता अपने बेटे को मालिक बना देता है। कलाकार अपने बेटे को बचपन से ही कला सिखा देता है और उसमें वयस्क होने से पहले ही परिपक्वता आने लगती है। अकसर नेता के बाद उसके रिश्तेदार नेता चुन लिए जाते हैं। इसके अपवाद भी हैं।

बचपन में रामायण-पाठ, अंत्याक्षरी प्रतियोगिता, रेडियो सुनने और अखबार पढ़ने से साहित्य में रुचि पैदा हुई। मेरी स्थिति दूसरी श्रेणी में आती है, जो लगातार अभ्यास करते हैं। मेरी माता जी रोज़मर्रा के काम निपटाकर रोज़ रामायण का पाठ करती थीं। मेरे पिता जी भी रामायण पाठ करते और घर पर भी रामायण का पाठ कराते थे। इससे मुझे कक्षा चार तक ही रामचरितमानस की बहुत-सी चौपाइयाँ और दोहे कंठस्थ हो गए थे। मेरी माताजी अवकाश के दिनों में मुझे रामायण पाठ करने के बाद ही भोजन देती थीं। कक्षा पाँच में नगर महापालिका के मेरे दो अध्यापक थे - श्री रामविलास जी और नन्हा महाराज।

आपको मैं अपने लेखन के प्रति लगाव और उसमें परिवार की भूमिका विस्तार से बताता हूँ। इससे पहले आपको अपने संयुक्त परिवार से परिचित कराता हूँ।

पालन-पोषण साधारण मध्यवर्गीय परिवार में

मेरा जन्म 10 फ़रवरी, 1954 को लखनऊ में और मेरा पालन-पोषण साधारण मध्यमवर्गीय परिवार में हुआ। मेरा परिवार बड़ा संयुक्त परिवार था। मेरे दादा श्री मन्ना लाल शुक्ल के तीन पुत्र थे और चार पुत्रियाँ थीं। मेरे पिता श्री बृजमोहन लाल शुक्ल अपने और भाई-बहनों में सबसे बड़े थे। संयुक्त परिवार में रहने के कारण परिवार में एक-दूसरे के साथ बहुत प्रेम से रहते थे। मैं श्री बृजमोहन लाल शुक्ल और श्रीमती किशोरी देवी की चार संतानों में सबसे छोटा हूँ। मेरे दादा श्री मन्ना लाल शुक्ल लखनऊ में रेलवे में काम करते थे। वे लखनऊ के सवारी और माल डिब्बा कारखाना आलमबाग, लखनऊ में कार्य करते थे। वे सॉ मिल शॉप (आराघर) में मिस्त्री थे। वे सन् 1962 में अवकाश प्राप्त करने के बाद लखनऊ से सुल्तानपुर चले गए थे और वहाँ आरामशीन लगाकर आजीविका चलाने लगे थे। उनके साथ मेरे दोनों चाचा और दो बूआएँ रहती थीं। सिविललाइन, सुल्तानपुर में अभी भी मेरे चाचा श्री रामगोपाल शुक्ल अपने पुत्रों, प्रवीण

और अमित तथा भतीजे विनोद व उनके परिवार के साथ रहते हैं।

दादा से सादा जीवन और ईमानदार नेतृत्व की सीख

मुझे अपने दादा से सादा जीवन और ईमानदार नेतृत्व की सीख मिली थी। वह आजीवन हलके गेरुए रंग का कुर्ता, सफ़ेद धोती, सर पर हलके गेरुए रंग (कुर्ते के रंग की टोपी), पाँव में किरमिच के जूते पहनते थे। उनकी बड़ी मूँछें थीं और मस्तक पर चन्दन का गोल टीका लगाते थे। मेरे बाबा ईमानदार मज़दूर नेता थे। उनका कहना था कि ईमानदार होना नेता का पहला गुण होना चाहिए। दूसरा उनका कहना था परिवार के प्रति ज़िम्मेदारी निभाते हुए यानि नौकरी या व्यापार करते हुए समाज-सेवा करनी चाहिए। जैसे कबीरदास जी, जो अपना जुलाहे का कार्य करते हुए भक्ति भी करते थे और संतों की संगति भी। आपके कार्य से अधिकतर लोग घर में सहमति रखते हों। इसीलिए मेरे दादा जी कहते थे कि यदि आपको बाहर समाज-सेवा करनी है, तब घर में सभी का सहमत होना ज़रूरी है। अपने दादा को मैं बाबा जी कहकर पुकारता था और वे मुझे सुरेश बाबू कहकर सम्बोधित करते थे। मेरे प्यारे बाबा, जब हम उनसे विदा होते थे, तब रामायण की चौपाई से विदाई देते थे और मंगलकामना करते थे। "प्रविष नगर कीजै सब काजा। हृदय राखि कोशलपुर राजा।।" जो चौपाइयाँ वे अकसर दोहराते थे, वे मेरे पिताजी की भी प्रिय चौपाइयाँ थीं - "मंगल भवन अमंगल हारी। द्रवहु सुदसरथ अजिर बिहारी।।" या "वर माँगहु कृपा निकेता। बसहुँ हृदय सिय अनुज समेता।।"

मेरी दादी बहुत धार्मिक थीं। दादा बहुत परिश्रमी। मेरे दादा महात्मा गांधी जी की तरह अपने कार्य में कोई शर्म नहीं करते थे। अतः सुबह स्नान करने से पहले घर की नालियों की सफ़ाई स्वयं कर लेते थे और अपने साथ काम करने वालों का बहुत सम्मान करते थे। दादी पूरणमासी को नदी में सपरिवार स्नान करती और दान-दक्षिणा देकर पुण्य कमाती थीं। दादी के साथ बहुत बार हम सुल्तानपुर में चाहे गर्मी हो या सर्दी सुबह पाँच बजे सीता कुंड गोमती नदी में स्नान करने जाया करते थे। घर में सभी पूजा-पाठ करते थे। दादी अपने साथ पड़ोस के परिचित घरों में मुझे ले जातीं और मुझसे रामायण की चौपाइयाँ सुनाने को कहतीं और मुझे रामायण की चौपाइयाँ और दोहे सुनाने पर उनसे और दूसरों से शाबाशी मिलती।

माँ से कठिन परिश्रम और नियमित रामायण पढ़ना सीखा

मेरी दादी और मेरी माताजी रोज़ नियमित रामायण का पाठ करती थीं। अपने विवाह तक मेरी माँ पढ़ी नहीं थीं। अतः पिताजी ने उन्हें घर पर ही पढ़ाया और संगीत की भी शिक्षा दी थी। मेरी माँ ने स्वयं सिलाई, बुनाई और बेंत की कुर्सी और मेज़ बुनना सीखा था। गरीबी के कारण मेरी माँ चरखे पर सूत कातती थीं और उन्होंने गाय पाल रखी थी। पिताजी खादी भंडार/गांधी आश्रम से सूत के बदले कपड़ा ले आते थे, जिससे हमारी कमीज़ों का इंतज़ाम हो जाता था। और गाय से घर में दूध-दही की कमी पूरी हो जाती थी। घर में धार्मिक-सांस्कृतिक वातावरण ने मेरे अन्दर धार्मिक साहित्य के प्रति प्रेम जागृत किया और बचपन में ही भाषा के अनेक संस्कार मिलने लगे, जिसमें अवधी का वर्चस्व रहा। जब स्कूल जाने लगा, तो खड़ी बोली हिंदी के ज्ञान में भी बढ़ोतरी हुई। पिताजी के रेडियो सुनने के शौक से और रविवार को समाचार-पत्र का साप्ताहिक परिशिष्ट पढ़ने से रेडियो में नाटक और देहाती रेडियो के नियमित सुनने के कारण भाषाई संस्कार पुख्ता होते गए। जब मैं कहीं भी कोई रचना सुनाता, तो पिताजी खुश होते थे। मेरी

माँ से भी मेरी तारीफ़ करते थे।

आपने बहुत विस्तार से अपने सृजनात्मक जीवन में परिवार के अवदान की चर्चा की। हम यह जानना चाहते हैं कि हिंदी-लेखन की दिशा में किन भारतीय साहित्यकारों ने आपका मार्ग प्रशस्त किया।

सुरेशचंद्र शुक्ल : मेरा साहित्य में कोई गुरु नहीं रहा। अनेक भारतीय साहित्यकारों के संपर्क में आया और अपने विद्यालयीय जीवन में मिला और उन्हें सुना भी। बचपन से लेकर स्कूल के समय तक अंत्याक्षरी- प्रतियोगिता और काव्य-प्रतियोगिता में भाग लेने में पाठ्य-पुस्तकों और अखबारों में छपी रचनाएँ मेरे काम आईं। जो देखता था उसे अपने अनुसार लिखने का प्रयास करता। कविता में जयशंकर प्रसाद और कहानी में प्रेमचंद बहुत से युवाओं को लुभाते रहे हैं और मैं भी उनकी रचनाओं के प्रभाव से बच नहीं सका। चूँकि जब मैं हाईस्कूल में पढ़ता था, मैंने रेलवे में नौकरी करना शुरू कर दिया था। अतः वहाँ स्थित पुस्तकालय में रोज़ एक घंटा पत्रिकाएँ पढ़ता था। ये पत्रिकाएँ थीं 'कादम्बिनी', 'नवनीत', 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' और 'धर्मयुग' आदि। इसी के साथ ही, जो भी कागज़ का टुकड़ा मिल जाता, उसी पर लिख लेता था। उसे पुनः सादे कागज़ पर कार्बन के साथ दुबारा कॉपी बनाकर लिख लिया करता था। कभी-कभी तो ताज़ी लिखी कविता को कारखाने से घर लौटने के पहले 'स्वतंत्र भारत' या 'नवजीवन' अखबार में छपने के लिए दे आता था। अनेक बार सामयिक विषय पर लिखी कविता दूसरे दिन समाचार-पत्र में छपी मिल जाती थी, तो बहुत खुशी होती थी। बिना किसी की पहचान और सिफ़ारिश से अपनी रचना के माध्यम से लेखक के नाते सम्पादकों को जानने लगा था। मैं नौकरी के साथ नियमित विद्यालय में पढ़ता भी था। अतः हमेशा अपनी कक्षाओं में नहीं जा पाता था। अध्यापकों के स्नेह और सहयोग तथा सम्पादकों के प्रोत्साहन ने मेरे लेखन में रुचि बढ़ाने में सहयोग दिया।

शुक्ल जी, आपके प्रिय हिंदी लेखक कौन-कौन हैं?

सुरेशचंद्र शुक्ल : मुझे बहुत से हिंदी लेखक पसंद हैं। इनमें गोस्वामी तुलसीदास, जयशंकर प्रसाद, प्रेमचंद ज़्यादा प्रिय रहे हैं। मैंने रामधारी सिंह दिनकर और रवींद्रनाथ टैगोर को भी पढ़ा है। अमृता प्रीतम और कुर्रतुल ऐन हैदर भी कम पसंद नहीं हैं। देश के विभाजन की कथाओं के ये दोनों श्रेष्ठ कथाकार रही हैं। चूँकि महात्मा गांधी जी को उनके सत्य और अहिंसा के सिद्धांतों ने विश्व का सर्वाधिक चर्चित और मान्यता प्राप्त दार्शनिक, मानवतावादी लेखक बना दिया था। दक्षिण अफ़्रीका में उन्होंने भेदभाव के विरुद्ध ऐसी आवाज़ उठाई कि वहाँ बहुत से कानून बदल गए और लोगों को न्याय मिला। महात्मा गांधी जी सच्चे भारतीय महापुरुष हैं, जिनसे बहुत से लेखक प्रभावित हुए हैं। मैं भी उनके विचारों से अभिभूत हुआ हूँ। वे मेरे आदर्श भी हैं। इनके लेखन में अजब का विस्तार है और ये सभी भारतीय संस्कृति के आधारभूत दार्शनिक मूल्यों को लेकर चले हैं, इसीलिए ये लेखक आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं, जितने अपने समय में थे। अपने समय की समस्याओं, परम्पराओं और चुनौतियों का वर्णन इन्होंने बहुत खूबी से किया है। अमृता प्रीतम को आज भी पंजाबी का सबसे बड़ा लेखक कहा जाता है। और कुर्रतुल ऐन हैदर की एक पुस्तक, जो प्रतिबंधित भी हुई, पर वह उर्दू में सबसे ज़्यादा बिकने वाली पुस्तक साबित हुई। सन् 1980 में नॉर्वे आने के बाद मैंने नाटककार हेनरिक इब्सेन को पढ़ा और प्रभावित हुआ, जो डेढ़ सदी पहले के रचनाकार हैं, पर मैं उनका मुरीद हो गया।

आप नॉर्वे में रहकर पत्रकारिता के साथ-साथ हिंदी साहित्य सृजन भी कर रहे हैं। नॉर्वे में हिंदी लेखन के लिए प्रोत्साहित करने वाली परिस्थितियों की जानकारी दीजिए।

सुरेशचंद्र शुक्ल : जब मैं 26 जनवरी को ओस्लो, नॉर्वे आया था, तब चारों ओर बर्फ़ थी। तापमान 22 था। चूँकि मेरी मूँछ और दाढ़ी थीं, लम्बे-लम्बे बाल थे। बेलबॉटम पैन्ट और बाटा के जूते। हुलिया अलग था। यहाँ आते ही जाड़े के जूते, जाड़े से बचने के लिए जैकेट खरीदी और दाढ़ी और मूँछ साफ़ करके दूतावास में आयोजित गणतंत्र दिवस के कार्यक्रम में गया था। वहाँ लोग हिंदी में बातचीत कर रहे थे। तब बच्चों के लिए हिंदी सीखने की कोई व्यवस्था नहीं थी। मैंने दूतावास को अपना हिंदी-प्रेम बताया, तो उन्होंने दूतावास में वहाँ काम करने वाले बच्चों के लिए हिंदी की कक्षाएँ शुरू कीं। मुझे भी वहाँ हिंदी पढ़कर अच्छा लग रहा था। यहाँ ओस्लो विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया और पहले नॉर्वेजीय भाषा सीखने लगा। यहाँ तीन घण्टे बाद समय-ही-समय था। अतः यहाँ ओस्लो से भारतीयों की संस्था इंडियन वेलफ़ेयर सोसाइटी एक पत्रिका 'परिचय' प्रकाशित करती थी, जिसे भारतीयों के आर्थिक सहयोग से प्रकाशित किया जाता था। 'परिचय' हिंदी और पंजाबी भाषा में थी। मैं 'परिचय' के हिंदी विभाग से जुड़ा और बाद में पंजाबी भाषा भी सीखी। 'परिचय' में लेखन और संपादन के साथ-साथ उसमें लेखा करने लगा। इस तरह भारतीय समाचार-पत्र और पत्रिकाएँ पढ़ने का सिलसिला चलता रहा। पत्रिका से जुड़े होने के कारण मुझे नॉर्वेजीय सरकार के विभागों में और भारतीय दूतावास के आमंत्रण मिलते। वहाँ बहुत उपयोगी जानकारियाँ मिलतीं और लोगों से मिलता।

भारत में आठ घंटे नौकरी करने के बाद पढ़ने जाता था और यहाँ तीन घंटे पढ़ने के बाद दिनभर खाली रहता था और काम करने का अवसर केवल शनिवार और रविवार को मिलता था, वह भी सप्ताह में केवल 20 घंटे काम करने की अनुमति थी। अतः स्वर्णिम अवसर लगता था। यहाँ नॉर्वेजीय साहित्य के भी संपर्क में आया, जिसने मेरे हिंदी साहित्य के ज्ञान को विस्तार दिया। कभी-कभी मैं यहाँ के बारे में समाचार और लेख भारतीय समाचार-पत्र में भेजता और वे छप जाते थे। हिंदी लेखन और शिक्षण मेरे लिए एक मिशन बन गया। वह इसलिए कि गीता के अनुसार मैंने हिंदी सेवा किसी फल की आशा के लिए नहीं की। हिंदी से प्रेम था और हिंदी और भारतीय संस्कृति का प्रचार-प्रसार कर मुझे खुशी मिलती थी और आज भी खुशी मिलती है।

आज भी भारत और विदेश में बहुत से परिचित-अपरिचित पूछते हैं कि तन-मन-धन से मैं हिंदी की सेवा क्यों कर रहा हूँ। मैं उन्हें क्या उत्तर दूँ। तुलसीदास जी की चौपाई है - "जाके पाँव न फाटे बेवायीं। वो का जाने प्रीत पराई।।" मैं देश-विदेश के युवाओं से कहना चाहता हूँ कि यदि आप शारीरिक रूप से कमज़ोर भी हैं और आप अपने लक्ष्य की प्राप्ति करना चाहते हैं, तो आप उस कार्य से प्रेम कीजिए, परिश्रम कीजिए। आपको वह कार्य अच्छा लगेगा और खुशी मिलेगी। इस दशा में आपको सफलता से लक्ष्य की प्राप्ति होगी।

पहले मैं यहाँ उर्दू-पंजाबी भाषी लोगों की गोष्ठी और नॉर्वेजीय गोष्ठी में शामिल होता रहा। सन् 1988 में एक नई भारतीय संस्था 'भारतीय-नॉर्वेजीय सूचना एवं सांस्कृतिक फ़ोरम' की स्थापना की और 'स्पाइल दर्पण' पत्रिका का प्रकाशन और सम्पादन शुरू किया। 'स्पाइल' द्वैमासिक पत्रिका है और हिंदी और नॉर्वेजीय भाषा में संयुक्त रूप से प्रकाशित होना प्रारम्भ हुई। चूँकि सन् 1984 से 1986 तक मैंने नॉर्वेजियन कॉलिज आफ़ जर्नलिज़्म में पत्रकारिता की शिक्षा प्राप्त की और यहाँ नॉर्वे में पत्रकारिता की शिक्षा प्राप्त

करने वाला पहला भारतीय था। इससे पत्रकारिता की विधिवत जानकारियाँ प्राप्त कीं और ज्ञान के साथ नॉर्वे की पत्रकारिता और यहाँ के आधारभूत मूल्यों को सीखने का अवसर मिला। इससे मेरा लेखन प्रायोगिक, तार्किक और सामयिक हो गया, जो आज की आवश्यकता भी है। अपनी संस्था की तरफ़ से लेखक गोष्ठियाँ तथा सांस्कृतिक कार्यक्रम आयोजित करने लगा, जिसमें भारतीयों ने बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया। ओस्लो और कोपेनहेगन विश्वविद्यालय में कुछ समय अतिथि अध्यापक के रूप में अध्यापन किया।

पत्रिका 'स्पाइल दर्पण' के माध्यम से स्वयं भी हिंदी और नॉर्वेजीय भाषा में लेखन करता और दूसरों को भी लिखने के लिए प्रेरित करता और उन्हें सम्पादित करके प्रकाशित करता। मैंने रेडियो में वार्ता और साक्षात्कार के माध्यम से भी शौखिया सेवा की।

शुक्ल जी, आपका नॉर्वे प्रवास किन परिस्थितियों में हुआ? क्या आप हिंदी के अतिरिक्त अन्य भाषाओं में भी लिख रहे हैं?

सुरेशचंद्र शुक्ल : जब मैंने डी.ए.वी. इंटर कॉलिज, लखनऊ से 1975 में इंटर पास किया, तब मेरा पहला काव्य-संग्रह 'वेदना' प्रकाशित हुआ था। लखनऊ से प्रकाशित 'श्रमांचल' साप्ताहिक में अवैतनिक सहायक संपादक बना और लेखन करने लगा। जब भी नौकरी और कॉलिज से समय मिलता 'श्रमांचल' में समय देता था। जब मैं वी.एस.एन.वी. डिग्री कॉलिज, लखनऊ में बी.ए. कर रहा था, तब मुझे पता चला कि ओस्लो, नॉर्वे में एक पत्रिका 'परिचय' को एक ऐसे व्यक्ति की ज़रूरत है, जिसे हिंदी टाइपिंग आती हो और हिंदी लेखन और प्रूफ़रीडिंग कर सकता हो। मैंने अपना पासपोर्ट तो 1975 में ही बनवाकर रख लिया था। पुस्तक और 'श्रमांचल' का अनुभव भी था। वहाँ मेरे भाई भी गए हुए थे। अतः अपने पिता की मदद से मैं नॉर्वे पहुँच गया। वहाँ पहुँचकर 'परिचय' के सम्पादन में सहयोग देने लगा और ओस्लो विश्वविद्यालय में प्रवेश ले लिया। फिर ज़िंदगी की गाड़ी के साथ लेखन भी आगे बढ़ता चला गया। मैं मुख्यतः हिंदी का लेखक हूँ, परन्तु मैं नॉर्वेजीय भाषा में भी लिखता हूँ।

आप लगभग चार-पाँच दशकों से नॉर्वे में रहकर हिंदी में कार्य कर रहे हैं, कृपया यह बताइए कि हिंदी से आपको क्या मिला?

सुरेशचंद्र शुक्ल : कोई दूसरा कल्पना भी नहीं कर सकता है, जितना मुझे हिंदी से मिला है। भाषा संवाद का बड़ा माध्यम है, जिसे कोई भी भाषा आती है, वह दुनिया में बहुत कुछ कर सकता है। अवधी-हिंदी मेरी मातृभाषा है। लेखन की भाषा हिंदी है जैसा पहले कह चुका हूँ। हिंदी से मुझे पहचान मिली। हिंदी मेरी अस्मिता की पहचान है। हिंदी से मेरे लेखन को पहचान मिली, स्वीकृति मिली। लेखन से समाज में प्रतिष्ठा मिली। हिंदी ने मुझे देश-विदेश में प्रचार-प्रसार करने का अवसर दिया। शायद ही दुनिया का कोई ऐसा देश है, जहाँ हिंदी का पठन-पाठन होता हो और मेरे लेखन और हिंदी सेवा से परिचित न हो। जहाँ भी जाता हूँ मुझे परिचित लोग मिल जाते हैं। यह सब हिंदी के कारण ही है। पिछले वर्ष 2019 में भारत और नॉर्वे को छोड़कर मैंने 6 देशों की यात्रा की, वह हिंदी के लेखक होने के कारण सम्भव हुई। ये देश हैं - स्वीडन, फ़िनलैंड, स्लोवाक रिपब्लिक, हंगरी, बर्मा और अमेरिका। हिंदी के कारण मेरी समाज-सेवा को अधिक स्वीकृति मिली और मुझे देश-विदेश में अनेक सम्मान और पुरस्कार भी प्राप्त हुए।

शुक्ल जी आप साहित्य की विविध विधाओं, जैसे कविता, कहानी, नाटक के माध्यम से हिंदी

साहित्य की सेवा कर रहे हैं। आपकी पसंदीदा विधा कौन-सी है?

सुरेशचंद्र शुक्ल : सबसे पहले आपसे इन विधाओं - कविता, कहानी और नाटक के बारे में अपने विचारों से अवगत कराता हूँ।

कविता

मेरी दृष्टि में कविता साहित्य-सृजन का पहला चरण है। कविता साहित्य की वह विधा है, जिसमें विशिष्ट शैली और लय के उपयोग से भावनाओं और विचारों की अभिव्यक्ति को तीव्रता दी जाती है। हिंदी में कविता एक विधा के रूप में है। सौंदर्य की गुणवत्ता और भावनाओं की तीव्रता को कविताओं की विशेषता माना जाता है। संगीत में कविता और अग्नि अच्छी तरह से संतुलित हैं। मेरी दृष्टि में संगीत को कविता की इमारत में रखा गया है। नारे और मंत्र इसके उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

कहानी

वास्तविक और कल्पनाओं का बेहतरीन मनोरंजक लेखा-जोखा है कहानी। कहानी किसी के जीवन में या किसी चीज़ के विकास में पिछली घटनाओं का लेखा-जोखा भी है।

नाटक

नाटक जिसमें एक रोमांचक, भावनात्मक या अप्रत्याशित घटना या परिस्थिति का वर्णन होता है। नाटक मंच, रेडियो या टेलीविजन के लिए होता है। नाटक संवाद और प्रदर्शन के माध्यम से काल्पनिक प्रतिनिधित्व का एक तरीका है। यह साहित्यिक विधाओं में से एक है, जो कुछ क्रियाओं का अनुकरण है। सरल शब्दों में, नाटक पद्य और गद्य या संवाद में एक कहानी प्रस्तुत करने वाली पद्य या गद्य में एक रचना है। इसलिए मुझे नाटक बहुत लुभाता रहता है। नॉर्वे में हिंदी या उर्दू नाटक नहीं हैं। मैं चाहता हूँ कि नॉर्वे भी हिंदी नाटकों का केंद्र बने। इसके लिए ज़रूरी है कि यहाँ हिंदी नाटक लिखे जाएँ, जो यहाँ के वातावरण और आधारभूत सांस्कृतिक मूल्यों से भी परिचित हो। जब भारतीय संस्कृति को जानने वाला व्यक्ति नाटक लिखेगा और उसे मंचित करेगा, तो उसमें भारतीय संस्कृति और समाज की भी गंध होगी।

हेनरिक इब्सेन के नाटकों के अनुवाद ने भी मुझे इस विधा की तरफ़ आकर्षित किया है। मुझे नाटक विधा सर्वाधिक आकर्षित करती है। नाटक में पद्य और गद्य दोनों का समावेश भी है। मैं भविष्य में नाटक से बहुत अधिक जुड़ना चाहता हूँ। बहुत समय से मेरा स्वप्न रहा है कि मैं पूर्णरूपेण नाटककार बनूँ। शायद अब वह समय आ गया है।

आपके अनुसार कविता क्या है? वर्तमान संदर्भ में समाज के लिए कविता की क्या भूमिका है?

सुरेशचंद्र शुक्ल : युवावस्था में मैंने नारे लिखने के लिए कविता का प्रयोग किया था। मेरा पहला काव्य-संग्रह 'वेदना' सन् 1976 में प्रकाशित हुआ था, जब मैंने इंटर पास किया था। कविता के सन्दर्भ बदलते रहे हैं। कविता स्वान्तःसुखाय और जनहिताय दोनों हो सकती है। कविता में संप्रेषणीयता हो, यह छन्दबद्ध कविता में ही संभव है। गद्य का भी छंद होता है, फ़िल्मी गीत इसका उदाहरण है। कविता का विषय जन सामान्य के लिए होना चाहिए, बेशक उसका मानक निश्चित नहीं होता। कविता समाज में बहुत बड़ी भूमिका अदा कर सकती है। हमारे महान् कवियों में गोस्वामी तुलसीदास, कबीर, मीराबाई, रैदास, गुरु गोविन्द सिंह और आधुनिक कवि भी हैं, जिनके काव्य ने जनता का मार्गदर्शन किया। आज भारत और दुनिया में जो भारतीय संस्कृति है, उसमें तुलसीदास जी की छाप विद्यमान है। कैसा समाज या परिवार हो, उसमें वर्णन किया है। सोशल मीडिया में भी कविता रोदन, क्रोध,

शिकायत और हमदर्दी बनकर उपजी है। हालाँकि आज जगह-जगह आपको कवि मिल जाएँगे, उनमें गंभीरता हो और कवि अध्ययन करे और अधिक साहित्य पढ़े, तो उनकी लेखनी भी ज़्यादा प्रभाव डाल सकती है। फिर भी सोशल मीडिया की कविता संवाद तो कर रही है, जो अच्छा संकेत है।

आपकी कविताओं में भारतीयता के गुणगान और वैभव के लिए प्रोत्साहन के स्वर हैं जैसे -

"उठो जवानो, आलस त्यागो। पौरुष को अपनाओ, भारत की इस कर्मभूमि को, फिर से स्वर्ग बनाओ॥"

क्या कविता समाज में परिवर्तन का माध्यम बन सकती है?

सुरेशचंद्र शुक्ल : दीपक जी, मेरा जन्म भारत की पावन धरती पर हुआ, जहाँ पला और बड़ा हुआ। शायद ही कोई आदमी इस धरा पर हो, जिसे मातृभूमि न प्यारी हो। मैं जब नॉर्वे, स्वीडन और डेनमार्क के बच्चों को हृष्ट-पुष्ट देखता हूँ, तो मुझे लगता है कि भारत के सभी बच्चों का स्वास्थ्य भी यहाँ के बच्चों जैसा होना चाहिए। दुनिया के सभी बच्चे कोई भी ऐसा खेल नहीं है कि उन्हें मौका मिले और वे न खेल सकें और प्रवीण न हो जाएँ।

मैं हमेशा भारत को तरक्की करते हुए देखना चाहता हूँ। मैं वी.आई.पी. कल्चर नहीं मानता। उसका कारण शायद एक यह भी है कि मुझे अपने साथ-साथ पास-पड़ोस में खुशहाली और कोई भी हो किसी तरह का उसके साथ संवाद करने और साथ चाय पीने का अवसर मिले। मैं अभी पूरे भारत को नहीं जानता। मैंने पूरे भारत की यात्रा नहीं की है। जब भी भारत जाता हूँ, तब उन प्रदेशों में भी साहित्यिक कार्यक्रमों में हिस्सा लेना चाहता हूँ, जहाँ मैं अभी तक नहीं जा सका हूँ। भारत से प्रेम और बिछोह होने के कारण वहाँ की समस्या मेरी अपनी समस्या लगती है। समस्याओं के निराकरण में अपनी भूमिका भी निभाना चाहता हूँ। केवल भारत ही नहीं दुनिया में जहाँ भी अन्याय है, वहाँ न्यायपूर्ण व्यवस्था और समानता का पक्षधर हूँ। यह सबसे सुखद बात है कि भारत एक ऐसा देश है, जहाँ युवाओं की संख्या बहुत है। भारत की बड़ी समस्याओं में साक्षरता, जनसंख्या और बेरोज़गारी हैं। युवाओं में जागृति आने से हम कठिन-से-कठिन काम कर सकते हैं। इसीलिए मेरी अनेक कविताओं में युवाओं का आह्वान किया है कि वे आगे आएँ और अपनी और देश की समस्याओं का हल ढूँढने में मदद करें। मेरी अनेक कविताएँ हैं, जो भारत का मंगल चाहती हैं।

हमारा इतिहास बतलाता है कि कविता समाज में बदलाव कर सकती है। गोस्वामी तुलसीदास, संत कबीरदास, गुरु नानक देव जी आदि ने समाज में बदलाव लाने के लिए कविताओं का सहारा लिया, उसे माध्यम बनाया। मैंने भी आरम्भ में कविता का प्रयोग नारे लिखने में किया। कविता, गीत-संगीत के साथ-साथ नाटक में भी प्रयोग की जाती है। कविता सवयं को नहीं बदल सकती, पर वह माध्यम बन सकती है।

'प्रवासी का अंतर्द्वंद्व' कविता-संग्रह की कविताओं में वैविध्य है, साथ ही इस संग्रह की कविताएँ समाज के विविध प्रसंगों को सामने लाती हैं। इन कविताओं की सृजन प्रक्रिया के बारे में बताइए?

सुरेशचंद्र शुक्ल : प्रवासी के अंतर्द्वंद्व पर प्रो. डॉ. निर्मला एस. मौर्य जी लिखती हैं, "कवि मानवीय संवेदना को अपने अंतर्मन में समेटे हुए मनुष्य और सृष्टि का स्पर्श करते हैं। साहित्य केवल बुद्धि विलास का विषय नहीं है और यह जीवन की उपेक्षा करके भी जीवित नहीं रह सकता, सुरेश जी की कविताएँ इस बात का साक्षात प्रमाण हैं। उन्होंने यह सिद्ध

कर दिया कि वे साहित्य के सच्चे उपासक हैं और उन्होंने कभी भी अपने देश की मिट्टी की उपेक्षा नहीं की। उन्होंने एक तरफ़ बाह्य जगत के सौंदर्य और उसकी कुरूपता का ही वर्णन नहीं किया है, अपितु आंतरिक सौंदर्य की भी रोपाई करने का प्रयास किया है, दो विरोधी तत्त्वों का सामंजस्य उनकी कविताओं का प्राण बिंदु है। कवि ने विचारों के धागे में संवेदनाओं के पुष्प गूँथे हैं।"

आज विश्व अनेक समस्याओं से गुज़र रहा है। हम मनुष्यों ने प्रकृति का ज़रूरत से ज़्यादा दोहन किया है। आज प्रदूषण की बड़ी समस्या भी इसका परिणाम है। हमने जंगल काट दिए हैं। अतः इसी कारण जंगल में रहने वाले बन्दर और अनेक पशु-पक्षी शहरी आबादी की ओर बेमन भाग रहे हैं। यदि कवि मन में इन स्थितियों से उत्पन्न स्थिति और बदलते वातावरण में चुनौतियाँ, यदि समाज के लिए हैं, तो पहले रचनाकार के लिए है। उसकी रचनाओं में यह स्पष्ट देखा जा सकता है। भारतीय संस्कृति से उपजी परम्पराओं में दैनिक कार्य में सफ़ाई और दूरी से इस बीमारी से अभावों में भी लड़ने की ताकत मिली है, तो आश्चर्य की बात नहीं। प्राचीनकाल में भारत बहुत विकसित रहा है, पर आज अपने भारत में पूर्ण साक्षरता का न होने और शिक्षा के अभाव के कारण अनेक अनचाही समस्याएँ भी सुरसा की तरह मुँह फैलाए द्वार पर खड़ी हैं। अधिक जनसंख्या से भारत में एक न दिखने वाली भयावह स्थिति बन गई है। हम कितने भी साधन-सम्पन्न क्यों न हो जाएँ, पर यदि जनसंख्या पर रोक नहीं लगेगी, इसके लिए सभी को साक्षर नहीं किया जाएगा, तो हम और विकट स्थिति में पहुँच जाएँगे। अंधविश्वास को कहीं भी सही नहीं ठहराया जा सकता। अतः मेरी रचनाओं में उनका वर्णन है। मेरे आसपास जो भी घटना घटती है या उसे टी.वी. पर देखता हूँ और अखबारों में पढ़ता हूँ, तब अध्ययन करके उस पर कुछ यदि लिखा गया, तो मेरे जैसे रचनाकार के लिखने की सार्थकता है।

आज जब कोरोना-वायरस कोविद-19 से दुनिया कराह उठी। सबसे अधिक आर्थिक समृद्ध/विकसित देश से लेकर गरीब देश भी उसकी चपेट में आए हैं। अनेक देशों में समुचित सराहनीय प्रयास हो रहे हैं। उसमें भारत भी शामिल है। पर यह भी दूसरी तरफ़ एक कैसा विरोधाभास या विविधता है कि कोरोना महामारी/संकट के चलते आज भी सीरिया में बमबारी जारी है। युद्ध चल रहा है। कवि कैसे युद्ध के विरुद्ध न लिखे। वहाँ पर मानवीय अत्याचार के विरुद्ध आवाज़ विश्व के सामने कैसे न उठाए, ताकि युद्ध समाप्त हो। युद्ध और अन्य आपदाओं से परेशान लोगों को एक नई ज़िंदगी मिले। पाठक रचनाएँ पढ़कर पिघलें और इस ओर भी उनका ध्यान जाए।

शुक्ल जी, कविता का सौंदर्यशास्त्र, कविता के अनेक सोपानों को कविता के प्रमुख तत्त्व स्वीकार करता है, इसी संदर्भ में आपसे जानना चाहता हूँ कि कविता के लिए भाषाई कलात्मकता कितनी महत्त्वपूर्ण होती है?

सुरेशचंद्र शुक्ल : हालाँकि मैं स्पष्ट कर दूँ कि मैं लेखक मज़दूर हूँ, कारीगर नहीं। इससे इनकार नहीं किया जा सकता कि सम्प्रेषण और संवाद का मुख्य माध्यम भाषा है। भाषायी कलात्मकता बहुत ज़रूरी है, पर कलात्मकता के चक्कर में कहीं संवाद शिथिल न हो जाए, यह भी बहुत ज़रूरी है। मेरी दृष्टि से कविता पाठकों, श्रोताओं और दर्शकों के बीच संवाद है। यह संवाद गद्यात्मक भी हो सकता है और पद्यात्मक भी। जैसे नाटक में दोनों पक्ष आ जाते हैं। छंदोबद्ध कविता को प्रायः कलात्मक कविता कहा जा सकता है। छंदोबद्ध कविता छंदमुक्त कविता की अपेक्षा ज़्यादा सम्प्रेषणीय है। जयशंकर प्रसाद, महादेवी, निराला और अज्ञेय सभी ने अपने तरीके से अपनी-अपनी बात अपनी रचनाओं में की है। ये

सभी सिद्धहस्त कवि हैं और कलात्मक कविताओं के चार खम्भे हैं। कहीं-कहीं मेरी कविताओं में इनकी शैली मिल सकती है, पर मौलिक विचारों और नए दौर की नई चुनौतियाँ भी समाहित हुई हैं। यह विचार करके कविता नहीं लिखता हूँ कि रचना धर्म में कलात्मकता पर अधिक ध्यान देना है, परन्तु विषय, समय और पात्र के अनुसार कविता में शब्द गुथे चले जाते हैं। मेरी एक कविता है "कवि वही, जो समय का सच कहे" में लिखा है कि मेरी कविता किसके लिए और क्यों लिखी जा रही है। आज फ़ेसबुक, वॉट्सएप्प पर ऐसी कविताओं की भरमार है, जिसे कविता नहीं कहा जा सकता है। वह लाइक और वायरल के मध्य घूम रही है। अनेक कविताओं में पूर्ववर्ती कवियों की अनेक पंक्तियाँ ज्यों-की-त्यों रख दी गई हैं। इनकी संख्या मेरी दृष्टि में 90 प्रतिशत से अधिक है। केवल सपाट बयानी सही मायने में कविता नहीं हो सकती।

आपका लम्बे समय से नॉर्वे में प्रवास है, मेरी जिज्ञासा है कि भारत और नॉर्वे के द्विपक्षीय संबंधों को मज़बूत बनाने में हिंदी भाषा कैसे सहायक है?

सुरेशचंद्र शुक्ल : मेरे मौलिक लेखन और अनुवाद दोनों ने भारत और नॉर्वे के मध्य द्विपक्षीय संबंधों को प्रगाढ़ बनाने में बड़ी भूमिका अदा की हैं। यह दोनों देशों के साहित्यकारों और राजनयिकों का कहना है। मैंने नॉर्वे के चुने हुए साहित्य का प्रचुर मात्रा में अनुवाद किया है। उदाहरण के लिए नॉर्वे की कविताओं, नॉर्वेजीय लोककथाओं, कहानियों और हेनरिक इब्सेन के नाटकों का अनुवाद किया है। कविता और नाटक का अनुवाद एक मायने में उस रचना को दोबारा लिखना होता है।

मैंने नॉर्वे के अतिरिक्त स्वीडन की कविताओं और डेनमार्क में एच.सी. अन्दर्सन की कथाओं का भी अनुवाद हिंदी में किया है। और अनेक पुस्तकें हैं। इसी के साथ मैं एक चीज़ जोड़ना चाहूँगा कि राजनीति दो और अनेक देशों के बीच में संबंधों को मज़बूत बनाने में बहुत बड़ी भूमिका निभाती है। मैंने नॉर्वे में साहित्यकार होने के अलावा राजनीति में सक्रीय भाग लेकर दोनों देशों के मध्य अनेक कार्यों को महत्त्व दिलाने के लिए अपनी संस्कृति और भाषा को लेकर अपना अधिकार जताया है और अपनी बात कही है। इससे भी बहुत असर पड़ा है। नॉर्वे में भारतीय राजदूतों और भारत में नॉर्वेजीय राजदूतों ने मेरे राजनैतिक कार्यों और प्रयासों की प्रशंसा की है और धन्यवाद दिया है।

आपके साहित्य सृजन से 'गंगा की वापसी' हिंदी संसार को मिला है। कृपया इस उपन्यास के कथ्य के बारे में बताइए और इसकी मूल संवेदना क्या है?

सुरेशचंद्र शुक्ल : गंगा की वापसी के मुख्य पात्र मनोहरलाल के जीवन के इर्द-गिर्द घूमती है। उसके पिता पाकिस्तान के बँटवारे में भारत आ गए थे। माता-पिता से उसे पंजाबी संस्कृति और भाषा मिली। लखनऊ में उसके पिता की कपड़े की दुकान थी। पिता द्वारा बड़ी मुश्किल से फ़ीस देना और उसे काम ढूँढने के लिए ताने देना अच्छा नहीं लगता। मनोहर पढ़ना चाहता है। पिता के दबाव के कारण, पिता की आमदनी बढ़ाने के लिए वह रविवार को बाज़ारों में चुनरियाँ और पेटीकोट आदि बेचता है। पढ़ाई के साथ अपने जेब खर्च चलाने के लिए उसने ट्यूशन पढ़ाना शुरू किया। 'गंगा की वापसी' भारत विभाजन के बाद भारत में बसने वाले भारतीय की चुनौतियों की आरंभिक कथा से शुरू होती है। फिर जब नायक मनोहर गुरुद्वारा जाता है, तब पता चलता है कि एक भजन-मंडली आई है, जो विदेशों में भारतीय धार्मिक स्थलों में शब्द-कीर्तन का पाठ करती है। उनसे विदेशों में तरक्की के सपने दिखाई देते हैं। इस उपन्यास में पहले

मनोहर के श्रम और पढ़ाई के लिए संघर्ष से कहानी शुरू होती है, फिर श्रम और प्रतिभा के देशांतर पलायन की कहानी आती है। देश से भागकर दूसरे देश में बसने की इच्छा से वह मुंबई में पानी के जहाज़ में नौकरी करता है, फिर किसी तरह घूमता हुआ ग्रीस (यूनान), यूरोप पहुँचता है। पलायन करने वाले भारतीय के मन में देश की धरती के लिए उठी पीड़ा का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करता है। पूरे उपन्यास की कथा भारत से यूनान होते हुए नॉर्वे तक चलती है। युवकों को आजीविका के लिए संघर्ष करना पड़ता है, फिर भी सफलता नहीं मिलती, तो बेहतर ज़िंदगी की तलाश में प्रतिभाओं का पलायन होता है और मनोहर भी यही करता है। 'गंगा की वापसी' एक प्रवासी भारतीय का पहले भारत में संघर्ष और बाद में दूसरे देश में संघर्ष की गाथा है। विभाजन के समय के साम्प्रदायिक दंगों की त्रासदी, हमारे देश की सामाजिक-सांस्कृतिक और धार्मिक संकट से उपजे द्वन्द्व से लेकर देशभक्ति और मानवीय सौहार्द की गाथा प्रस्तुत करता है यह उपन्यास।

डॉ. सुरेश शुक्ल जी, आप नॉर्वे के विशिष्ट प्रवासी भारतीय हैं, इस विशिष्टता के क्या कारण हैं और कैसा महसूस करते हैं?

सुरेशचंद्र शुक्ल : आदमी तीन तरह से सफल या विशिष्ट बनता है। एक तो जब वह बहुत संपन्न और विद्वानों के परिवार में जन्म लेता है। अतः उस वातावरण में अधिक संस्कार और तरक्की के अवसर होते हैं। जैसे व्यापारी की संतान व्यापारी या चिकित्सक की संतान चिकित्सक और वकील आदि। इसमें अपवाद भी हैं। कुछ पर महानता लाद दी जाती है, जैसे मैं किसी गुरु का शिष्य होऊँ और बड़ी मेहनत और लगन से उसकी सेवा करूँ और उसके बाद गद्दी मुझे मिल जाए। या वह चुनाव में जीतकर मिनिस्टर बने। या प्रतियोगिता में जीतकर उसे कोई मेडल मिले आदि। अनेक लोग सरकार के सहयोग से बड़े व्यापारी बन जाते हैं। कभी-कभी संगठन भी अपने प्रतिभाशाली सदस्य को अपना नेता चुन लेती है। मैं तीसरी श्रेणी में आता हूँ, मुझे कुछ अतिरिक्त नहीं मिलता। जितना अधिक लगन से समय के हिसाब से अध्ययन और लगन से कठिन परिश्रम और ईमानदारी से अपने फ़र्ज़ निभाने से लोगों का प्यार और पद मिलता है। तीसरी श्रेणी वाला व्यक्ति कभी गरीब नहीं होता और वह पढ़े-लिखे समाज से लेकर लगभग सभी समाज की मुख्य धारा से जुड़ा होता है। मैं अपने को विशिष्ट नहीं मानता, पर नॉर्वे में हमारी राजनैतिक पार्टियों ने अनेक बार उन प्रतिनिधि-मंडलों में चुना, जो यूरोपीय देशों में अधिक व्यापार बनाने की गरज से गए थे। भारत सरकार ने विश्व हिंदी सम्मेलनों से पूर्व सलाह ली और अनेक फ़ैसलों में मेरे विचारों को सम्मिलत किया। पर जैसा होता है, भारत में कार्य कर्मचारी करता है और फल नेता या उसका बॉस लेता है। यह मालूम होते हुए भी कि चिल्लाने से माँ उस बच्चे को पहले दूध पिलाती है। पर नॉर्वे में मैंने सीखा कि अपने योगदान के लिए चीखने-चिल्लाने की ज़रूरत नहीं होती है। नॉर्वे में भी लोग देख रहे होते हैं और समय-समय पर मेरा और अन्य कार्यकर्ताओं-लेखकों का ध्यान नॉर्वे में दिया जाता है और सम्मिलित किया जाता है। राजनीति में मैंने नॉर्वे से बहुत कुछ सीखा है, जो मेरे लिए एक बड़ी उपलब्धि है। इसी तरह आप मुझे विशिष्ट कह सकते हैं।

आपके बारे में कहा जाता है कि शुक्ल जी का शरीर नॉर्वे में रहता है, किन्तु आत्मा भारत में रहती है, यह बात कहाँ तक सटीक है ?

सुरेशचंद्र शुक्ल : मैं भी अपने प्रधानमंत्री मोदी जी की तरह अपने देश की हर समस्या से परेशान होता हूँ। हमारे प्रधानमंत्री अपने कार्यकर्ताओं से और देशवासियों से अपने मन की बात कर लेते

हैं और मैं अपने मन की बात साहित्य में करता हूँ। यहाँ अखबार, रेडियो और गोष्ठियों के माध्यम से या कहिए रचनाओं के माध्यम से संवाद करता हूँ। कोई भी ऐसा घंटा नहीं बीतता होगा कि मैं भारत के बारे में अपने मिलने वाले से बातचीत में ज़िक्र न करता होऊँ। कई बार तो रचना किसी अन्य विषय पर लिख रहा होता हूँ, तब भी किसी बहाने भारत पहुँच जाता हूँ। मेरा एक अच्छा मित्र दिनेश पोरवाल था। उसने मुझे कई पत्र लिखे कि मैं भारत आ जाऊँ। मेरे पिता अपनी मृत्यु 1992 के पहले तक लिखते रहे कि मैं पत्रकारिता की शिक्षा प्राप्त करके वापस भारत लौट आऊँ और भारत में रहकर देश दुनिया के लिए काम करूँ। पान दरीबा लखनऊ में डॉ. श्रीमती विनोद द्विवेदी भी हमेशा कहती रहीं कि यहाँ आ जाओ, यहाँ तुम्हारी ज़रूरत है। उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री जी ने वापस आने का आमंत्रण अच्छे भाव से दिया था। मैं सभी का आभारी हूँ।

ओस्लो को मुख्य रूप से दो भागों में राजनैतिक रूप से बाँटा गया है। वैसे ओस्लो के 15 भाग हैं। मुझे यह कहते हुए गर्व का अनुभव हो रहा है कि ओस्लो पूर्व में रहने वाले वे सभी लोग, जो अखबार पढ़ते हैं और रेडियो सुनते हैं, वे मुझे संस्कृतियों के बीच सेतु बनाने वाले साहित्यकर्मी के रूप में जानते और पहचानते हैं। इन सभी लोगों को मालूम है कि मेरे हृदय में भारत का दिल धड़कता है, शायद ये लोग मेरी रचनाओं में भारत पढ़-पढ़कर आदी हो गए हैं।

आप दो पत्रिकाओं 'स्पाइल दर्पण' और 'वैश्विका' का संपादन कर रहे हैं। एक संपादक को पत्रिका को नियमित प्रकाशित करने में किन समस्याओं का सामना करना पड़ता है? आपकी पत्रिकाओं के आधार स्तंभ क्या होते हैं और पत्रकारिता के मूल सिद्धांत क्या हैं?

सुरेशचंद्र शुक्ल : मेरी दृष्टि में अखबार निकालना एक सफ़ेद हाथी पालने के समान है। पत्रिका निकालने में आपको बहुत लोगों का प्रतिनिधित्व ज़रूरी है। पत्रिका प्रकाशित करना पुस्तक लिखना नहीं है। पुस्तक में आप अकेले लेखक होते हैं और आप एक मायने में अधिक स्वतंत्र होते हैं।

पत्रिका का एक पाठक वर्ग होता है। पत्रिका किसके लिए प्रकाशित की जा रही है। व्यापार अथवा चिकित्सा पर अथवा कृषि पर पत्रिका हो सकती है। लखनऊ, भारत में 1975-77 में मैं साप्ताहिक पत्र 'श्रमांचल' से जुड़ा। यहाँ मुझे सहायक संपादक का दायित्व सौंपा गया। मैं स्वयं कॉलिज में पढ़ता भी था और रेलवे में आठ घंटे की नौकरी भी करता था। अतः पत्रिका के ग्राहक बनाना और अपनी रचनाएँ लिखना भी कार्य था। खाली समय में मुझे पढ़ना बहुत अच्छा लगता था। उस समय मैं लिखना सीख रहा था। 1976 में मेरा पहला काव्य-संग्रह प्रकाशित हो चुका था। आपातकाल के समय सारे स्कूल-कॉलिज भी प्रभावित हुए और जो बी.ए. की पढ़ाई दो वर्ष में पूरी होनी चाहिए, वह तीन साल में पूरी हुई। चूँकि जब जनवरी 1980 में नॉर्वे आया, तब यहाँ प्रकाशित हो रही पत्रिका 'परिचय' के हिंदी विभाग में सम्पादन किया। यहाँ भी हम इंदौर से 'नई दुनिया' मँगाते थे और कभी-कभी दूतावास से 'हिन्दस्तान' अखबार मिल जाता था। यहाँ एक मुख्य पुस्तकालय में हिंदी की बहुत पुस्तकें थीं, वहाँ से भी कभी-कभी पुस्तकें लेकर पढ़ता था।

पत्रिका का पालन-पोषण एक बच्चे की तरह किया जाता है

ओस्लो में सबसे बड़ी समस्या थी कि छपाई के पैसे कैसे आएँगे? फिर इसमें सामग्री क्या हो? आपस में बैठक करके तय करते थे। विषय और

उसकी सामग्री का क्या स्रोत होगा, उस पर विचार करते थे। किसी को भी पत्रकारिता का अनुभव नहीं था। बच्चे के नखरे उठाए जाते हैं और पत्रिका को चलाने में भी आपको भारतीय लोगों की बातें सुननी होती थीं।

पाठकों की पढ़ने में रुचि बढ़े उस पर सदा ध्यान देना

अधिक-से-अधिक लोग जुड़े, तो हम भारतीय बच्चों के जन्मदिन पर चित्र छापने लगे। भारतीय और नॉर्वेजीय त्योहारों के बारे में रचनाएँ आमंत्रित करते थे। नॉर्वे में कौन-सा नया कानून बना या कौन-सा बदलाव आया, उसे भी हिंदी में लिखना शुरू किया। चूँकि यह पत्रिका नॉर्वे वासियों को भी समझ आए। अतः उसमें अंग्रेज़ी और नॉर्वेजीय भाषा में भी कुछ पेज छपने लगे।

सूचनाएँ और भारतीय संस्कृति पर सूचना और लेख

यहाँ भारतीय दूतावास और स्थानीय सरकार से सामंजस्य बनाए रखना होता था और उनके आमंत्रण पर जाना पड़ता था। इससे पाठकों को सूचना मिल जाती थी। अमुक बैठक और पार्टी में क्या हुआ। भारतीय तीज-त्योहारों और अपने धार्मिक पर्वों को नॉर्वे में कैसे मनाते थे; उसके चित्र सहित समाचार प्रकाशित करना। सम्पादकीय मंडल में मैं सबसे अधिक समय देता था, इसलिए बहुत कुछ सीखने को मिला। इससे नेटवर्क भी बढ़ा।

पत्रिका का स्तरीय और नियमित होना बहुत ज़रूरी है

पत्रिका का स्तरीय होना और नियमित होना बहुत ज़रूरी है। दूसरा यह कि जहाँ जिस देश में पत्रिका छप रही हो, वहाँ की सूचनाएँ, साहित्य और वहाँ के लिखने वाले और समाज और राजनीति में कार्य करने वाले भी जुड़ें, यह भी ज़रूरी है। पत्रकारिता के सिद्धांतों की जानकारी भी बहुत ज़रूरी है।

'स्पाइल दर्पण' नॉर्वे की एक बहुसांस्कृतिक पत्रिका है

'वैश्विका' भी एक सांस्कृतिक पत्रिका है। नॉर्वे में संस्कृति में खेल और फ़िल्म को भी सम्मिलित किया जाता है। मैं सबसे पहले पत्रकारिता के सिद्धांत पर बात करना आवश्यक समझता हूँ। पत्रकारिता के पाँच मुख्य सिद्धांत होते हैं।

1. सत्य और सटीकता

पत्रकार हमेशा 'सत्य' की गारंटी नहीं दे सकते, लेकिन तथ्यों को सही साबित करना पत्रकारिता का कार्डिनल सिद्धांत है। हमें हमेशा सटीकता के लिए प्रयास करना चाहिए, हमारे पास मौजूद सभी प्रासंगिक तथ्य दें और सुनिश्चित करें कि उन्हें जाँच लिया गया है। जब हम जानकारी की पुष्टि नहीं कर सकते, तब हमें ऐसा कहना चाहिए।

2. स्वतंत्रता

पत्रकारों को स्वतंत्र आवाज़ होना चाहिए; हमें राजनीतिक, कॉर्पोरेट या सांस्कृतिक विशेष हितों की ओर से औपचारिक रूप से या अनौपचारिक रूप से कार्य नहीं करना चाहिए। हमें अपने संपादकों या दर्शकों के समक्ष अपनी किसी भी राजनीतिक संबद्धता, वित्तीय व्यवस्था या अन्य व्यक्तिगत जानकारी की घोषणा नहीं करनी चाहिए, जो हितों के टकराव का कारण बन सकती है।

3. निष्पक्षता और निर्पेक्षता

अधिकांश कहानियों में कम-से-कम दो पक्ष होते हैं। जबकि हर कहानी में हर पक्ष को पेश करने की कोई बाध्यता नहीं है, फिर भी कहानियों

को संतुलित होना चाहिए और संदर्भ जोड़ना चाहिए। निष्पक्षता हमेशा संभव नहीं है, और हमेशा वांछनीय (क्रूरता या अमानवीयता के उदाहरण के लिए चेहरे पर) नहीं हो सकती है, लेकिन निष्पक्ष रिपोर्टिंग विश्वास और आत्मविश्वास का निर्माण करती है।

4. मानवता

पत्रकारों को किसी का कोई नुकसान नहीं करना चाहिए। हम जो प्रकाशित करते हैं या प्रसारित करते हैं वह दुखद हो सकता है, लेकिन हमें दूसरों के जीवन पर हमारे शब्दों और चित्रों के प्रभाव के बारे में पता होना चाहिए।

5. जवाबदेही

व्यावसायिकता और ज़िम्मेदार पत्रकारिता का एक निश्चित संकेत खुद को जवाबदेह रखने की क्षमता है। जब हम त्रुटियाँ करते हैं, तब हमें उन्हें सुधारना चाहिए और अफ़सोस कि हमारी अभिव्यक्तियों को गंभीर नहीं होना चाहिए। हम अपने दर्शकों की चिंताओं को सुनते हैं। हम यह नहीं बदल सकते हैं कि पाठक क्या लिखते हैं या कहते हैं, लेकिन जब हम अनुचित होंगे, तब हम हमेशा उपचार प्रदान करेंगे। विदेशों में हिंदी पत्रिका के लिए मिशन भाव बहुत ज़रूरी है, क्योंकि इसमें आपको धन की प्राप्ति नहीं होती, बल्कि अपना धन भी लगता है। समय भी लगता है। मेरी दृष्टि में यह सबसे बड़ी सेवा है। जिसमें भारत और नॉर्वे के मध्य सांस्कृतिक सेतु बनाने में अपने तन-मन-धन से सेवा करनी होती है और फ़ायदा सभी का होता है

एक साहित्कार को जब सूचना मिलती है कि उसके साहित्य पर कोई शोध-कार्य कर रहा है, तब वह कैसा महसूस करता है?

सुरेशचंद्र शुक्ल : पहले आपको किस्सा सुनाता हूँ कि यह पाठ्क्रम में कैसे आया और फिर उसी ओस्लो विश्वविद्यालय में मेरे प्रवासी लेखन पर शोध हुआ। जब मैं ओस्लो विश्वविद्यालय में नॉर्वेजीय भाषा सीख रहा था, तब मैंने नॉर्वेजीय भाषा में कविता लिखने का प्रयास शुरू कर दिया था। एल्से रीएन, जो द्रामिन शहर की थीं, ने मेरी कविताओं को 1982 में ओस्लो विश्वविद्यालय में नॉर्वेजीय भाषा पढ़ने वालों के लिए कविताएँ और नॉर्वेजीय समाचार-पत्र में प्रकाशित मेरा साक्षात्कार पाठ्यक्रम में शामिल कराया था। वह विश्विद्यालय में हमको पढ़ाने के अलावा जो चिकित्सक और इंजीनियर आदि विदेशों से नॉर्वे आते थे, उनके लिए एक पाठ्यक्रम अलग था। उस पाठ्यक्रम में मुझे भी रखा गया था। मुझे एक सुखद आश्चर्य और खुशी हुई कि जहाँ पढ़ रहा हूँ, वहाँ पाठ्यक्रम में मैं भी हूँ।

मुझ पर पहला शोध नॉर्वे में ओस्लो विश्वविद्यालय में हुआ, जिसका श्रेय यहाँ मेरे राजनैतिक मित्र प्रो. क्नुत शेलस्तादली को जाता है। उन्होंने मेरे नाम का अनुमोदन किया था। जो छात्रा थी, वह भी राजनैतिक साथी थी। प्रवासी लेखकों पर शोध था, पर मेरे पास उसकी कोई प्रति नहीं है। उस समय ध्यान नहीं दिया। अब भी नहीं देना चाहता हूँ। शोध होता है, तो शोधकर्ता मेरे लेखन का अच्छा मुआयना करता है, छानबीन करता है। वह अपने गाइड/निर्देशक से काफ़ी कुछ सीखता है, पढ़ता है, मनन करता है और अपना शोध पूरा करता है। सच पूछिए, तो पहले शोध में मुझे विशेष रुचि नहीं थी। मुझे लगा कि मैं अपने राजनैतिक मित्र की सहायता कर रहा हूँ। भारत में शोध करने वाले, पुराने शोध की कॉपी और सहायता माँगते थे, तो मैं मना कर देता था, क्योंकि मैं चाहता था कि वे स्वयं मेहनत करें और परिश्रम से शोध करें और मौलिक शोध-लेखन करें। शोध होने पर गंभीरता

से अपने साहित्य-लेखन को लेता हूँ और मैं लगभग रोज़ पढ़ता भी हूँ। संतोष भी होता है कि शोध द्वारा साहित्य का मूल्यांकन भी हो रहा है, जो दूसरों के सामने भी आ रहा है।

शुक्ल जी जनवरी में आपके साथ अनेक बार चर्चा का अवसर मिला। आपके पास हिंदी के बड़े-बड़े साहित्यकारों से संबंधित संस्मरण सुनने को मिले। आपने इन अनुभवों से पाठकों को वंचित क्यों रखा है? कोई विशेष कारण है?

सुरेशचंद्र शुक्ल : जनवरी 2020 मेरे लिए बहुत खास रहा। केंद्रीय हिंदी संस्थान, दिल्ली पुस्तक मेले में भारतीय प्रकाशकों से आत्मीयता से मिला और जुड़ा और अनेक लेखकों के साथ पुस्तक मेले में जो समय बिताया वह हमेशा याद रहेगा। मेरा सौभाग्य है कि मैं बहुत से लोगों से मिला, जिन्होंने अपने क्षेत्र में अभूतपूर्व सफलता पाई, जैसे लेखन, राजनीति और सामजिक क्षेत्र के लोग। ईश्वर से यही प्रार्थना है कि मुझे अगले जन्म में भी इसी तरह गरीब परिवार में ही भेजे, पर संस्कारी परिवार में, जहाँ मेहनत करना और अपने पाँवों पर खड़े होना यानि स्वयं आत्मनिर्भर होना लक्ष्य रहे। यह केवल आलस्यवश कहिए या इसे यह भी कह सकते हैं कि इस बात पर ध्यान नहीं गया। आपके इस प्रश्न से मैं महसूस करता हूँ कि मुझे ये संस्मरण लिखने चाहिए, ताकि आने वाली पीढ़ी शायद इन अनुभवों और संस्मरणों का आनन्द ले सके और लाभान्वित हो सकें। ये अनुभव संस्मरणों के ज़रिये एक ऐसी यात्रा कर सकें, जो केवल संस्मरणों द्वारा ही संभव है क्योंकि बहुत से वे अमूल्य पात्र अब नहीं रहे। जैसा कि दीपक जी आप जानते हैं कि समय किसी की प्रतीक्षा नहीं करता। श्री राजेंद्र अवस्थी जी के साथ सन् 1985 और 1986 में जब हिंदी पत्रकारिता की ट्रेंनिंग साप्ताहिक 'हिन्दस्तान' और 'कादम्बिनी' में ले रहा था, मेरे दो साक्षात्कार कादम्बिनी में और अनेक लेख साप्ताहिक 'हिन्दस्तान' में छपे थे। चूँकि मैं राजेंद्र अवस्थी जी के घर पर रहता था, अतः बहुत से लेखकों का सुबह-शाम साक्षात्कार होता रहता था।

मैंने महात्मा गांधी जी को नहीं देखा, पर उस देश में जन्म लिया, जहाँ महात्मा गांधी जी, गुरु नानक देव जी, भगवान् गौतम बुद्ध और दयानन्द जैसे महापुरुषों ने जन्म लिया। मैं उन महानात्माओं से भी मिला, जैसे श्री कैलाश सत्यार्थी, अमर्त्य सेन और दलाई लामा आदि। लेखकों में तो संख्या बहुत अधिक है - जैनेन्द्र कुमार, अमृता प्रीतम, कुर्रतुल ऐन हैदर, सुनील गंगोपाध्याय और न जाने कितने लोग हैं, जिन्हें भुलाना मेरे लिए आसान नहीं है। विदेशों में रहने वाले विद्वानों और महापुरुषों/महान् महिलाओं की सूची भी बहुत लम्बी है। नेल्सन मंडेला, रिगोबेर्टा मेंचू, ऑक्तावियो पाश और बहुत हैं। विभिन्न भारतीय भाषाओं के लेखकों से भी मिलने का अवसर मिला है। आगे इस बात पर ध्यान दूँगा। ईश्वर की कृपा रही, तो संस्मरण लिखना शुरू करूँगा।

आप विश्व के अनेक देशों की यात्रा कर चुके हैं। आपकी कविताओं के प्राकृतिक सौंदर्य चिंतन में यायावरी प्रवृत्ति का क्या योगदान है?

सुरेशचंद्र शुक्ल : आप सही कहते हैं। भारत में तो यायावरी की प्रथा पुरानी है। बाबा, गुरु नानक देव जी और भगवान् बुद्ध जी बहुत बड़े यायावर थे। अनेक भारतीय लेखक मुझे पंडित राहुल सांकृतायन की तरह घुमक्कड़ कहते हैं। वे बड़े विद्वान हैं और मैं अभी अपने आप को विद्यार्थी ही मानता हूँ और मैं लेखन में अपने आप को मज़दूर मानता हूँ, कारीगर नहीं। हर देश का अपना प्राकृतिक सौंदर्य निराला है। नेपाल, बर्मा और मणिपुर और उत्तराखण्ड से हिमालय की सुन्दरता अलग-अलग विशेषताएँ ली हुई हैं। विशेषकर वहाँ

के लोगों की संस्कृति, रहन-सहन और भाषा से भी काफ़ी सीखा और आनंद लिया है। घूमना ऐसा सम्मोहन है, जिसकी लत लग जाए, तो आजीवन नहीं छूटता है। अभी पिछले वर्ष 2019 में भारत और नॉर्वे को छोड़कर 6 देशों की यात्रा करने का अवसर मिला। ये हैं - स्वीडन, फ़िनलैंड, हंगरी, स्लोवाक रिपब्लिक, बर्मा और अमेरिका। इन देशों के बारे में पढ़कर भी जो मिलता वह मुझे थोड़ा बहुत घूमकर देखने को मिला है। सभी देशों में सुख-दुख, रास्ते, घर, भोजन सब में भिन्नता होते हुए भी बहुत अच्छे और आकर्षक लगते हैं। बस नाम बदल जाते हैं। भाषा बदल जाती है, पर इशारे और प्रेम की भाषा एक है, जो सद्भाव और शान्ति के लिए ज़रूरी है। वह घूमकर, संवाद करके आसान हो जाता है।

आजकल आप क्या नया लिख रहे हैं?

सुरेशचंद्र शुक्ल : समय मिलने पर हेनरिक इब्सेन के नाटकों का अनुवाद करता हूँ। आज जो कोरोना वायरस के कारण महामारी ने पूरी दुनिया की कमर तोड़ दी है, उससे मैं भी द्रवित हूँ और समझने में नाकाम हूँ कि इस महामारी के बाद भी सीरिया में युद्ध जारी है। साम्प्रदायिकता को लेकर मॉब-लिंचिंग होती है। दुनिया में बहुत से लोग बेरोज़गार हो रहे हैं। कहीं सूखा और कहीं बाढ़। पर्यावरण को बचाना ज़रूरी है, प्रदूषण और साफ़ पानी और हवा भी चुनौतियाँ हैं। इस पर भी लिखने और कुछ करने की इच्छा होती है। यह समझ लीजिए उस मछली की तरह हूँ, जो पानी बिना तड़पा अधिक है और कौए की तरह चीखने से ज़्यादा नहीं कर पा रहा है।

भारत के सन्दर्भ में वहाँ बढ़ी हुई जनसंख्या, साक्षरता, महामारी के कारण बढ़ती गरीबी से बहुत द्रवित हूँ। उस पर भी कभी कविताएँ, लेख आदि समाचार-पत्रों में भेजता रहता हूँ। शहर से गाँव वापसी और लघु उद्योग यदि घर-घर हो जाए, तो बात ही क्या है। महात्मा गांधी जी भी भारत को लघु उद्योग वाला देश बनाना चाहते थे। हो सकता है कि आपने जो प्रश्न पूछा है, तो संस्मरण की पुस्तक और एक कविता-संग्रह इस वर्ष के अंत तक आ जाएँगे। बाकी ईश्वर की मर्ज़ी और समय बताएगा।

शुक्ल जी, आपने हमारे प्रश्नों के उत्तर देकर हमें अनुगृहित किया, हम आपके आभारी हैं।

सुरेशचंद्र शुक्ल : दीपक जी विदेश में रहकर भी यदि कोई भूले-भटके भी रात में भी फ़ोन कर देता है, तो उससे बातचीत करके मुझे खुशी होती है। आपने साक्षात्कार लिया, यह मेरे लिए खुशी की बात है और आपका स्वागत है, कभी भी आप दिन-रात जब ज़रूरी हो फ़ोन या पत्र द्वारा संपर्क करें, मुझे खुशी होगी। आशा है इससे पाठक भी अभिभूत होंगे। मेरा जीवन खुली किताब की तरह है। आपके साथ इसी तरह आने वाले दिनों में वे पृष्ठ भी खुलते रहेंगे, जो अभी बंद हैं। आपको भी धन्यवाद और दुबारा स्वागत है!

dkp410@gmail.com
deepakpandey.edu@gov.in

हिंदी भाषा एवं साहित्य सेवी श्री हीरालाल लीलाधर की संक्षिप्त जीवनी

- श्रीमती चन्द्रकला लीलाधर
लालमाटी, मॉरीशस

मॉरीशस के हिंदी साहित्याकाश में चमकने वाला वह सूर्य या चन्द्र तो नहीं, किन्तु टिमटिमा रहे असंख्य तारों में से वह एक अवश्य है। सूर्य और चाँद के सम्पर्क में आनेवाले टिमटिमाते तारों को तो लोग पहचान लेते हैं, लगे हाथ सूर्य के परिचय से टिमटिमा रहे तारे भी पथिकों को चमकते नज़र आते हैं, किन्तु किसी सुदूर एकाकी तारे पर शायद ही किसी की नज़र जाती हो। जब नज़दीकों से ही पर्यवेक्षकों या समीक्षकों की जिज्ञासाएँ शमित और तृप्त हो जाती हैं, तो और उद्योग कर नील नीरद में गोता लगाकर श्रम और समय का निरर्थक व्यय वे क्यों करें?

आज मैं ऐसे ही एक साहित्य और भाषा सेवी पर प्रकाश डालने की चेष्टा कर रही हूँ। मॉरीशस का साहित्याकाश विशाल तो नहीं। उंगलियों पर सूर्य, चन्द्र और नज़दीकी नक्षत्रों को देखा-गिना जा सकता है, फिर भी शायद ही किसी समीक्षक या साहित्य के इतिहासकार की नज़र हमारे इस तारे पर पड़ी हो।

हम एक हिंदी-सेवी या साहित्य-सेवी की बात करने जा रहे हैं। आगे बढ़ने से पहले यह जान लेना ज़रूरी लग रहा कि सेवी कौन होता है? वैसे, सेवी और सेवक में अन्तर तो है, चाहे दोनों सेवा करते हैं। एक की सेवा शौक के लिए होती है, जबकि दूसरे की मजबूरी होती है। शौक में स्वान्त:सुख होता है। उस में फल की अपेक्षा नहीं रहती। मिल जाए, तो मिल जाए। उन्हें अपने उद्देश्य की पूर्ति से मतलब रहता है। वह स्वतंत्र होता है, जबकि सेवक स्वतंत्र नहीं होता। वह अपनी ड्यूटी करता है और बदले में वेतन पाता है। ऐसी ड्यूटी करने के लिए सारी सुविधाएँ भी उपलब्ध रहती हैं।

हमारे साहित्याकाश में गौर से देखा जाए, तो अकसर ड्यूटी करने वाले कर्मकार ही नज़र आएँगे। ये कर्मकार पथिकों की नज़र में चाँद-सूरज के पास होते हैं और दूर टिमटिमा रहे एकाकी सेवी वन-पुष्प बन मुरझाते रहते हैं। किसी को उनके होने, न होने का पता ही नहीं रहता।

आज जिसकी चर्चा मैं करने जा रही हूँ, हिंदी का कर्मकार तो रहा ही, साथ में सेवी की कोटि में भी आ जाता है। उसका जन्म एक ऐसे परिवार में हुआ, जिसके सारे सदस्य निरक्षर थे। उस परिवार में पढ़ाई का कोई महत्त्व नहीं था। गरीब दो जून की रोटी जुगाड़ लेने में ही अक्लमंदी समझते थे। बेटा छोटी उम्र से ही श्रम में पिता का हाथ बँटाने लगा, तो बड़ा होकर वह जमकर परिश्रम करने लगा, ताकि फिर वह रोटी के बिना भूखा नहीं मरेगा। बेटी हो, तो चूल्हे-चौके में माँ का हाथ बँटाएगी। फिर माँ कोई जानवर पाल लेगी। बच्चे दूध-दही के लिए तरसेंगे नहीं। शिक्षा से होगा क्या? बाबूगीरी या सरकारी नौकरी उनके भाग्य में कहाँ?

प्राइमेरी की शिक्षा नि:शुल्क थी, इसलिए परिवार यह चाहता था कि घर का कोई स्कूल जाकर अक्षर-ज्ञान प्राप्त कर ले। जब कभी कोई पत्र आए, तो उसे पढ़कर वह समझ जाए और ज़रूरत पड़े तो समुचित उत्तर दे सके। किसी के आगे अनुनय-विनय न करना पड़े। स्कूल जाने का अवसर अकसर बेटे को ही मिलता था। माँ-बाप अपने ज्येष्ठ पुत्र को शिक्षित करने का प्रयास करते

थे, ताकि वह अपने अनुजों को अक्षर-ज्ञान दे सके। जो शरीर से दुर्बल होता था, उसको भी विद्यालय जाने का अवसर प्राप्त होता था। माँ-बाप सोचते थे कि दुबला-पतला है, कुदाल-फावड़ा चला नहीं पाएगा, इसलिए तनिक पढ़-लिख लेगा, तो कोई हुनर सीख लेगा और बड़ा होकर जीने के लिए अपना जुगाड़ कर लेगा।

हमारा सेवी ऐसे ही परिवार की सन्तान था। दुबला-पतला, प्रसव के वक्त माँ बहुत कष्ट में थी। आज की तरह उस समय अस्पताल जाने की सुविधा नहीं थी। अनपढ़ दाई ही घर पर बच्चा जन्माती थी। सुना है कि प्रसव से पहले माँ गम्भीर रूप से बीमार थी। शरीर सूज गया था। ऊपर से प्रसव का कष्ट। घड़ी ऐसी कि सबको माँ और शिशु से हाथ धोने की नौबत लगने लगी थी। पूजा-पाठ न करनेवाला बाप उस समय पूरे विश्वास और श्रद्धा से ईश्वर की शरण में गया। शरीर घर में और मन ईश्वर के चरणों में। किसी तरह अनुभवी दाई बच्चे को इस लोक में ले आई। माँ बहुत चीखी, पर हिम्मत नहीं हारी। सब सोच रहे थे कि बच्चा मरा है, इसलिए माय को जन्माने में इतना कष्ट हो रहा है, किन्तु दोनों को ज़िन्दा पाकर शंका फुर हुई। बाप ने ईश्वर को मन से धन्यवाद किया।

प्रसव के समय माँ तो खूब चीखी और जब अतिशय पीड़ा सहन न हो पाती, तो बेहोश हो जाती। बेहोशी की स्थिति में ही बच्चे को गर्भलोक से मृत्युलोक में लाया गया। जब माँ को होश आया, तो उसके मुख से निकला - "हीरा, हमर हीरा अच्छा बा न?" माँ के इसी बोल पर बाप ने बच्चे का नाम हीरालाल रखा।

हीरालाल का जन्म 25 जून 1951 के ठीक बारह बजे दिन में लालमाटी की पुरानी बस्ती में हुआ। आज इस भाग में लोग रहते नहीं। बस खेत हैं। पिताजी रामभजन लीलाधर थे और माँ थी रुकमीनिया। बड़े भाई क्रमशः हरीलाल और सुरूजलाल हुए। फूलमती दीदी सब से बड़ी थी। एक छोटा भाई गुरुलाल भी हुआ।

हीरालाल के जन्म के बाद घर शीघ्र स्वस्थ हुआ। माँ अपेक्षा से अधिक शीघ्र स्वस्थ हुई। बच्चा चाहे छोटा-नन्हा था, पर स्वस्थ था। फिर सब के चेहरों पर पुनः रौनक आने लगी।

बच्चा गेहुँए वर्ण का था। वह सबका दुलारा बना। जब भी किसी को मौका हाथ लगता, तो वह उसे गोद में उठा लेता। पिता ने भी मेहनताने में से बचा-बचाकर नए डेरे के लिए एक बीघा ज़मीन ले ली। तीन ओर से पत्थर की दीवार उठाकर स्वयं ही नया डेरा बना लिया। हीरालाल की परवरिश इस नए डेरे में हुई। आज भी उसी ज़मीन पर डेरा है।

बचपन में घर का रूखा-सूखा खाकर गली के बच्चों के साथ खेलना ही हीरालाल की दिनचर्या थी। कद में छोटा होने के कारण माँ-बाप को समय पर विद्यालय में भर्ती कराने का ख़याल ही नहीं रहा, इसलिए छह के बदले आठवें वर्ष में उसकी भर्ती हुई।

हीरालाल का लगाव अपने ज्येष्ठ भ्राता हरीलाल से अधिक घना रहा। वह उसके साथ चिपका रहता था। वह भाई के साथ अपने को सुरक्षित अनुभव करता था। भैया भी अपने बड़े होने का फ़र्ज़ अदा करता रहता। वह स्कूल में जो सीख लेता, अनुज को सिखा देता। हीरालाल का पहला गुरु भैया ही था। घर में छोटे की बदमाशी की सज़ा भी वह सह लेता था।

हीरालाल को आरम्भ में विद्यालय जाना अच्छा नहीं लगता था। वह ना-नुकूर करता रहता, परन्तु माँ उसे हाथ थामकर बलपूर्वक ले जाती थी। माँ अकसर समझाती, "लइको! तू मगज लगाके तनी पढ़-लिख ले। फेर कोई मेचिये (हुनर) सीख के अपन जिनगी गुजार लेबे।"

कोई चारा न देख, हीरालाल को स्कूल जाना ही पड़ा। उसे विश्वास नहीं हुआ कि स्कूल की पढ़ाई

इतनी सरल होती है। वहाँ अक्षर-ज्ञान से आरम्भ करते और सप्ताह भर एक ही वाक्य के इर्द-गिर्द चक्कर लगाते रहते। हीरालाल के लिए तो मामूली बात थी। भैया उसे घर पर अक्षर-ज्ञान के साथ शब्द-ज्ञान भी पहले ही दे रहे थे। अतः हीरालाल स्कूल में फटाफट सब पढ़ लेता था। उसके कार्य से अध्यापिका प्रसन्न थी और सहपाठी उत्सुक थे। फिर स्कूल जाना उसे अच्छा लगने लगा। फिर भी उसकी तुलना खेत, नदी, जंगल आदि प्रकृति से नहीं की जा सकती। खेत में वह खुले में रहता था। दौड़-धूप और उछल-कूद से शरीर में गति रहती थी। नदी में पानी होता था। धाराओं के साथ खेलने का आनन्द और ही था। जंगल में कच्चे-पक्के अमरूद, चीनी अमरूद, जामुन आदि फल अपने हाथों से तोड़कर खाने को मिल जाते थे, जबकि विद्यालय में दिनभर बैठे रहना पड़ता था।

जैसे-जैसे कक्षाएँ बढ़ने लगीं, पढ़ाई का अनुपात भी बढ़ने लगा। जो कार्य कक्षा में पूरा न हो पाता, उसे घर पर भोजन के उपरान्त, चिराग की मद्धिम रोशनी में पूरा कर देता था। उसका गृहकार्य स्कूल में अधूरा नहीं पहुँचता था। वह अगले पाठ पर भी एक नज़र डाल लिया करता था। इस तरह उसकी प्राइमेरी की शिक्षा पूरी हुई।

माध्यमिक शिक्षा के लिए भैया ने अनुज की भर्ती फ़्लाक के इस्टर्न कॉलिज में कर दी। वहाँ जाते हफ़्ता भर नहीं हुआ था कि एक परिचित अपने साथियों के साथ एक नए कॉलिज का कैम्पेइन करते हुए उनके घर पहुँचा। पड़ोसी गाँव में वे नया कॉलिज खोल रहे थे। माँ-बाप ने सोचा, बेटा पास और परिचित के सामने रहेगा, तो अच्छा रहेगा। फिर हीरालाल की भर्ती पड़ोसी गाँव के बोनाकेय कॉलिज में हो गई।

इस कॉलिज में अधिकतर छात्र फ़ॉर्म एक के ही थे। छात्रों को आकर्षित करने के लिए प्रींसिपल ने आसेम्ब्ली में कहा, "लघु-परीक्षा में जो पहला आएगा, वह शुल्क नहीं भरेगा।" इस कॉलिज में साधारण और गरीब बच्चे ही आते थे। उन में स्पर्धा नहीं थी।

दूसरी अवधि के आरम्भ में जब हीरालाल शुल्क चुकाने प्रींसिपल के पास गया, तब पैसे लेकर रसीद काट देने के बाद, उन्होंने कहा, "कुल अंक के अनुसार स्कूल में तुम पहले आए हो। इस महीने के लिए तो हो गया। हमारे कहे मुताबिक अगले महीने से तुम्हें फ़ीस नहीं चुकाना है। तुम्हें बहुत-बहुत बधाई है।"

दूसरा साल भी ऐसा ही रहा। किन्तु कॉलिज का दुर्भाग्य कि प्रींसिपल और वह परिचित, दोनों इंग्लैंड चले गए। किसी तरह साल की पढ़ाई पूरी हुई। तीसरे साल छात्रों की कमी और पैसे के अभाव में कॉलिज बंद हो गया। हीरालाल की पढ़ाई भी रुक गई। वह कोई और कॉलिज गया नहीं। बन्धी पढ़ाई से उसका मन उचट गया। वह गाय के लिए घास लाने में माँ की सहायता करने लगा। भैया कभी शहर जाते थे, तो धार्मिक पुस्तकों का संक्षिप्त संस्करण ले आते थे। पंडित विष्णुदयाल के प्रचार से भी कई पुस्तकें खरीद लाते थे। हीरालाल खाली समय में उन्हीं पुस्तकों का स्वाध्याय करता रहता था। जो बात समझ में नहीं आती, तो भैया की शरण में चला जाता था। अनुज की जिज्ञासा शमित करने में भैया कभी-कभी असमर्थ अनुभव करते थे। वे स्वयं खास पढ़े-लिखे नहीं थे। इस परेशानी को दूर करने के लिए अग्रज अपने अनुज को एक दिन फ़ुर्सत से पंडित विष्णुदयाल जी के घर, पोर्ट लुई ले गए।

भैया 15 अगस्त के भारतीय स्वतंत्रता दिवस के प्रचार में राष्ट्रीय स्वयं-सेवक के पोशाक में शामिल होते थे। वे पंडित जी को जानते थे। भैया ने उनके सामने अपनी विवशता रखी। हीरालाल तो मूक थे, पर उत्सुक, कभी भैया को तो कभी पंडित जी को देखता रहा।

आखिर में पंडित जी कई छोटी-छोटी पुस्तकों के अलावा एक मोटा कोश - 'हिंदी भाषा शब्दकोश' भैया को देते हुए हीरालाल से बोले, "इसकी सहायता से तुम सब जान जाओगे। भैया को बार-बार परेशान भी नहीं करोगे। आरम्भ में कठिनाई होगी, पर बाद में आनन्द आएगा।"

पंडित जी से आज्ञा लेकर दोनों भाई पोप हेनेसी, दे-फ़ोर्ज़ और बूर्बों गलियों से होकर पोर्ट लुई के सेंट्रल मार्केट आए। बूर्बों गली में नालंदा बुकशॉप और सेंट्रल मार्केट में हरी बुकशॉप, दो दुकानें थीं, जहाँ हिंदी की पुस्तकें मिलती थीं। उस समय ये दो दुकानें और पंडित जी ही भारत से हिंदी की पुस्तकें बिक्री के लिए मँगाते थे। भैया ने हरी बुकशॉप में और पुस्तकें खरीदीं। फिर दोनों भाई इमीग्रेशन स्क्वेर आए और फ़्लाक की बस लेकर लालमाटी आ गए।

दोनों भाई खुश थे। अग्रज को अनुज की पढ़ाई का प्रबन्ध कर देने की खुशी थी, तो अनुज को पंडित जी से मिल लेने की। पंडित जी से मिलने का सौभाग्य सब को नहीं मिलता।

भैया ने हीरालाल को कोश देखना सिखा दिया। देवनागरी वर्णमाला तो हीरालाल के मुँह में थी, इसलिए शब्द ढूँढने में खास कठिनाई नहीं होती थी। फिर उसका तो समझ के साथ स्वाध्याय होने लगा।

स्वाध्याय से आप चाहे कितना भी पढ़ लें, पढ़े-लिखे होने के लिए परीक्षा देना आवश्यक होता है। हीरालाल ने हिंदी में हिंदी प्रचारिणी सभा की प्रवेशिका, परिचय, प्रथमा और मध्यमा की परीक्षाओं के समानान्तर संस्कृत में प्रवेश, परिचय, कोविद और जी.सी.ई. ए. लेवेल की परीक्षाएँ भी दीं। उसने लंदन एजुकेशनल एसोसिएशन से अंग्रेज़ी सीखी, तो दिल्ली विश्वविद्यालय के स्कूल ऑफ़ कोरेस्पोंडिंग कोर्सज़ से हिंदी, संस्कृत, अंग्रेज़ी और शिक्षा में स्नातक बना। अपने ज्ञान के विस्तार के लिए हीरालाल लालमाटी के प्रेमचन्द पुस्तकालय, भारतीय उच्चायोग और मॉरीशस इंस्टीट्यूट से पुस्तकें लाता था।

हीरालाल के साधु स्वभाव और धार्मिक अभिरुचि को देखकर लोग उसे 'साधु' पुकारने लगे थे और करीबी लोगों के लिए वह 'लइको' ही रहा।

पेशा

जब कॉलिज की पढ़ाई छूटी, तब वह गोपालक या घसियारा कह लें, बना। स्कूल के समय से ही माँ-बाप उसे दर्ज़ी का काम सीखने के लिए गाँव के एक दर्ज़ी के पास भेजते रहे। कॉलिज में भर्ती होने तक उसे अपने कपड़े सी लेने भर का हुनर आ गया था, किन्तु इस कार्य में उसकी रुचि नहीं रही कि वह इसे पेशा बना सके। वह साफ़-सुथरा रहता था, इसलिए किसी के पसीनाए शरीर पर नाप लेना उसे नहीं भाया। उसे गाय के लिए घास छील लाना बेहतर लगा। वह भैया की साइकिल पर तीन-चार किलोमीटर दूर से भी घास छील लाता था। कभी-कभी वह रामायण के सत्संग में जाता था और पाठ कर समझा भी देता था। संस्कृत का ज्ञान होने से वह शब्दों के मूल में जाकर अर्थ निकालता था, जो अन्यों के बीच अनुपम लगता था। गाँव के भोले-भाले सत्संग-प्रेमी उसे जानने लगे और ज्ञानी भी मानने लगे। गाँववाले पंडित जी के सम्पर्क में आने वालों को आदर से देखते थे।

एक बार गाँव के एक गुरुजी ने उसे टोका, "तुम ही लीलाधर हो न? सुना है, पढ़े-लिखे हो। सत्संग भी कर लेते हो। अध्यापक के लिए आवेदन क्यों नहीं भर देते?"

हीरालाल ने उन्हें सीधा-सा जवाब दिया, "अभी मैं अपने को अध्यापक बनने योग्य नहीं समझता। अध्यापक होने के लिए बहुत पढ़ा-लिखा होना चाहिए।"

"तुम ठीक कहते हो। अध्यापक को हमेशा

पढ़ते रहना चाहिए। वह तो अपने छात्रों से भी सीखता रहता है। आवेदन और प्रवेश की परीक्षा से भी लोग सीखते हैं। वे फ़ॉर्म और प्रश्न कहीं और देखने को नहीं मिलेंगे। इस बार अनुभव के लिए परीक्षा दोगे, तो अगली बार पूरी तैयारी के साथ परीक्षा दे पाओगे। इस के लिए कोई शुल्क लगता भी नहीं है।"

फिर भैया के साथ जाकर हीरालाल ने आवेदन भरा और समय पर परीक्षा भी दी। प्रश्न उसे आसान और रोचक लगे, किन्तु उसने परीक्षा अनुभव के लिए ही दी थी। फिर भी समय पर इन्टरव्यू के लिए बुलाया गया। सारे प्रतिभागी सूट-बूट में सज-धजकर उपस्थित थे। हीरालाल साधारण लिबास में था, फिर भी वह उदास या भयभीत नहीं था। वह तो अनुभव के लिए गया था। इन्टरव्यू टीचर्स ट्रेनिंग कॉलिज, बो बासें में, दो भागों में हो रहा था। ऑफ़िस में प्रींसिपल अंग्रेज़ी-फ्रेंच के प्रश्न पूछ रहे थे, तो पाण्डे जी शिक्षा और साहित्य की बात कर रहे थे। दूसरे भाग में डॉ. ओरी विज्ञान की जानकारी माँग रहे थे, तो प्रोफ़ेसर रामप्रकाश के प्रश्न भाषा और संस्कृति पर आधारित थे। प्रोफ़ेसर रामप्रकाश हीरालाल के आगे एक पृष्ठ बढ़ाकर बोले, "इसे पढ़कर हमें समझा देने की कृपा करेंगे?"

हीरालाल ने अनुच्छेद को पहले आँखों से पढ़ा। फिर सस्वर वाचन किया। इसके उपरान्त ससंदर्भ समझाया। दोनों प्रोफ़ेसर चकित थे। रामप्रकाश जी बोले, "तुम तो अच्छा ज्ञान रखते हो।"

हीरालाल उत्साह में बहा था। वह बीच में बोला, "संस्कृत के अध्येता को संस्कृत के महाकवि के श्रेष्ठ ग्रन्थ 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' का ज्ञान तो होना ही चाहिए।"

अन्त में जब जाने के लिए कहा गया, तब हीरालाल ने रुककर रामप्रकाश जी से पूछा, "क्या इस इन्टरव्यू में प्रतिभागी का बढ़िया सूट-बूट पहनकर आना आवश्यक है?"

इसके उत्तर में रामप्रकाश जी पहले हीरालाल को, फिर ओरी जी को देखकर बोले, "यहाँ न हम सूट-बूट में हैं, न वहाँ ऑफ़िस में कोई है, फिर हम आप लोगों से यह अपेक्षा कैसे कर सकते हैं? आप निश्चिंत रहिए। हम यहाँ ज्ञान देखते हैं, किसी का परिधान नहीं।" यह उत्तर पाकर हीरालाल खिल उठा। उसके मन का मलाल फुर हो गया।

पहले ही आवेदन में हीरालाल को मेडिकल भी मिला, किन्तु किसी समाज या राजनेता की सिफ़ारिश न होने से ट्रेनिंग के लिए चयनित नहीं हुआ। मेडिकल पर से गिरनेवालों को अकसर ई.टी.ए. (एक्सट्रा टीचिंग एसिस्टेंट) के रूप में मंत्रालय अस्थायी भर्ती कर लेता था। हीरालाल भी ई.टी.ए. बनकर देश के दक्षिण-पूर्व के एक समुद्रतटीय गाँव, बाँबू वीरिये के 'सें सेसील आर.सी.ए.' स्कूल में सेवा देने गया। वहाँ वह हिंदी का अकेला अध्यापक था; वह भी अनुभवहीन। वह जवान था और मन में विश्वास था। बन्दर को बीन बजाना ही पड़ा। बीन भी सही ही बजा। गाँव की प्राकृतिक सुषमा ने उसको लुभाया। उसने उस गाँव के अपने अनुभव को शब्द दिए, जो दर्पण पत्रिका में छपे।

उस लेख से ही वह देश के विद्वानों के परिचय में आया। यहीं से उसके लिखने या साहित्य और भाषा की सेवा की प्रक्रिया आरम्भ हुई। फिर उसकी पहली पुस्तक, पुस्तिका कह लें, 'अनोखे अतिथि' 1974 में मधु प्रेस से छपी।

अध्यापन करते समय हीरालाल ने अनुभव किया कि अधिकतर अध्यापक पढ़ाई जाने वाली 'नवीन हिंदी पुस्तक माला' से असंतुष्ट थे। पुस्तकों में केवल पाठ्य-सामग्रियाँ थीं, अभ्यास-कार्य नहीं थे। अभ्यास अध्यापकों को खुद बनाने पड़ते थे। इस कमी के सम्बन्ध में पूछने पर प्रोफ़ेसर रामप्रकाश जी ने बताया, "न सारे अध्यापक समान हैं और न सारे छात्र। सब के अपने स्तर होते हैं। फिर सभी

एक ही अभ्यास कार्य पर कैसे कार्य कर सकते हैं? अध्यापक अपने अध्यापन और अपने छात्रों की योग्यता के मुताबिक अभ्यास की तैयारी करेगा, तो समुचित रहेगा। हम अध्यापकों को प्रशिक्षण इसी कार्य के लिए देते हैं।"

हीरालाल को प्रोफ़ेसर की बात सही लगी, फिर भी उसने सोचा कि कुछ वर्षों के अनुभव के बाद सहायक सामग्रियों की तैयारी वह अवश्य करेगा।

उस समय मॉरीशस में चर्चित लेखक काफ़ी थे। संस्थाएँ भी कई थीं, जिनकी सैकड़ों सायंकालिक पाठशालाएँ चलती थीं, किन्तु पाठ्य-पुस्तक तैयार करने-करवाने की रुचि किसी ने नहीं दिखाई। सरकारी स्कूलों के लिए सामग्री तैयार करने का सारा अधिकार महात्मा गांधी संस्थान को था। वहाँ हर भाषा और विभाग के अपने पैनल थे। उस समय के ख्याति-प्राप्त लेखक, जैसे अभिमन्यु अनत, रामदेव धुरन्दर, पूजानन्द नेमा, मुनीश्वरलाल चिन्तामणी आदि वहीं थे, पर पाठ्य-पुस्तक निर्माताओं के पैनल में नहीं बैठते थे।

हीरालाल जब बैठकाओं और स्कूलों में गया, तो उसे अनुभव हुआ कि पाठक बहुत कम हैं। छात्रों में रुचि पैदा करने के लिए उसने अपना रास्ता बदल लिया। उसने निश्चय किया कि वह स्वयं ऐसी पाठ्य-सामग्री तैयार करेगा, जिसमें रुचि और आवश्यकता के मुताबिक पाठ और भाषा पुष्टि के लिए समुचित अभ्यास-कार्य हों। हीरालाल ने अपनी पुस्तकों के लेखन, प्रकाशन, वितरण, बिक्री, वित्तीय व्यय आदि का सारा भार स्वयं ही वहन किया। हीरालाल के कंधों पर परिवार की ज़िम्मेदारी नहीं थी। स्वाभिमानी माँ-बाप भी अपना दायित्व स्वयं वहन करते थे, इसलिए हीरालाल को अपनी आमदनी व्यय करने में तनिक भी द्वन्द्व नहीं हुआ।

अभ्यास-कार्य से सम्बद्ध हीरालाल की पहली रचना 'मॉरीशस में हिंदी' नाम से प्रोफ़ेसर वी. आर. जगन्नाथन के सौजन्य से दिल्ली के बाहरी पब्लिकेशन से 1983 में छपकर 1984 में मॉरीशस आई। आँखों के सामने न छपने से, चाहे रचना में अनेक खामियाँ रह गई थीं, फिर भी नई होने के कारण सब ने उसे अपनाया और प्रशंसा भी की।

लेखक को पैसा नहीं कमाना था, इसलिए खर्च भर मूल्य में पुस्तकें बेचीं। पाँच सौ तक प्रतियाँ उपलब्ध हुई थीं। सभी हाथों हाथ बिक गईं। फिर लोगों के परामर्श और आग्रह पर उसका दूसरा संशोधित और परिवर्धित संस्करण 'अद्यतन हिंदी प्रयोग' नाम से 1986 में निकला। परीक्षा की बेहतर तैयारी के लिए हीरालाल ने 'अद्यतन हिंदी प्रयोग भाग - 2' नाम से 1989 में सी.पी.ई. के प्रश्नों के मॉडल भी तैयार किए।

ये दोनों छठी के छात्रों के लिए थीं। पाँचवी के छात्रों के उपयोग के लिए हीरालाल ने 'नूतन हिंदी अभ्यास' नाम से नई सामग्री तैयार की, जो 1992 में पुस्तकाकार में आई। यह पुस्तक भी चली। उसका भी संशोधित और परिवर्धित संस्करण 'नूतन हिंदी अभ्यास - 1' नाम से निकला।

समय के साथ सी.पी.ई. परीक्षा का प्रतिरूप बदल गया। फिर हीरालाल ने 'नूतन हिंदी अभ्यास – 2' नाम से सी.पी.ई. मॉडल टैस्ट पेपर्स तैयार किए। यह पुस्तक 1994 में प्रकाशित हुई। इस के कई संस्करण निकले। तैयारी के इसी सिलसिले में लेखक ने चौथी कक्षा के छात्रों के लिए 'नूतन हिंदी बाल अभ्यास' 1997 में, तीसरी के लिए 'नूतन हिंदी शिशु अभ्यास' सन् 2000 में, दूसरी के लिए 'हिंदी की दूसरी पुस्तक' सन् 2007 में, 2008 में पहली के छात्रों के लिए 'हिंदी की पहली पुस्तक' आदि पुस्तकें लिखीं। छोटे छात्रों को अक्षर-ज्ञान देने के सन् 2009 में 'आओ लिखें अ आ इ ई क ख ग घ' की रचना की। बड़े छात्रों को व्याकरण से अवगत कराने हेतु हीरालाल ने सन् 2011 में 'व्याकरण विमर्श' की रचना की। अवकाश प्राप्त हो जाने के उपरान्त भी जब सी.पी.ई. परीक्षा के

स्थान पर पी.एस.ए.सी. परीक्षा नए रूप में आई, तो उस के लिए भी कुछ शिक्षकों के अनुरोध पर 'पी. एस.ए.सी. आसेस्मेंट - हिंदी' नाम से मॉडल तैयार कर एक संग्रह सन् 2019 में प्रकाशित किया। इस की तैयारी में विश्वानी नाम की एक युवा शिक्षिका ने भी सहयोग दिया।

इन शिक्षणोपयोगी रचनाओं के काल-खण्ड में ही हीरालाल का पहला उपन्यास 'सगाई' आया। यह महात्मा गांधी संस्थान की हिंदी पत्रिका 'वसंत' में पहले धारावाही छपा। इस पत्रिका में धारावाही छपनेवाला यह पहला उपन्यास रहा। फिर 1988 में यह दिल्ली के नचिकेता प्रकाशन से प्रकाशित हुआ। इस का अंग्रेज़ी अनुवाद 'बीट्रोथल' (Betrothal) नाम से 1998 में दिल्ली के हिंदी बुक सेंटर ने छापा।

साहित्यिक रचनाओं के प्रति लोगों की अरुचि को देखकर हीरालाल ने जैसे संन्यास ही ले लिया। फिर उसने अपनी सारी गतिविधियाँ उपयोगी साहित्य की रचना, प्रकाशन, वितरण और बिक्री पर केंद्रित कर दिया। इसी संदर्भ में उसने भारत की कई बार यात्रा की। वहाँ वह भाषा के कई विशेषज्ञों से मिलता रहा। वह दिल्ली के राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान और प्रशिक्षण परिषद्, केन्द्रीय हिंदी संस्थान, दिल्ली विश्वविद्यालय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय विश्वविद्यालय, वर्धा आदि के हिंदी विशेषज्ञों के सम्पर्क में रहा। उसने मध्यप्रदेश के साहित्य अकादेमी के कई सम्मेलनों में सक्रिय रूप से भाग भी लिया। उसने चेन्नई के साहित्य अकादेमी, राँची के मन्थन, बिहार के आरा, छपरा बलिया आदि के कई सम्मेलनों में शिरकत की और वह सम्मानित भी हुआ। आरा के डॉ. मनोज कुमार 'मनमौजी' कवि हीरालाल को भारत का ही मानते हैं। 16.4.2017 को हीरालाल के सम्मान में 'मनमौजी' जी की लिखी कविता 'अभिनन्दन तेरा' से उद्धृत कुछ पंतियाँ -

"भारत का लाल हीरा
दूसरा कोहिनूर आया है।
लीला न जाने कितना करेगा
हीरालाल लीलाधर निज देश का।
अपना ही है, अपना खून खोजेगा
इसलिए वह अपना भारत आया है। ...."

2013 में जब हीरालाल ने नौकरी से अवकाश प्राप्त की, तब उपयोगी पुस्तकों की सक्रियता धीमी पड़ी। भैया वृद्ध हो चले थे। वे अकेले खेतों की देखभाल नहीं कर पा रहे थे। खेतों को बंजर छोड़ नहीं सकते थे, इसलिए हीरालाल को भी ज़मीन में हाथ डालना ही पड़ा। कामगरों की कमी और खर्च की अधिकता के कारण आज भी मज़दूर के हाथ की तरह उसका हाथ गन्ने की खेती से जुड़ा हुआ है।

एक बार मॉरीशस विश्वविद्यालय की एक छात्रा ने किसी संग्रह में हीरालाल की एक कहानी 'एहसास' देखी। उसने लेखक को फ़ोन किया और कहानियों की माँग की। दुर्भाग्य से हीरालाल के पास कोई कहानी नहीं थी। 'एहसास' को भी वह भूल गया था। वह किसी की माँग पर निबन्ध या कहानी लिखकर पत्रिका या प्रतियोगिता में भेज देता था। रचना छपी और कभी पुरस्कृत भी हुई, बात खत्म। ऐसी कई रचनाएँ, जो स्थानीय व भारतीय पत्रिकाओं में छपी थीं या प्रतियोगिताओं में पुरस्कृत हुई थीं, उनके स्क्रिप्त आज हीरालाल के पास नहीं हैं।

वह छात्रा 'एहसास' की फ़ोटोकॉपी लेखक के पास ले आई। उसे देखने पर हीरालाल को स्मरण हुआ कि उसी की लिखी कहानी है। 1982 के ऐतिहासिक आम चुनाव में जब मॉरीशस के राष्ट्रपिता सर शिवसागर रामगुलाम चुनाव हार गए थे, तब हीरालाल ने उनकी अन्तर्वेदना को महसूस कर यह कहानी लिखी थी।

उस छात्रा के आग्रह से आम साहित्य से हीरालाल की विरक्ति गई। फिर पड़ी हुई रचनाओं को देखा, तो पुरस्कृत या कहीं प्रकाशित रचनाएँ तो नहीं मिलीं, जो मिलीं, उनका एक संग्रह दिल्ली के देहाती पुस्तक भण्डार से 2013 में 'एहसास' नाम से निकला। 'एहसास' इसलिए कि इसी रचना ने हीरालाल में फिर से साहित्य में रुचि लेने का स्फुरण पैदा किया। इसके बाद 'मेरे अपने' नाम से नई कविताओं का एक और संग्रह देहाती पुस्तक भण्डार ही से निकला।

हीरालाल की रुचि हिंदी के साथ भोजपुरी में भी रही। आरम्भ से ही मॉरीशस के औसतन लेखकों के सोचने का माध्यम भोजपुरी ही रही है। लिखित रूप में न होने से इस भाषा में साहित्य-सृजन नहीं हो रहा था। जब सरकार ने क्रियोल और भोजपुरी को 1 जुलाई 2011 को भाषा के रूप में प्राथमिक स्तर पर पढ़ने-पढ़ाने की मान्यता दे दी और जनवरी 2012 से पढ़ाई आरम्भ हुई, तब हीरालाल की भी रुचि इस भाषा के प्रति हुई। उसने भावों और विचारों के वाक्यांशों को क्रम से पृथक-पृथक पंक्तियों में रख-रखकर नई कविताओं का एक भोजपुरी काव्य-संग्रह 2017 में 'पाथर-रेख' नाम से दिल्ली के हिंदी बुक सेंटर से निकाला। उसी साल हीरालाल का हिंदी बाल उपन्यास 'बाल-स्यन्तक' भी हिंदी बुक सेन्टर से ही निकला, जिसका लोकार्पण विश्व हिंदी सचिवालय के सभागार में महामहिम भारतीय उच्चायुक्त श्री तन्मय लाल जी के हाथों हुआ।

सन् 2018 में हीरालाल की दूसरी भोजपुरी पुस्तक, एक कहानी-निबन्ध संग्रह 'का बोलीं हम!' हिंदी बुक सेन्टर ने ही छापी। भोजपुरी की दोनों पुस्तकों का लोकार्पण वाराणसी के काशी हिन्द विश्वविद्यालय के भोजपुरी विभाग में क्रमशः 2017 और 2018 में हुआ। अपनी रचनाओं के लेखन-प्रकाशन से लेकर बिक्री तक स्वयं हीरालाल ही करता था और अभी भी करता है। उसका कोई पारिवारिक उत्तरदायित्व नहीं है। अकेला है। बूढ़े माँ-बाप भी जब तक थे, स्वाभिमानी और स्वावलम्बी थे। माता-पिता अपने साठी के पेंशन से ही अपना गुज़ारा कर लेते थे, इसलिए हीरालाल को अध्यापन से जो पैसा मिलता था, उसे रचनाओं के प्रकाशन में लगाने में संकोच नहीं करता था। वह कहता, "हिंदी का पैसा है। हिंदी ही में जा रहा है।"

हीरालाल की कुछ रचनाओं, जैसे 'एहसास', 'मेरे अपने' और 'का बोलीं हम!' को कला और संस्कृति मंत्रालय से प्रकाशन अनुदान मिला।

हीरालाल की पुस्तकों का मुद्रण भारत में होता था। वह चाहता था कि उसकी पुस्तकों की छपाई उसकी देख-रेख में उसके इच्छानुसार हो, इसलिए उसने कई बार भारत की यात्रा की। वह वहाँ कई प्रकाशकों से मिलकर कई निर्णय लेता था। जब तक छपाई की प्रक्रिया चलती थी, तब तक वह भारत दर्शन कर लेता था। सप्ताह-दो-सप्ताह के भ्रमण के बाद मुद्रण की प्रगति का जायज़ा लेने वह दिल्ली लौटता था। हम कह सकते हैं कि उसकी प्रत्येक पुस्तक के साथ एक यात्रा जुड़ी रही है।

हीरालाल ने भारत की चारों दिशाओं में भ्रमण किया। वह चार धामों, क्रमशः रामेश्वरम्, जगन्नाथ पुरी, द्वारका और बदरीनाथ जा चुका है, तो हरिद्वार, ऋषिकेश, प्रयाग, काशी, महाकाल, तिरुपति, वैष्णो देवी, यमुनोत्री, गंगोत्री, केदारनाथ जैसे तीर्थों के दर्शन भी किए हैं। उसने मुम्बई, दिल्ली, हैदराबाद, चेन्नई, त्रिवेन्द्रम, बेंगलुरु, मैसूर, भुवनेश्वर, कलकत्ता आदि नगरों में दिन बिताये हैं, तो अजन्ता, एलोरा, राजगीर, नालन्दा, खजुराहो आदि की कलाकृतियाँ भी देखी हैं।

भारत के अलावा हीरालाल को नेपाल, दक्षिण अफ़्रीका, ज़ाम्बिया, केनिया, दुबई आदि देशों की यात्रा करने के अवसर भी हाथ लगे। यात्राओं का खर्च भी स्वयं हीरालाल ने ही वहन किया।

लेखन के अलावा हीरालाल शौकिया धावक, तैराक और खेतिहर भी है। वह जवानी में गाँव, ज़िला और राष्ट्रीय स्तर पर भी क्रॉस-कंट्री में भाग ले चुका है। कभी पराजय हुई, तो कभी विजयी भी हुआ। शौकिया होने से वह कभी-कभार खतरा भी मोल लेता था, जैसे चेन्नई के शोर-टेम्पल के उग्र समुद्र में तैरना, हरिद्वार, काशी, प्रयाग आदि अनभ्यस्त स्थलों में गंगा को तैरकर पार करना।

हीरालाल के खेत में गन्ने हैं। आज के जवान ज़मीन में हाथ डालना पसन्द नहीं करते। मज़दूर के अभाव में हीरालाल अपने खेत को बंजर छोड़ नहीं सकता। वह बुढ़ापे में भी खेतों की देखभाल स्वयं करता है। वह कहता है, "ज़मीन से फल उगेगा, तो सब को तनिक ही सही, जीवन तो मिलेगा।"

साहित्य और शौक से जुड़ी एक घटना सुनाती हूँ। सन् 1979 की बात है। हीरालाल रेनेसाँस कॉलिज की शनिवारीय पाठशाला में संस्कृत पढ़ाता था। यों कहिए, इस भाषा के अन्धों के बीच वह काना राजा था। इसी साल क्यूर्पिप की स्वस्तिका क्लब राष्ट्रीय स्तर पर दिवाली मना रही थी। इस अवसर पर निबन्ध-लेखन, क्रॉस-कंट्री और साइकिल-रेस की राष्ट्रीय स्तर पर प्रतियोगिताएँ आयोजित हुई थीं। हीरालाल ने निबन्ध-लेखन और क्रॉस-कंट्री में भाग लिया। निबन्ध-लेखन में वह प्रथम आया और क्रॉस-कंट्री में वह उस समय के राष्ट्रीय चैम्पियन लाला सिनारायण के पीछे द्वितीय आया।

दिवाली नाइट के शुभ मुहूर्त पर सारे पुरस्कार भारत के प्रसिद्ध भजनिक और ग़ज़लकार श्री अनूप जलोटा के हाथों प्रदान किए गए थे। सर्वाधिक पुरस्कार हीरालाल के ही हाथ लगे। मार्के की बात यह है कि वह पुरस्कृत निबन्ध आज अनुपलब्ध है।

हिंदी भाषा और साहित्य की सेवा में हीरालाल इतना उलझा रहा कि उसने अपने भावी जीवन पर ध्यान नहीं दिया। जब विवाह की बात छिड़ती, तो उसके सामने प्रश्न खड़ा हो जाता, क्या जीवन संगिनी साथ देगी? क्या दोनों एक ही दिशा में चल पाएँगे? यदि एक पूर्व और दूसरा पश्चिम रहा, तो जीवन की शान्ति चली जाएगी। उसकी मंशा थी कि जीवन संगिनी उसके कार्य में हाथ बँटाए। दोनों में मतभेद न हो, तो जीवन में आनन्द होगा, कलह और चिन्ता का वज़न नहीं रहेगा। जीवन आनन्द और संतुष्टि की सरिता हो, किन्तु घर-घर की कहानी में उसने विपरीत ही देखा। उसे ऐसे जुगल से सिंगल रहना बेहतर लगा। वह भाषा और साहित्य के साथ रहा और रचनाएँ उसकी औलादें रहीं।

मेरे इस प्रश्न - "तुम्हारा अपना परिवार नहीं है, वंश चलानेवाला नहीं है, इस बात का दुख नहीं है?" के उत्तर में, "दुख तो होता है।" उसने कहा, "जब लोगों को अपने परिवार में हँसते-खेलते देखता हूँ, परन्तु जब किसी को झगड़ते और उसके माहौल में कलह राज करते देखता हूँ, तो अपने को बचा हुआ पाकर संतुष्टि होती है। वंश तो नाम आगे बढ़ाने के लिए होता है। यह काम मेरी रचनाएँ कर देंगी। हाँ अन्तिम समय में शायद अकेले हो जाऊँगा। यह तो भाग्य की बात है। मैंने भरे-पूरे शिक्षित और सम्पन्न परिवार के वृद्धों को अन्तिम समय में अस्पताल में अकेले तड़पते और दम तोड़ते देखा है।"

हीरालाल किसी समाज, सम्प्रदाय, संस्था या संस्थान से जुड़ा नहीं रहा और न है। उसे बंदिशों में रहना पसंद नहीं। वह अपने को सीमित और संकुचित रखना नहीं चाहता। वह स्वतंत्र रूप से सब के लिए खुला था। वह भाषा में विचारों की स्पर्धा या ईर्ष्या भी नहीं चाहता। सेवा भले के लिए की जाती है, अतः सेवी स्वानुशासित और स्वतंत्र होता है। वह पंडित वासुदेव विष्णुदयाल से विशेष प्रभावित था। पंडित जी स्वयं संस्था थे, बल्कि वे मॉरीशस में धर्म, भाषा और संस्कृति सेवी संस्थाओं से ऊपर थे। हीरालाल उन्हीं का चेला था। देखा जाए, तो वह भी स्वयं में एक संस्था के कार्य करता रहा है।

अब प्रस्तुत हैं हीरालाल और उसके साहित्य पर कतिपय शिक्षाविदों की पंक्तियाँ :

प्रोफ़ेसर वी. आर. जगन्नाथन, 1983 में प्रकाशित पुस्तक 'मॉरीशस में हिंदी' के द्वितीय संस्करण के समय लिखते हैं :

"यह संयोग की बात है कि 1982 की अपनी मॉरीशस यात्रा के अंतिम दिन श्री हीरालाल लीलाधर जी से मिला। उन्होंने 'मॉरीशस में हिंदी' नामक अपनी पुस्तक की पांडुलिपि दिखाई और भारत में उसके प्रकाशन के बारे में बात की। सरसरी निगाह से पांडुलिपि को देखने पर मालूम हुआ कि श्री हीरालाल लीलाधर बड़े ही अध्यवसायी, परिश्रमी और जानकार व्यक्ति हैं। मॉरीशस के परिवेश में मॉरीशस के छात्रों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर लिखी गई इस पुस्तक में मुझे लेखक की सूझ, भाषा सम्बन्धी ज्ञान और विषयवस्तु रोचक ढंग से प्रस्तुत करने के कौशल दिखाई पड़े। तभी से मैं श्री लीलाधर के इस पुनीत कार्य से गहरा जुड़ गया। अब द्वितीय संस्करण का, मॉरीशस के आप सब पाठकों को परिचय दे रहा हूँ। ..... इस सुन्दर पुस्तक के लिए मैं श्री हीरालाल लीलाधर जी को साधुवाद देता हूँ और कामना करता हूँ कि वे हिंदी की निरन्तर सेवा करते रहें।"

प्रोफ़ेसर वी. आर. जगन्नाथन,

केन्द्र प्रभारी, केन्द्रीय हिंदी संस्थान, हैदराबाद - 500007, दिनांक : 15.3.1986

नूतन हिंदी बाल अभ्यास पुस्तक के अपने शब्दों में प्रोफ़ेसर वी. आर. जगन्नाथन जी लिखते हैं - "हिंदी भाषा के अध्ययन के क्षेत्र में मॉरीशस के लोगों ने जो महत् कार्य किया है, उस पर हम सब हिंदी सेवियों को गर्व है। श्री हीरालाल लीलाधर इस महायज्ञ में जो योगदान दे रहे हैं, वह स्तुत्य है।"

अद्यतन हिंदी प्रयोग (मॉरीशस में हिन्दी) के द्वितीय संस्करण 1986 के अपने संदेश में उस समय के शिक्षा, कला और संस्कृति मंत्री माननीय श्री अरमुगम परशुरामन ने लिखा है :

"It is with great pleasure that I welcome the second issue of Mr. Leeladhur's ADHYATAN-HINDI-PRAYOG (Mauritius Mein Hindi). Mr. Leeladhur's contribution to the world of Hindi has been appreciated by the public and he deserves my congratulations. Efforts like these go a long way to reinforce the teaching of Hindi in our schools. It is my avowed policy to give all encouragement to those who are committed to the promotion of languages, for language is a vehicle of the deepest thoughts and aspirations of a nation. But it is equally true, that the apprenticeship needed for the mastery of a language demands patience and great ingenuity on the part of our teachers. It is in this context that the book of Mr. Leeladhur is a significant contribution. I wish this second edition the same success."

नूतन हिंदी अभ्यास की 'शुभककामनाएँ' में डॉ. देववंशलाल रामनाथ जी लिखते हैं :

"शिक्षा एवं विज्ञान मंत्रालय यह चाहता है कि अंग्रेज़ी तथा फ़्रेंच भाषाओं के साथ-साथ सभी भारतीय भाषाओं की पुष्टि हो। आजकल मैं यह देख रहा हूँ कि बहुत से विद्यार्थी हिंदी का अध्ययन कर रहे हैं। और मैं स्वयं इस में विश्वास करता हूँ कि हिंदी के अभ्यास तथा विकास की बड़ी आवश्यकता है। इसीलिए भाई हीरालाल लीलाधर की यह

पुस्तक विद्यार्थियों के लिए लाभदायक होगी। भाई हीरालाल लीलाधर एक प्रतिभाशाली हिंदी प्रेमी होने के अतिरिक्त एक अच्छा हिंदी लेखक भी है। मुझे बहुत प्रसन्नता हो रही है कि इन की पुस्तक की माँग हो रही है। इस का प्रकाशन द्वितीय संस्करण में निकल रहा है।"

डॉ. देववंशलाल रामनाथ,

प्राध्यापक तथा सलाहकार, शिक्षा तथा विज्ञान मंत्रालय। दिनांक : 4 अगस्त 1992

डॉ. सुरेश पाण्डेय जी 1994 में पुस्तक 'नूतन हिंदी अभ्यास भाग - 2' के अपने संदेश में लिखते हैं :

"मैंने प्रस्तुत पुस्तक 'नूतन हिंदी अभ्यास भाग - 2' को आद्योपांत पढ़ा है। यह पुस्तक मॉरीशस के उन विद्यार्थियों की भाषाई क्षमता को सुदृढ़ करने के लिए लिखी गई है, जो सर्टिफ़िकेट इन एजुकेशन की परीक्षा देने वाले होते हैं। विश्वास है कि यह पुस्तक अपने उद्देश्य में सफल सिद्ध होगी। मैं श्री हीरालाल लीलाधर के इस अकादमिक प्रयास की सराहना करता हूँ।"

डॉ. सुरेश पाण्डेय,

भूतपूर्व रीडर, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद्, नई दिल्ली 110016

2015 में प्रकाशित हीरालाल के काव्य-संग्रह 'मेरे अपने' के प्रकाशक देहाती पुस्तक भंडार के विकास अग्रवाल ने लिखा है :

"भारतेतर देशों में हिंदी साहित्य का सृजन विशेषतः मॉरीशस में अक्षुण्ण रहा है। वहाँ के श्री लीलाधर जी आज किसी पहचान के मोहताज नहीं हैं। आप से मेरा सम्बन्ध कई वर्षों से है। शब्दों को लेखनी की माला में बखूबी पिरोने में इन्हें महारथ हासिल है। यह मेरी खुशनसीबी है कि इन्होंने पुस्तक को प्रकाशित करने का अवसर प्रदान किया, जिसके लिए मैं हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ।"

विकास अग्रवाल, देहाती पुस्तक भंडार

2017 में प्रकाशित भोजपुरी कविता-संग्रह 'पाथर-रेख' के अपने संदेश में डॉ. श्रीमती सरिता बुद्धू जी लिखती हैं :

"हीरालाल लीलाधर जी के कविता-संग्रह 'पाथर-रेख ' मॉरीशसीय भोजपुरी साहित्य में एगो अहम भूमिका निभयले बा। मॉरीशस भोजपुरी संस्थान की ओर से उनकरा के इ ऐतिहासिक रचना खातिर बहुत-बहुत शुभकामना बा। हमरा बिस्वास बा कि आगे चलके श्री हीरालाल लीलाधर जी ऐसे ही रस भरल कविता और दूसर विधा में भी अपन सृजनात्मक रचना प्रस्तुत करिहन। उनकर 'पाथर-रेख' में संकलित कविता रस से सराबोर बा। इ अपन जीवन भर के अनुभव करला पर लिखल गईल बा। मॉरीशस भोजपुरी साहित्य में 'पाथर-रेख' एगो पत्थर के मील बा। एगो मिसाल बा।"

श्रीमती सरिता बुद्धू,

फ़ाउंडर डाइरेक्टर, मॉरीशस भोजपुरी संस्थान, पोर्ट लुई

डॉ. महेन्द्र प्रताप सिंह 'पाथर-रेख' ही के अपने शब्दों में उदाहरण देकर लिखते हैं :

'सीना तनले रही में' कवि कहत हउए -

"ई पथरवन के नींव पर
इंटवन के इमारत ना ढही
काल रहल
आज ह
काल्हो रही
सीना तनले रही"

ओही में कवि इहो कहत हउए -

"जिनगी कठिने रहल
जुलुम परबले रहल
भागो ना रहल

बाकिर हउसला बुलंद रहल।"

"कवि हीरालाल लीलाधर जी के कवितवन के पढ़के बहुत आस जगल। हम त ई कहै बदे मजबूर बानी कि भोजपुरी के उद्धार हीरालाल लीलाधर जी जइसन कवि मॉरीशस में करिहै आउर फिर ओकर धारा भोजपुरी के जनमभूमि में लउट के जोर-शोर से बही। ....."

डॉ. महेन्द्र प्रताप सिंह,

सचिव, अखिल भारतीय जनवादी लेखक संघ,

इकाई-बनारस, एस, 2/1-11 टैगोर टाउन कालोनी, बनारस

प्रो. प्रकाश शुक्ला जी 'का बोलीं हम क मिठास' में लिखते हैं -

"हीरालाल लीलाधर मॉरीशस में रहन, लेकिन ओनकर मन क्रियोल में न लागि के भोजपुरी में लगे ला। ओनकर ई पुस्तक 'का बोलीं हम?' भोजपुरी गद्य संग्रह पढ़ड के पहिले हम ओनकर दुइ किताब पढ़ले रहलीं - 'पाथर-रेख' और 'बाल स्यन्तक', जउने से बहुतई प्रभावित भयलीं।...... आखिर में इतना अउर, कि भोजपुरी भाषा के भाव संपदा औरु विचार पक्ष के समझइ खातिर ई किताब सबके बदे जरूरी बा.....एहि भाषा बदे एनकर लगाव देखि क हम त एनके जज्बे के सलाम करत हईं।"

प्रो. प्रकाश शुक्ला,

समन्वयक, भोजपुरी अध्ययन केंद्र, बीएचयू, वाराणसी-221005

अन्त में, मैं श्री प्रकाश उदय जी के विचार उद्धृत करती हूँ -

"मातृभाषा के, निजभाषा के तरफ़, जे-जे ओकरा तरफ़ से तरफ़दारी में, ऊ आपन, अपनन के, अपना देश-काल के हिय के सूल मिटावनहार एगो सिपाही - जनते जूझत, ओतने बूझत। ओइसने एगो जूझ, एगो बूझ के साखी लीलाधर जी के ई किताब।"

श्री प्रकाश उदय, श्री बलदेव पी.जी. कॉलिज, बड़ा गाँव, वाराणसी-221204

हीरालाल की उम्र शिक्षा आरम्भ कर रहे नन्हे-मुन्नों के मध्य ही बीती है। वह उन से कहता है -

"सुनो बच्चो
कहता हूँ मैं
हिंदी पढ़ो।
यह हमारी है
हम इसके हैं।
इसी में हमारी शान है
यही हमारी पहचान है।"

यह हिंदी और भोजपुरी भाषा और साहित्य सेवी हीरालाल की संक्षिप्त कहानी है। इस में उल्लिखित बातें कुछ आँखों देखी हैं और कुछ कानों सुनीं। देखनेवाली मैं उसकी भाभी चन्द्रकला और सुनानेवाला स्वयं हीरालाल। अब तक की उसकी प्रकाशित रचनाओं की सूची निम्नलिखित है :

वर्ष	रचना	प्रकाशक	मुद्रक
1974	अनोखे अतिथि (एकांकी संग्रह)	लीलाधर प्रकाशन	मधु प्रींटिंग, त्रिओले
1983	मॉरीशस में हिंदी (पाठ और अभ्यास)	बाहरी पब्लिकेशन्स प्रा.लि. संत नगर, नई दिल्ली-65	नव प्रभात प्रिंटिंग प्रेस बलबीर नगर, दिल्ली - 32
1986	अद्यतन हिंदी प्रयोग (पाठ और अभ्यास)	हिंदी बुक सेंटर	नई दिल्ली - 2
1988	सगाई (उपन्यास)	नचिकेता प्रकाशन	विजय नगर, दिल्ली - 9
1989	अद्यतन हिंदी प्रयोग-2 (पाठ और अभ्यास)	हिंदी बुक सेंटर	नई दिल्ली - 2
1992	नूतन हिंदी अभ्यास (पाठ और अभ्यास)	इंडिया पब्लिशर्स & डिस्ट्रीब्यूटर्स, कीर्ति नगर, नई दिल्ली - १५	नव प्रभात प्रिंटिंग प्रेस बलबीर नगर, दिल्ली - 32
1994	नूतन हिंदी अभ्यास -२ (पाठ और अभ्यास)	लीलाधर प्रकाशन	राजेश्वरी फ़ोटोसेटर्स, नई दिल्ली
1997	नूतन हिंदी बाल अभ्यास (पाठ और अभ्यास)	लीलाधर प्रकाशन भजन लेन, लालमाटी	स्टार पब्लिकेशन प्रा. लि. आसफ़ अली रोड, दिल्ली - २
1988	Betrothal (Sagai)	लीलाधर प्रकाशन	हिंदी बुक सेंटर, नई दिल्ली - 2
2000	नूतन हिंदी शिशु अभ्यास (पाठ और अभ्यास)	लीलाधर प्रकाशन भजन लेन, लालमाटी	दुर्गा प्रिंटर्स ३१७, चावड़ी बाज़ार, दिल्ली - 6
2007	हिंदी की दूसरी पुस्तक (पाठ और अभ्यास)	लीलाधर प्रकाशन भजन लेन, लालमाटी	दुर्गा प्रिंटर्स ३१७, चावड़ी बाज़ार, दिल्ली - 6
2008	हिंदी की पहली पुस्तक (पाठ और अभ्यास)	लीलाधर प्रकाशन भजन लेन, लालमाटी	राजेश्वरी फ़ोटोसेटर्स, (प्रा.) लि. साहिबाबाद, गाज़ियाबाद
2009	आओ लिखें अ आ इ ई हिंदी वर्णमाला	लीलाधर प्रकाशन भजन लेन, लालमाटी	इंडियावेल एंटरप्राइज़र सीमताराम बाज़ार, दिल्ली
2011	व्याकरण विमर्श	लीलाधर प्रकाशन भजन लेन, लालमाटी	हिंदी बुक सेंटर आसफ़ अली रोड, दिल्ली – २ न

2013	एहसास (कहानी संग्रह)	लीलाधर प्रकाशन भजन लेन, लालमाटी	देहाती पुस्तक भंडार ४४२२, मेन रोड, नई सड़क, दिल्ली
2014	मेरे अपने (काव्य संग्रह)	लीलाधर प्रकाशन भजन लेन, लालमाटी	देहाती पुस्तक भंडार ४४२२, मेन रोड, नई सड़क, हिंदी बुक सेंटर, दिल्ली
2017	पाथर-रेख (भोजपुरी काव्य संग्रह)	मॉरीशस भोजपुरी संस्थान पोर्टलुई, मॉरीशस	हिंदी बुक सेंटर ४/५-बी, आसफ अली,नई दिल्ली - २
2017	बाल स्यन्तक (उपन्यास)	लीलाधर प्रकाशन भजन लेन, लालमाटी	हिंदी बुक सेंटर ४/५-बी, आसफ अली,नई दिल्ली - २
2018	का बोलीं हम (भोजपुरी कहनी निबंध संग्रह)	लीलाधर प्रकाशन	हिंदी बुक सेंटर नई दिल्ली - २
2019	PSAC Assessment/हिंदी Models & Papers	लीलाधर प्रकाशन भजन लेन, लालमाटी	हिंदी बुक सेंटर ४/५-बी, आसफ अली,नई दिल्ली - २

hiralall_leeladhur@yahoo.com

‘नीली तितली’ : संस्कृतियों का संगम बनाम जड़ों की तलाश

- श्री अर्पण कुमार
छत्तीसगढ़, भारत

कविता, कहानी आदि एकाधिक विधाओं में सक्रिय श्रीमती भावना सक्सैना कुछ वर्षों तक सूरीनाम में रही हैं। उन्होंने अकाल्पनिक गद्य की श्रेणी में सूरीनाम की संस्कृति और उसके लोकरंग पर भी काफ़ी कुछ लिखा है। वे सूरीनाम में रहनेवाले हिंदुस्तानियों की पुरानी और नई पीढ़ियों से वहाँ मिलती रही हैं। विदित है कि भारत से काफ़ी दूर दक्षिणी अमेरिका के पूर्वोत्तरी तट पर बसे इस छोटे देश में रह रहे हिंदुस्तानियों की अपनी जड़ों को लेकर पाई जानेवाली तड़प को उन्होंने नज़दीक से देखा और महसूस किया है। प्रकृति के वैभव से युक्त इस देश के पूर्व में अटलांटिक महासागर की लहरें अविराम उछलती-गिरती रहती हैं। कहा जा सकता है कि भावना जी ने अपनी इन कहानियों में सूरीनाम के कई रूपों को अभिव्यक्त किया है। जैसा कि ऊपर चर्चा की गई, सूरीनाम में गिरमिटिया भारतीय बड़ी संख्या में रहते हैं। लेखिका ने उन्हें 'सूरीनामी हिंदुस्तानी' की संज्ञा भी दी है। वे लिखती हैं, *“भारत! उनके पूर्वजों का देश... जिससे हर सूरीनामी हिंदुस्तानी का दिल एक अटूट बंधन में बँधा होता है!”*

(पृष्ठ 72, ‘एक और बोधि’ कहानी से, ‘नीली तितली’)

अपने लेखन में भावना जी ने सूरीनामी समाज के लोक-राग और वहाँ की समस्याओं को गल्प के आवरण में प्रस्तुत करने की कोशिश की है। साथ ही, भारत में रह रहे और विदेशों में बसने की महात्वाकांक्षा लिए अवसरवादी लोगों के भीतर के उपयोगितावाद को भी यहाँ बेबाकी से उकेरा गया है, जिनके लिए किसी विदेशी से शादी कर वहाँ जाकर बसने की लालसा मात्र अधिक होती है। उस रिश्ते को मन से निभाने का संकल्प कम होता है। ऐसे रिश्तों की नींव शुरू से ही कमज़ोर होती है और उसके पीछे की भावना मूलतः अर्थकेंद्रित होती है। कालांतर में क्रमशः प्रेम के बड़े-बड़े दावे कैसे खोखले होते चले जाते हैं, यह भी यहाँ उजागर होता है। रिश्तों के ऐसे गठजोड़ के पीछे संवेदना की तुलना में आर्थिकी का कारक-तत्त्व कहीं अधिक पाया जाता है। प्रेम और समर्पण की जगह आगे बढ़ने या कहीं स्थापित होने के लिए सीढ़ी का इस्तेमाल ज़्यादा होता है और वहाँ व्यावहारिकता का स्पेस अधिक रहता है। आरंभ में कुछ दबे-छुपे रहनेवाले भाव क्रमशः स्पष्टतर होते चले जाते हैं। मनुष्य की अंदरूनी इन बारीक ग्रंथियों को यहाँ करीने से प्रस्तुत किया गया है।

यह कहना ग़लत न होगा कि इस संग्रह की ज़्यादातर कहानियों में परिवार के भीतर की टूटन को वाणी प्रदान की गई है। आधुनिक परिवेश की इन विडंबनाओं को यहाँ अलग-अलग स्वरूपों में अभिव्यक्त किया गया है। स्त्री-मन के गहरे भीतर चलनेवाले विभिन्न ऊहापोहों को बड़ी सरलता से इस रचनाकार ने उद्‌घाटित किया है। प्रस्तुत संग्रह की कई कहानियों में स्त्री के त्याग को, घर को सँभालने की उसकी समर्पण-भावना को और बच्चों की ज़िम्मेदारी के उसके निर्वहन को यथोचित संवेदनशीलता के साथ उकेरा गया है। सुदूर जड़ों से दूर जाकर और कई पीढ़ियों से अलग-थलग रहते हुए, सूरीनामी परिवारों की हिंदुस्तानी-मात्र के लिए उनकी रागात्मकता, लेखिका को कई स्तरों पर प्रभावित करती है। अपने ऐसे कई अनुभवों और कल्पनाओं के सम्मिश्रण से भावना सक्सैना ने इन

कहानियों को सृजित किया है। यह भी उल्लेखनीय है कि भावना जी ने सूरीनाम-प्रवास के अपने कई सच्चे-जीवंत प्रकरणों से जुड़ी अपनी स्मृतियों का उपयोग करके उन्हें कथा में बेहतर रूप से सर्जनात्मक स्थायित्व दिया है और साधारणीकरण के तत्त्वों से उन्हें युक्त किया है।

इन कहानियों में 'कल्चरल शॉक' बहुत सीधे या प्रत्यक्ष रूप से तो नहीं है, मगर संस्कृतियों के बीच आमेलन की कोशिश और उसमें आनेवाली समस्याओं से संबंधित कई बिंदु यहाँ उभर कर आते हैं। इस संग्रह की कई कहानियों में संस्कृति की टकराहट को परिवार की इकाई पर जाकर घटित होते हम देखते हैं। 'समांतर' आदि ऐसी ही कहानियाँ हैं, जहाँ दो भिन्न संस्कृतियों से आए लोग अगर एक-दूजे से प्रत्यक्ष रूप में विलगित नहीं भी होते हैं, तो अंततः रेलवे की दो समांतर पटरियों की तरह एक-दूसरे से निश्चित दूरी पर खड़े दिखते हैं। यहाँ आशा जैसी स्त्रियों ('आशा' कहानी) की कहानी भी है, जिसने अपने जीवन में कई उतार-चढ़ाव देखे। इन चरित्रों का चित्रण ऐसा मर्मस्पर्शी बन पड़ा है कि पाठकों को अरसे तक वे याद रह जाते हैं। आशा के जीवन के दोनों रंग कहानी में दो छोरों की तरह आते हैं, जिनके बीच आशा का जीवन जारी है। उसके जीवन के पूर्ववर्ती काल में उसकी गृहस्थी, संपूर्णता, साज-शृंगार और आनंद के प्रसंग हैं, तो उसके जीवन के परवर्ती काल में उसका वैधव्य, उदासी, सादगी और गरीबी है। पहले ही छोटे-से घर का आधा हिस्सा ननद की ओर से हिस्सा माँगने के क्रम में बेचना पड़ा। उस अवसर पर घर के बीचो-बीच उठती दीवार की ठक-ठक सीधे आशा के दिल के दो टुकड़े किए जा रही थी। उस समय की उसकी मन:स्थिति का बड़ा मार्मिक विवरण इस कहानी में इन पंक्तियों के माध्यम से आया है, *"दो दिनों तक चाची ने घर में पाँव न धरा, हमारे ही चबूतरे पर बैठी अपने घर को कटते सुनती रहीं। वही वीरानी थी उनकी आँखों में, जो चाचा के जाने पर थी। वो तो बड़ी ताईजी ज़बर्दस्ती अपने घर ले गईं..।"*

(पृष्ठ 31, 'नीली तितली')

'आशा' जैसी भावप्रवण कहानी, पाठक को दुख से भर देती है। मगर यह दुख ही है, जिसके प्रभाव में व्यक्ति उदात्त होता है। अज्ञेय की कविता की पंक्ति यहाँ सहज ही याद हो आती है, 'दुख सबको माँजता है'। लेखिका लिखती है, *"छोटे-से साफ़-सुथरे घर की कार्निस पर अब दो तस्वीरें हैं और मौसम में दोनों गुलाबों से सजी रहती हैं... बिधिया को आशा है, वह अपना वादा पूरा करेगी, तो अगले जन्म आशा चाची उसे माँ के रूप में मिलेगी।"*

(पृष्ठ 35, 'नीली तितली')

'आशा' कहानी पाठक को भाव-विह्वल कर जाती है। पाठक, 'आशा' की मृत्यु के साथ अपने भीतर की किसी 'आशा' को भी मरता हुआ पाता है।

संग्रह की एक उल्लेखनीय कहानी 'संकल्प' है। यहाँ साहिल और श्रेया के बीच बढ़ती दूरी का चित्रण है। छोटी-छोटी बातों पर रिश्ते दरकने लगते हैं। साथ में नए घर में गृह-प्रवेश की कहानी का प्रसंग है। दोनों के संबंधों में आई दूरी को कहानी में इस तरह अभिव्यक्त किया गया है - *"दिन बीतते रहे, संवाद के अभाव में दूरियाँ बढ़ती रहीं और पिछले कुछ समय से वह अनायास ही कहाँ-कहाँ उलझती गई, भटकती रही अंधेरों में, विश्वास को तोलती रही..."*

(पृष्ठ 37, 'नीली तितली')

ऐसे में श्रेया को दादी की कभी कही बात याद हो आती है और वह अपने जीवन में अपेक्षित बदलाव लाकर ज़िंदगी में घर करती कुंठा से किसी

हद तक निजात पाती है। कहानी की इन पंक्तियों को देखा जा सकता है -

"श्रेया ने निर्णय लिया, लगाम सँभालने का, सबसे पहले अपने विचारों पर लगाम कसनी थी और फिर बाह्य परिस्थितियों पर और इसका सबसे शांतिपूर्ण तरीका था माफ़ कर देना ... और अपनी अपेक्षाएँ कम करना।"

(पृष्ठ 39, 'नीली तितली')

अपने नाम के ही अनुरूप 'संकल्प' कहानी एक स्त्री के भीतर के बदलाव को उकेरती हुई कहानी है। पति-पत्नी के बीच की अनबन भरी ज़िंदगी में श्रेया को अंततः जीवन का सार समझ में आ जाता है। श्रेया दूसरों के व्यवहारों से स्वयं को प्रभावित न होने देने का संकल्प लेती है। इसके लिए वह अपनी स्मृतियों में जाती है और अवचेतन में पड़ी बड़े-बुज़ुर्ग की सीख का कोई सिरा पकड़ आगे बढ़ती है।

'समांतर' कहानी का भी यहाँ उल्लेख करना ज़रूरी है। यहाँ प्रगति के व्यक्तित्व को बखूबी उभारा गया है। तीन माह के अवकाश पर जब प्रगति कॉलिज से अपने घर जाने की बात कहती है, तब कथावाचक का हृदय धक्क से रह जाता है। इसका वर्णन बड़े सधे शब्दों में किया गया है, *"...लगा वह स्वप्न की भाँति खो न जाए। स्वप्न जो कहाँ-कहाँ ले जाते हैं और फिर आँख खुलते ही ला पटकते हैं निर्मम जग की कठोर भूमि पर, जहाँ पनपने को कभी मिट्टी तो कभी जल कम रहता है और ये दोनों पर्याप्त मात्रा में हों, तो जाने कितनी खरपतवारें आपका अस्तित्व लीलने को तैयार खड़ी रहती हैं।"*

(पृष्ठ 43-44, 'नीली तितली')

'अरूबा' में आकर नायक अपने घर पर अपने बच्चों को सँभालना चाहता है। अवसादग्रस्त नायक को अपनी बेटी की शादी में आने का निमंत्रण नहीं मिलता है। उसके परिवार को लगता है कि वह अपने अवसाद में शादी के कार्यक्रम में कुछ समस्या खड़ा कर सकता है। उसकी बेटी एक यूरोपीय से शादी कर रही है। वह अपने अनिमंत्रण से उपेक्षित तो महसूस कर रहा है, मगर उससे भी ज़्यादा उसे अपनी बेटी के इस फ़ैसले से भविष्य में होनेवाले प्रभाव को लेकर चिंता हो रही है। वह सोचता है, *"मैं आहत हूँ किंतु उससे कहीं अधिक चिंतित हूँ, अपनी बेटी के लिए क्योंकि अपने जिए हुए अनुभव से मैं जानता हूँ कि दो देशों - दो विभिन्न परिस्थितियों में रहने वालों की संस्कृतियाँ समान्तर तो चल सकती हैं, किंतु उनका मेल बहुत मुश्किल है। बहुत-बहुत से बलिदान करने पड़ते हैं, स्व का होम करना पड़ता है और उनके आमेलन के प्रयास में ज़िंदगी होम करके कुछ हासिल नहीं।"*

(पृष्ठ 43-44, 'नीली तितली')

इस संग्रह की कई कहानियों में भारतीयों के विदेश जाने या फिर वहाँ बसकर खूब अमीर बनने की हसरतों को उकेरा और वर्णित किया गया है। विभिन्न संस्कृतियों से आए लोगों के बीच साथ रहने की समस्याओं या कहें खट्टे-मीठे अनुभवों को यहाँ कई जीवंत घटनाओं के माध्यम से चित्रित किया गया है। भावना जी ने सांस्कृतिक विभिन्नताओं को परिवार और रिश्ते के भीतर गूँथकर अपनी कहानियों में दिखाया है। इस विषय पर हम उनकी कई कहानियाँ प्रस्तुत संग्रह में पाते हैं। उनके यहाँ वैश्वीकरण और आधुनिकता के प्रभाव को परिवार से जोड़कर दिखाया गया है। महिलाओं, बच्चों , वृद्धों आदि की समस्याओं को यहाँ कई कोणों से उकेरा गया है।

इस संग्रह की एक कहानी है - 'दूरी'। किशोर-मनोविज्ञान पर केंद्रित यह कहानी एक लड़की के गृह-त्याग के कदम को बड़े करीने और विस्तार

से उठाती है। उसके मातहत एक महिला-कर्मी सुवर्णा जब अपनी बच्ची को अपनी माँ के पास छोड़ने जाने के लिए कार्यालय से अवकाश लेने के लिए आवेदन करती है, तो नायिका को अपने बचपन की कटु स्मृतियाँ याद हो आती हैं। वह उसे ऐसा करने से मना करती है, क्योंकि अपने बचपन में अपनी नानी के यहाँ रहते हुए अपने और अपनी माँ के बीच की उस भयानक और संवेदनहीन दूरी के कड़वे घूँट वह पी चुकी है।

'एक और बोधि' कहानी का उल्लेख करना भी आवश्यक है। कहानी में स्पष्ट रूप से रेवा की मनोदशा का चित्रण किया गया है। *"रिश्ते कैसे बनते हैं, यह रेवा ने अपना देश छोड़ने के बाद ही जाना था।"*

नई जगह पर रहने से बच्चे और बड़े क्या महसूस करते हैं, इसे हम इस कहानी में भी देख सकते हैं, जब रेवा और जय अकेलेपन और मनोरंजन से ऊबे अपने बच्चों को पारामारिबो के पार्क में ले जाते हैं। क्रियोली-जीवन के कई प्रामाणिक रंग हमें इस संग्रह की कहानियों में देखने को मिलते हैं। मसलन 'एक और बोधि' शीर्षक कहानी का यह अंश, *"सूरीनाम में जन्मदिन या कोई और जश्न मनाने के लिए पार्टी बस एक आम आयोजन था। पार्टी के लिए किराए की एक बस एक सुख-साधन है। आमतौर पर एक पारंपरिक बस को सुसज्जित कर मनोरंजक प्रयोजनों के लिए प्रयोग किया जाता है, रंग-बिरंगे गुब्बारों से सजी बस में मस्ती में गाते-बजाते-खाते-पीते लोग शहर का चक्कर लगा आते हैं, सड़क से आते-जाते लोग भी उन्हें देख, मुस्कुराते, हाथ हिलाते आगे बढ़ जाते हैं।'*

(पृष्ठ 74, 'नीली तितली')

स्पष्ट है कि ऐसे चित्रण बड़े जीवंत बन पड़े हैं और लेखिका ने वहाँ की संस्कृति को बेहतर रूप में हमारे सामने प्रस्तुत किया है। संध्या एवं करन भी क्रियोली हैं और रेवा एवं जय से सहजतापूर्वक जुड़ जाते हैं। संध्या करन से तलाक लेती है और यह बात बहुत समय तक वह रेवा से छुपाकर रखती है।

भावना सक्सैना की कहानियों में देश छोड़ने के प्रकरण कई-कई रूपों में उपस्थित हैं। उनके यहाँ विस्थापन की व्याकुलता और तदुपरांत उत्पन्न होनेवाली समस्याएँ दोनों ही हैं। खासकर सूरीनाम और भारत के बीच आवाजाही करते लोगों की कई कहानियाँ हमें उनके यहाँ देखने को मिलती हैं। यहाँ संस्कृतियों का संगम है और उससे जुड़ी समायोजन के कई अनुभव हैं। शुरुआत में वे आकर्षक लगते हैं, मगर क्रमशः समायोजन की प्रक्रिया अपने जटिल स्वरूप में हमारे सामने आती है। विस्थापित मानव-मन में अपनी जड़ों की ओर लौटने की एक विकलता है, जिसे हम संग्रह की कई कहानियों में देखते हैं।

यहाँ दो तरह की कहानियाँ हैं। एक वे जिनके भौगोलिक क्षेत्र भारत है और दूसरे वे जो सुदूर सूरीनाम से जुड़ी हुई हैं। हालाँकि सूरीनाम में घटित होती अधिकांश कहानियों में हिंदुस्तानियत है, क्योंकि वे लोग आज़ादी से पहले हिंदुस्तान से ही तो वहाँ ले जाए गए थे। 'दूरी' जैसी कहानियाँ भारतीय भौगोलिक क्षेत्र में घटित कहानियाँ हैं। 'कुछ कतरे कंत्राक के' कहानी में लेखिका ने सूरीनाम पहुँचे और वहीं बस गए हिंदुस्तानियों की कथा को उसके मूल में जाकर पकड़ा है। वहाँ लालारुख जहाज़ का भी ज़िक्र आता है। अरकाठियों द्वारा उन्हें लाए जाने की धारणा को भी यहाँ परखा गया है। मूलतः यह कहानी के रूप में नहीं है, मगर यहाँ लेखिका ने सूरीनाम के कुछ लोगों की कहानियों को उनके पूरे यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया है। इससे इस संग्रह की कहानियाँ पढ़नेवाले लोगों को कहानियों में वर्णित वातावरण, घटित घटनाओं और चरित्रों की मानसिकताओं को समझने में सुविधा होती

है। उत्सुक पाठक सूरीनाम और वहाँ रह रहे लोगों खासकर हिंदुस्तानी मूल के लोगों के बारे में और अधिक जानने के लिए कई अन्य स्रोतों का सहारा ले सकते हैं। विदित है कि सूरीनाम पहुँचे भारतीय 'कॉन्ट्रैक्ट' को 'कंत्राक' और 'एग्रीमेंट' को 'गिरमिटिया' बोला करते थे। इन तथ्यों से जुड़े ऐसे चित्रण बड़े प्रामाणिक रूप से पाठकों के समक्ष आते हैं।

'नीली तितली' संग्रह शीर्षक भावना जी की एक महत्त्वपूर्ण कहानी है। कहानी की शुरुआत, सुबह की सैर से होती है। इसकी मुख्य पात्र 'ईहा' अलस्सुबह घूमने जाती है। इसका ज़िक्र कहानी में इन शब्दों में किया गया है, *"नम हवा अनावरित बाज़ुओं को सहला रही थी, पर शीतलता हृदय में उतर रही थी। कितना कोमल अहसास है, प्रकृति की हर वस्तु में।"*

(पृष्ठ 49, 'नीली तितली')

यहाँ ईहा और तरुण के दरकते दांपत्य की कहानी कही गई है। *"जीवन चलता रहा, जीने की उत्कंठा मरती रही"* जैसी पंक्तियाँ इस कहानी की सफलता हैं। सात वर्ष की आयु में ईहा के पिता की एक नाव-दुर्घटना में मृत्यु हो जाती है।

इस कहानी में सूरीनाम के राष्ट्रीय फूल 'फ़ायलोबी' का भी ज़िक्र आता है, *"सुर्ख़ फ़ायलोबी का पौधा वर्ष भर में ही खूबसूरत फूलों से भर गया... ईहा नियम से उन्हें पानी देती रही, माँ को फ़ायलोबी इतने पसंद आए कि उन्होंने घर के चारों ओर फ़ायलोबी के नए पौधे लाकर लगा दिए।"*

(पृष्ठ 52, 'नीली तितली')

तरुण अकसर हॉलैंड और मायामी जाया करता था। लेखिका ईहा की आत्मा में प्रवेश करती है। वह उसके मंतव्य को पकड़ती हुई ईहा के निष्कर्षों को इन शब्दों में प्रस्तुत करती है - *"ईहा समझ गई थी कि ज़िंदगी वैसी नहीं, जैसी हम समझते हैं। ज़िंदगी न वैसी है, जैसी हम इसे बनाना चाहते हैं। ...एक सफ़र है और सफ़र ही जीवन है।... कि खुशी एक नीली तितली है, जो छोटे-छोटे लम्हों में बसती है, यदि उस पल हाथ बढ़ा उसे आश्रय न दो, तो वह फिर से जीवन के जंगल में खो जाती है और हम उसकी खोज में भटकते रह जाते हैं।"*

(पृष्ठ 55, 'नीली तितली')

हाँ, इस कहानी में 'निर्जीव पेड़' जैसे तकनीकी रूप से गलत प्रयोग खटकते हैं। लेखिका ने इस कहानी-संग्रह की भूमिका में स्पष्ट किया है, *"इनमें से कई कहानियाँ सूरीनाम पर केंद्रित हैं, इन्हें जब पढ़ती हूँ, तो उस धरती पर बिताए पलों में खो जाती हूँ। मन श्रद्धा से नत हो जाता है उन लोगों के प्रति, जो आज भी अपनी संस्कृति को सहेजे हैं। वर्षों के संघर्षों के बाद हिंदुस्तानी वंशजों ने उस देश में अपना स्थान बनाया है। अपने पूर्वजों का नाम रोशन किया है, उन पूर्वजों का जो गिरमिट काटने एक अनजान देश पहुँचे थे और जिनमें से बहुत अपना मूल नाम भी खो चुके थे। किंतु कहीं यह हिंदुस्तानी समाज दो संस्कृतियों के बीच तालमेल बैठाने में हैरान परेशान भी हुआ है। इस अनकही कशमकश को मैंने महसूस किया और इसने अभिव्यक्ति पाई कुछ कहानियों में। ज़िंदगी के इन टुकड़ों को जीने में, इन्हें रंगने में बहुत कुछ सीखा है।"*

'आशा', 'बरामदा' जैसी कहानियाँ संवेदनशीलता के धरातल पर पाठकों को आलोड़ित करने की क्षमता रखती हैं। इन कहानियों में समय एक महत्त्वपूर्ण क्षेपक के रूप में उपस्थित है। समय को कारक के रूप में रखकर व्यक्ति, परिवार, समाज, तीज-त्यौहार आदि में आनेवाले बदलावों को यहाँ मार्मिक रूप में प्रस्तुत किया गया है।

'पलस्तर तरेड़ खा जाता', 'ईंटों को दुरमुट

से कूटा जाता था', 'बायने मनसतीं' जैसी भावाभिव्यक्तियों में हिंदी की स्थानीयता/देशजता के समृद्ध रंग दृष्टिगोचर होते हैं। ऐसे शब्दों का प्रयोग, हिंदी भाषा की भाव-भंगिमाओं को समृद्ध करता है।

'बरामदा' कहानी की मुनिया बड़ी हो जाती है, मगर वह अपनी दादी को भूल नहीं पाती है। कहानी पढ़ते हुए हम सब कहीं-न-कहीं अपने बचपन में चले जाते हैं। यह कहानी उन्हीं समृद्ध स्मृतियों में डूबती-उतराती चली जाती है। इसका अंत दार्शनिक-सा हो जाता है। पंक्तियाँ इस प्रकार से हैं, *"जीवन भी अजब खेल है... जब वर्तमान से उखड़ने लगता है, तो उन हँसती खिलखिलाती गलियों में जा पहुँचता है जहाँ उसे सुकून मिलता था, बिछड़े अपनों के साथ फिर खुशियों के पल जीना चाहता है और जब सायास हो तो यादें, अनायास हो तो डॉक्टर इसे एक बीमारी बताते हैं...।"*

(पृष्ठ 29, 'नीली तितली')

इस कहानी में यद्यपि अल्ज़ाइमर का कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं है, मगर कहानी में दादी के रूप में हमें उसकी वाहिका नज़र आती है, जिसके बारे में ग्रामीण-कस्बाई समाज का एक बड़ा तबका तब अनजान था। 'आशा' कहानी में महिलाओं की असहायावस्था, उनकी चिकित्सकीय समस्याओं, गर्भधारण/डिलीवरी के समय महिलाओं की चिंतनीय शारीरिक अवस्था आदि को दर्शाया गया है। 'जिया झूमे तब सावन है', कहानी का शीर्षक एक चर्चित गीत का अंश है। यह एक पारिवारिक कहानी है, जहाँ रक्षा-बंधन के अवसर पर घर से बाहर रह रही बेटी घर में आती है और माँ-बाप, भाई-बहन सभी इस अवसर पर खूब आनंद उठाते हैं।

इस संग्रह में एक तरफ़ ऐसी सुखांत कहानियाँ हैं, तो दूसरी तरफ़ कुछ दुखांत कहानियाँ भी हैं। इस कहानी और ऐसी अन्य कहानियों में सूरीनाम के मौसम, परिस्थिति, रहन-सहन आदि को भारत के साथ तुलनात्मक रूप से रखकर देखा गया है। यहाँ भारत और सूरीनाम की लोक-संस्कृतियों, पर्वों-त्यौहारों आदि को समुचित रूप में यथाप्रसंग रखते हुए उभारा गया है। मौसम के अनुरूप मनाए जानेवाले पर्वों का वर्णन कहानी में अभिन्न रूप से आता है। जैसे सावन में तीज, कजरी, नाग-पंचमी, रक्षा-बंधन आदि और ऐसे अवसरों पर बच्चों खासकर लड़कियों को मिलनेवाली कुछ छूटों आदि का ज़िक्र बड़ा प्रामाणिक बन पड़ा है। कुल मिलाकर यह कि 'नीली तितली' कहानी-संग्रह को हम संस्कृतियों का संगम या फूलों का एक गुलदस्ता कह सकते हैं। इसके पात्र जीते-जागते विस्थापित पात्र हैं, जिनमें अपनी जड़ की तलाश को लेकर बेचैनी और उत्साह दोनों हैं। इसकी भाषा, संवेदनशीलता को पकड़ती और उसे बखूबी अभिव्यक्त करती है। निश्चय ही, भावना सक्सैना की कहानियों में जो सच्चापन और पारिवारिकता है, उससे आम पाठक प्रभावित होते हैं। इन कहानियों के पात्र बचपन के अपने दौर में भी जाते हैं। वर्तमान में स्मृतियों की ऐसी आवाजाही का कहानी में बेहतर इस्तेमाल हो पाया है।

समीक्षक	: श्री अर्पण कुमार
समीक्ष्य पुस्तक	: 'नीली तितली' (कहानी-संग्रह)
लेखिका	: श्रीमती भावना सक्सैना
प्रकाशक	: हिंदी बुक सेंटर, 4/5 बी., आसफ़ अली रोड, नई दिल्ली - 110002
पृष्ठ	: 101
मूल्य	: 200/-

arpankumarr@gmail.com

विश्व हिंदी सचिवालय
इंडिपेंडेंस स्ट्रीट, फ़ेनिक्स 73423, मॉरीशस

World Hindi Secretariat
Independence Street, Phoenix 73423, Mauritius

फ़ोन / Phone: +230 660 0800
ई-मेल / E-mail: info@vishwahindi.com
वेबसाइट / Website: www.vishwahindi.com
डेटाबेस / Database: www.vishwahindidb.com

मुद्रक: Star Publications PVT LTD, Hindi Book Centre,
New Delhi - 110002
info@starpublic.com & info@hindibook.com

कवर डिज़ाइनर: Cathay Printing Ltd.,
La Tour Koenig Industrial Zone,
Pointe aux Sables 11109, Mauritius
Tel: +230 234 2668
Fax: +230 234 2828